तुलसी के भक्त्यात्मक गीत

विशेषतः विनयपत्रिका

(पटना विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० बचनदेव कुमार एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
पटना कॉलेज, पटना

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली-६ : पटना-४

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य ससार
दिल्ली-६

ब्राच
खजाची रोड, पटना-४

प्रथम सस्करण, १९६४

मूल्य
बीस रुपये (२० ००)

मुद्रक
अशोक मुद्रणकला द्वारा शिवजी मुद्रणालय, दिल्ली।

पटना विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग

के

भूतपूर्व अध्यक्ष, गुरुवर पं० जगन्नाथराय शर्मा

को सादर

मागत तुलसिदास कर जोरे।
बसहि रामसिय मानस मोरे।

—विनयपत्रिका

मुदित माय नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी ······ सही है।
रघुनाथ हाथ

—विनयपत्रिका

विषय-तालिका

प्रथम खण्ड

परम्परा और पृष्ठभूमि

द्वितीय खण्ड

तुलसी के भक्त्यात्मक गीत

भूमिका

कुशल गीतकार तुलसी

गोस्वामी तुलसीदास प्रबंध-पटु कवि ही नही, गीतिकाव्यो के क्षेत्र मे भी उनकी प्रतिभा का चमत्कार पूर्णरूपेण दीख पडता है। अपने तीनो गीति ग्रन्थो मे गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति, कला एव दार्शनिक चेतना का त्रिधारा सगम उपस्थित किया है। विनयपत्रिका तो भक्ति का अक्षय अमिय स्रोत है ही।

गीतग्रन्थों पर मान्य विद्वानो के विचार

विनयपत्रिका पर लिखते हुए स्वर्गीय शिवसिह सेगर ने लिखा है कि 'अन्त मे विनयपत्रिका महाविचित्र भक्तिरूप प्रज्ञानद सागर ग्रन्थ बनाया है। चौपाई गोस्वामि महाराज की ऐसी किसी कवि ने बनाय नही पाई है और न विनयपत्रिका के समान अद्भुत ग्रन्थ आज तक किसी कवि महात्मा ने रचा।"[1]

पडित रामनरेश त्रिपाठी ने विनयपत्रिका पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है—"तुलसीदास को इस ग्रन्थ के पद लिखने मे जैसी सफलता मिली है, उस अनुपात से वह उनके और किसी ग्रन्थ मे नही है। "मानस" मे, खासकर अयोध्याकाड मे, उनकी कवित्व शक्ति सावन-भादो की नदी की भाँति उमडी हुई दिखाई पडती है। पर अरण्य किष्किंधा, सुदर और लका काडो मे वह घटते-घटते जेठ-वैसाख की नदी की तरह छिछली हो गई है। कही-कही उसमे गड्ढे हैं जिनमे कुछ अधिक जल जमा हुआ मिलता जरूर है। पर "विनयपत्रिका" मे आदि से अन्त तक कवि की रस धारा एक-सी प्रवाहित है। उसमे उसके प्रचुर ज्ञान, गम्भीर अनुभव, भाषा और भाव पर उसके अबाध अधिकार का रोचक इतिहास कमल की तरह सर्वत्र विकसित मिलता है।"[2]

विनयपत्रिका पर वियोगी हरि जी के विचार द्रष्टव्य हैं—"विनयपत्रिका भक्तिकाड का एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ है, अनुराग महोदधि का एक दिव्यरत्न है। भक्तो के सरस हृदय का तो यह ग्रन्थ जीवन सर्वस्व है। भक्ति-पथ की सागोपाग पद्धति इसमे दिखलाई गई है। इस प्रेमरत्न मजूषा के भीतर सुरसिक जौहरी कैसे-कैसे विलक्षण रत्न पा सकते हैं, यह कहने की बात नही, अनुभव करने की है।"[3]

---

१ शिवसिह सरोज, तृतीय सस्करण, पृष्ठ ४२६
२ तुलसी और उनका काव्य रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ २३३
३ विनयपत्रिका की टीका, वियोगी हरि, पृष्ठ ३२

डा० माताप्रसाद गुप्त का विनयपत्रिका के बारे मे कहना है—"विनयपत्रिका का ससार के आत्म-निवदन साहित्य मे अत्यन्त उच्च स्थान माना जाता है।"[1]

गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली पर भी विद्वानो के बडे उच्छ्वसित विचार मिलत है। किन्तु यह बडे आश्चय और खेद का विषय है कि अब तक अखिल विश्व के विद्वानो का ध्यान तुलसी के गीत ग्रन्थो के मर्मोद्घाटन की ओर नही गया है। भारतवर्ष की सभी भाषाओ के कवियो मे तुलसीदास पर ही सर्वाधिक देशी या विदशी विद्वानो द्वारा स्वान्त सुखाय निबध या उपाधिहेतु शोध-प्रबध लिखे गये हैं किन्तु उनम किसी विद्वान् का ध्यान तुलसी के भक्त्यात्मक गीतो की ओर सम्यक् रूप स नही गया है। तुलसीदास के साहित्य पर विवेचन करते हुए यदा कदा इन कृतियो को भी समेट लेन की चेष्टा की गई है किन्तु यह प्रयास सतही भी नही कहा जा सकता।

विषय-निर्देश

हमारे शोध प्रबध का विषय यही "तुलसी के भक्त्यात्मक गीत—विशेषत विनयपत्रिका" है। वैसे तो गीत का सामान्य अथ गाये जाने योग्य है और इस दृष्टि से रामचरितमानस भी गीत काव्य ही है। लेकिन गीतो से यहाँ हमारा तात्पर्य स्वर-ताल समन्वित पारिभाषिक रूप से है। इसलिये इस शोधकाय को हमने गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली तथा विनयपत्रिका तक ही सीमित रखा है। सवप्रथम मैं तुलसी-साहित्य पर किये गये कार्यों का सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कर, तब अपने प्रबन्ध की विषय और विवेचन सम्बन्धी मौलिकता एव नवीनता पर प्रकाश डालूँगा

स्वान्त सुखाय लिखित ग्रन्थ

१—कविकुल चूडामणि तुलसीदास पर अध्ययन का सूत्रपात करने वाले विदेशी विद्वान् एच० एच० विल्सन हैं। "ए स्केच आव् दि रेलिजस सेक्ट्स आव् दि हिन्दूज" नामक निबन्ध १८३१ ई० मे "एशियाटिक रिसर्चेज" मे प्रथम बार छपा था। इस निबन्ध मे भक्तमाल एव जनश्रुतियो के आधार पर तुलसीदास के जीवन-वृत्त उपस्थित करने का प्रयास किया है।

२—इसके बाद तुलसीदास सम्बन्धी द्वितीय उल्लेख हिन्दी और हिन्दुस्तानी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्साद तासी ने १८३९ मे "इस्त्वार द ला लितरत्योर इदुई ए इदुस्तानी' का प्रथम खड प्रकाशित किया और इसका मूलाधार विल्सन का ही निबन्ध था। इसका हिन्दी अनुवाद डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी", इलाहाबाद से प्रकाशित किया है। कई पृष्ठो मे हमारे कवि से सम्बन्धित सामग्री है।

---

१ तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृष्ठ ३७५

३—इस क्षेत्र में तृतीय उल्लेखनीय कृति है शिवसिंह सेंगर लिखित 'शिवसिंह सरोज' जो प्रथम बार १८७५ ई० में छपा तथा तीसरी बार १८८३ ई० में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में एक सहस्र भाषा कवियों के बारे में अक्षर क्रम से प्रकाश डाला गया है। आरम्भ अकबर कवि तथा अन्त हुलास कवि से हुआ है। इन पुस्तक में गोस्वामी तुलसीदास के बारे में भी विचार किया गया है।

४—इस क्षेत्र में कार्य करने वालों में जार्ज ए० ग्रियर्सन बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम बार आपने १८८५ ई० में वेन की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में अपना शोधपूर्ण निबन्ध 'हिन्दुस्तान का मध्यकालीन साहित्य, विशेषत रूप से तुलसीदास'' पढ़ा। इसके बाद आप 'इंडियन ऐंटीक्वेरी'' तथा ''एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल'' के जर्नल में बराबर लिखकर तुलसीदास सम्बन्धी अपनी धारणा उपस्थित करते रहे। तुलसीदास सम्बन्धी आपके विचारों का सार संक्षेप 'द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में आया जिसका अनुवाद किशोरीलाल गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' के नाम से १९५७ ई० में प्रकाशित कराया है।

५—१९१० ई० में मिश्रबन्धुओं का ''हिन्दी नवरत्न'' प्रकाशित हुआ। हिन्दी के नौ कवियों ''तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, देवदत्त, बिहारीलाल, भूषण, मतिराम, केशव, चन्दरबरदाई तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' में हमारे कवि को शीर्ष स्थान प्रदान किया गया। ३१ से ८५ वें पृष्ठ तक इन विद्वानों ने तुलसी के ऊपर बड़ा गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है।

६—१९१६ ई० में श्री शिवनंदन सहाय की ''श्री गोस्वामी तुलसीदास'' पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें दो खंड हैं। (१) जीवनी खंड, (२) कला खंड। कला खंड में लेखक रामचरितमानस तक ही सीमित है।

७—१९२३ में नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से तुलसी ग्रंथावली तीन खंडों में प्रकाशित हुई। प्रथम खंड में मानस, दूसरे में अवशिष्ट ग्रन्थ तथा तीसरे में काव्य से तथा कवि के जीवन से सबंधित विद्वत्तापूर्ण निबंध संकलित किए गये हैं। वस्तुत तुलसी ग्रन्थावली (मूल) का इससे बढ़कर दूसरा पाठ (मानस को छोड़कर) नहीं निकला है। (मानस का प्रामाणिक पाठ डा० माताप्रसाद गुप्त ने हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित कराया है। इसलिए मैंने प्रबंध में कृतियों के उद्धरण के लिए तुलसी ग्रन्थावली, द्वितीय भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा रामचरितमानस के लिए डा० माताप्रसाद गुप्त वाला संस्करण ही उपयुक्त माना है।) इस ग्रन्थावली के सम्पादक हैं—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू ब्रजरत्नदास। तृतीय खंड ५५६ पृष्ठों का है जो तुलसी साहित्य के अध्येताओं के लिए बड़ा उपयोगी है। १ से ८७ वें पृष्ठ तक कवि के जीवन-खंड पर विचार किया है तथा ८८ से २४१ वें पृष्ठ तक आलोचनात्मक विचार है। पुन निबंधावली के ३१५ पृष्ठों में मान्य

विद्वानों के निबन्ध हैं। निबन्धकारों में प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, डा० सर जार्ज ग्रियर्सन, रेवरेण्ट एड्विन ग्रीव्स, प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, प० रामचन्द्र दूबे, प० बलदेव उपाध्याय, बाबू बहादुर लमगोड़ा, राजेन्द्रप्योहार सिंह, प० सुखराम चौबे तथा प० कृष्णविहारी मिश्र हैं।

८—१६२६ ई० में श्रीरामचन्द्र द्विवेदी का "तुलसी-साहित्य-रत्नाकर" प्रकाशित हुआ। इसके आदि खंड में तुलसीदास का "जीवन-चरित्र", मध्य में "विरचित ग्रन्थों का परिचय" तथा अवसान में "ग्रन्थालोचन" हैं। इस अवसान खंड में २४ निबन्ध हैं जिसमें कुछ उल्लेखनीय निबन्ध इस प्रकार है—वेद और तुलसीदास, उपनिषद् और तुलसीदास, दर्शन और तुलसीदास, कलाकौशल और तुलसीदास, कवित्व और तुलसीदास।

६—पंडित रामचन्द्र शुक्ल का तुलसी साहित्य की गवेषणात्मक आलोचना में महत्त्वपूर्ण योग है। उनके विचार जो पहले स्थान-स्थान पर आ चुके थे, क्रमबद्ध पुस्तकाकार रूप में १६२३ में नागरी प्रचारिणी सभा से प्रथम बार "गोस्वामी तुलसीदास' के रूप में प्रकाशित हुआ। इसमें ये निबन्ध हैं—(१) तुलसी की भक्ति-पद्धति, (२) प्रकृति और स्वभाव, (३) लोकधर्म (४) धर्म और जातीयता का समन्वय, (५) मंगलाशा, (६) लोकनीति और मर्यादावाद, (७) शील साधना और भक्ति, (८) ज्ञान और भक्ति, (६) तुलसी की काव्य-पद्धति, (१०) तुलसी की भावुकता, (११) बाह्य दृश्य चित्रण, (१२) अलंकार विधान, (१४) उक्तिवैचित्र्य, (१५) भाषा पर अधिकार, (१६) कुछ खटकने वाली बातें, (१७) हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान तथा परिशिष्ट में "मानस की धर्मभूमि।"

१०—पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने १६३६ ई० में "मानस' का एक संस्करण निकाला था, जिसकी भूमिका में उन्होंने तुलसीदास के जीवन-वृत्त, रचना तथा कलापक्ष पर अपना अभिमत प्रकट किया था। पीछे वही भूमिका दो भागों में प्रकाशित हुई। पुनः उसी का संशोधित संस्करण एक ही खंड में १६५३ ई० में राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। ३४८ पृष्ठों की इस पुस्तक के दो खंड हैं। पृष्ठ १ से पृष्ठ ११८ तक तुलसी और उनका जीवन तथा पृष्ठ ११६ से पृष्ठ ३४० तक तुलसी और उनका काव्य है। दूसरे भाग में ये निबन्ध हैं। (१) रचनाएं, (२) रचनाओं का कालक्रम, (३) अरबी फारसी के शब्द, (४) वाणीविलास, (५) शब्दभंडार, (६) बाह्य-जगत्, (७) अन्तर्जगत, (८) तुलसीदास और देवता, (६) तुलसीदास और स्त्रीजाति, (१०) तुलसीदास के छन्द, (११) संगीतज्ञ, गणितज्ञ और ज्योतिषज्ञ तुलसीदास, (१२) क्रान्तिकारी काव्य, (१३) कवि की आलोचना, (१४) रामचरितमानस की अंतर्कथाएं तथा गूढ़ार्थ कोष।

११—१६३१ मे बाबू श्यामसुन्दरदास तथा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल की पुस्तक गोस्वामी तुलसीदास प्रकाशित हुई जिसमे ये चौदह निबन्ध हैं। (१) आविर्भाव काल, (२) जीवन सामग्री, (३) जन्म, (४) शैशव, दीक्षा और शिक्षा, (५) गार्हस्थ्य जीवन और वैराग्य (६) खोज, (७) पर्यटन, (८) साहित्यिक जीवन, (९) मित्र और परिचित, (१०) गोसाईं जी के चमत्कार, (११) गोसाईं जी की कला, (१२) व्यवहार धर्म, (१३) तत्त्वसाधन, (१४) व्यक्तित्व।

१२—१६४७ ई० के आसपास आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय की पुस्तक "तुलसीदास" निकली थी। पीछे उसका संशोधित और परिवर्धित संस्करण १६५८ ई० मे काशी नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित हुआ है। ३१४ पृष्ठों की इस पुस्तक के ग्यारह अध्याय हैं। (१) जीवनवृत्त, (२) रचना (३) मानस की विशिष्टता, (४) चरित्रचित्रण (५) भक्तिनिरूपण, (६) मगल विधान, (७) काव्यदृष्टि, (८) भावव्यजना, (९) काव्य-कौशल, (१०) वर्णविचार, (११) तुलसी प्रशस्ति।

१३—तुलसी की समन्वयसाधना नामक पुस्तक मे राजेन्द्र व्योहारसिंह ने तुलसी की समन्वयात्मक चेतना पर प्रकाश डाला है।

१४—१६५४ ई० मे डा० भागीरथ मिश्र की पुस्तक "तुलसीरसायन" प्रकाशित हुई। १६८ पृष्ठों की पुस्तक के चार खंड हैं। (१) जीवन खड, (२) रचना खड, (३) आलोचना खड, तथा (४) सग्रह खड। जीवनी खड मे कवि के युग, जीवन और व्यक्तित्व पर अब तक के अनुसधानों के आधार पर प्रकाश डाला गया है। रचना खड मे प्रामाणिक रचनाओं का सक्षिप्त परिचय है। आलोचना खड मे रामकाव्य का विकास और रामचरितमानस, काव्यकला, तुलसी का राज्य-दर्शन, रामराज्य की धारणा, लोकजीवन और संस्कृति, दार्शनिक विचार तथा उप-सहार। सग्रह खड मे कवितावली, बरवै रामायण, पार्वतीमगल, दोहावली, गीता-वली, विनयपत्रिका तथा रामचरितमानस के उत्तम स्थल चुनकर रखे गये हैं। यह पुस्तक तुलसीदास-साहित्य से परिचय स्थापित करने के लिए ही मानो लिखी गई है।

१५—१६५६ ई० मे आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की पुस्तक गोस्वामी तुलसी-दास प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के विवेचन विन्यास के अन्तर्गत सात अध्याय हैं। (१) तुलसी और उनकी कविता, (२) ऐतिहासिक पीठिका (३) गोस्वामी जी का जीवनवृत्त, (४) गोस्वामी जी की रचनाएँ, (५) ग्रन्थों की समीक्षा, (६) तुलसी और सूर, (७) गोस्वामी जी की भाषा और रचना-पद्धति।

१६—सवत् १८८० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से श्री नारायण सिंह की पुस्तक क्रान्तिकारी तुलसी प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक मे तुलसी पर नए प्रकार से विचार किया गया है। पुस्तक मे १२ अध्याय हैं। (१) तुलसी की क्रान्तिकारी दृष्टि, (२) सन्त और क्रान्ति, (३) तुलसी विषयक अनुसधानों की समीक्षा, (४) तुलसी और मानस की पृष्ठभूमि, (५) तुलसी की विचारधारा

पर आरोपित दोष और उनका निराकरण (६) रामकथा पर काल्पनिकता का दोषारोपण और उसका निराकरण, (७) तुलसी की पूर्ववर्ती और समसामयिक परिस्थितियाँ, (८) तुलसी की क्रान्ति योजना (प्रथम खंड), (९) तुलसी की क्रान्तियोजना (द्वितीय खंड), (१०) तुलसी की क्रान्ति का प्रचार, (११) तुलसी की क्रान्ति के परिणाम और निष्कर्ष।

१७—इसके अतिरिक्त मैंने उन कार्यों को छोड दिया है जो मुख्यतया रामचरित मानस से ही सम्बन्धित हैं। इनमें आलोचनात्मक ग्रंथ मानस के संस्करण, उसके अन्य भाषाओं में अनुवाद और उनकी भूमिकाएं तथा हिन्दी में उनकी टीकाएं और भाष्य। रामचरितमानस पर आलोचनात्मक पुस्तकों में रामदास गौड की "रामचरितमानस की भूमिका" राजबहादुर लमगोडा की पुस्तक 'विश्व साहित्य में रामचरितमानस का स्थान" तथा डा० श्रीकृष्णलाल की पुस्तक "मानस-दर्शन" उल्लेखनीय हैं। जीवनवृत्त पर रामदत्त भारद्वाज की पुस्तक "तुलसी का घर बार" प्रसिद्ध है। अंग्रेजी में मानस के अनुवाद में ग्राउस और एटकिन्स की भूमिकाएं तथा रूस में वरान्निकाव की भूमिका महत्त्वपूर्ण हैं। मानस की टीकाओं में मानस की विजया टीका, सिद्धान्त तिलक और मानस पीयूष गहरे अध्ययन के परिणाम हैं।

उपाधि हेतु शोध-प्रबन्ध

स्थान सुलभ निबन्धों एवं पुस्तकों के उल्लेख के उपरान्त उन निबन्धों का उल्लेख कर रहा हूं जो उपाधि के लिए लिखे गये हैं।

(१) तुलसी पर सर्वप्रथम शोध-प्रबन्ध तुलसीदास का धर्म-दर्शन (थियॉलॉजी ऑव तुलसीदास) है। १९१८ में इस प्रबन्ध को लन्दन विश्वविद्यालय में जे० एन० कार्पेन्टर ने समर्पित किया था। इस पर उन्हें "डाक्टर ऑव डिविनिटी" की उपाधि मिली।

इस पुस्तक के दो खण्ड हैं। पहले खण्ड में पांच अध्याय और दूसरे खण्ड में आठ अध्याय हैं। पहले खण्ड के प्रथम अध्याय में प्रबन्ध की पूर्वपीठिका के रूप में हिन्दू धर्म की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। दूसरे अध्याय में अवतार और भक्ति का वर्णन है। तीसरे में रामपूजा, चौथे में तुलसीदास का संक्षिप्त परिचय तथा पाँचवें में "रामायण" के मूल विषय का विश्लेषण है।

दूसरे खण्ड के प्रथम अध्याय में ईश्वर के स्वरूप और विभूति का दिग्दर्शन, दूसरे अध्याय में हिन्दुओं के त्रिदेवों तथा अन्य देवताओं की विशेषताओं का वर्णन, तीसरे में इन्द्रपूजन में ह्रास तथा धार्मिक सुधार, चौथे में—राम का निरूपण, पाँचवें में अवतार, छठे में भक्ति, सातवें में माया और सम्बन्धित विषय तथा अन्तिम अध्याय में पाप और पुण्य का विवेचन है।

(२) तुलसी सम्बन्धी द्वितीय शोध-प्रबन्ध "तुलसी-दर्शन" है। नागपुर विश्वविद्यालय ने सन १९३८ में श्री बलदेव प्रसाद मिश्र को इस पर डी० लिट्०

की उपाधि प्रदान की गई। इस प्रबन्ध के आठ अध्याय हैं, प्रथम मे गोस्वामी जी और मानस, द्वितीय मे भारतीय भक्तिमार्ग, तृतीय मे जीवकोटियाँ, चौथे मे तुलसी के राम, पाचवे मे विरतिविवेक, छठे मे हरि भक्तिपथ, सातवें मे भक्ति के साधन तथा आठवें मे "तुलसीमत की विशेषता" का विवेचन कर तुलसी-दर्शन हरिभक्ति पथ है, यह तुलसीमत है जिसमे गीता से लेकर गांधीवाद तक की सारी सामग्रियो का शुभ-सयोग उपस्थित हुआ है।

(३) १९३९ मे 'रामचरितमानस मे तुलसी की शिल्पकला—एक विश्लेषण' नामक विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से श्री हरिहर नाथ हुक्कू को डी० लिट् की उपाधि मिली। यह प्रबन्ध अग्रेजी मे लिखा गया है।

इसके तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड मे रामचरितमानस की रचना के हेतु, राम-कथा चयन तथा उनके समन्वयवाद पर विचार किया गया है। द्वितीय खण्ड मे "मानस" की योजना तथा तीसरे मे पात्रो के चरित्राकन सम्बन्धी तुलसी की विशिष्टता पर प्रकाश डाला गया है।

(४) १९४० मे प्रयाग विश्वविद्यालय से माता प्रसाद गुप्त को "तुलसीदास—जीवनी और कृतियों का समालोचनात्मक अध्ययन" पर डी० लिट्० की उपाधि मिली। इस प्रबन्ध के सात अध्याय हैं। प्रथम मे तुलसी विषयक अध्ययन का परीक्षण, द्वितीय मे अध्ययन के आधार, तृतीय मे जीवनवृत्त सम्बन्धी मत-मतान्तरो, चौथे मे तुलसीदास की कृतियो का पाठभेद, पाँचवें मे कृतियो की प्रामाणिकता तथा रचना क्रम, छठे मे तुलसी की काव्य कला तथा सातवें मे मानस और विनयपत्रिका मे दर्शन की विवेचना हुई है।

(५) १९४९ ई० मे फादर कामिल बुल्के को प्रयाग विश्वविद्यालय से "राम-कथा—उत्पत्ति और विकास" पर डी० फिल० की उपाधि मिली। इस प्रबन्ध के चार खण्ड हैं जो २१ अध्यायो मे विभक्त हैं। प्रथम खण्ड मे प्राचीन रामकथा साहित्य, द्वितीय मे रामकथा की उत्पत्ति, तृतीय मे अर्वाचीन रामकथा-साहित्य तथा चौथे मे रामकथा के विकास पर विचार किया गया है। इसमे समग्र ससार मे प्रचलित (प्राचीन तथा आधुनिक काल मे) रामकथा के विभिन्न रूपो का विश्लेषण किया गया है।

(६) १९४९ ई० मे ही श्री राजपति दीक्षित को काशी विश्वविद्यालय से "तुलसीदास और उनका युग' नामक प्रबन्ध पर डी० लिट्० की उपाधि मिली। प्रस्तुत प्रबन्ध मे दस परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद मे तुलसी की समकालीन परिस्थितियो, द्वितीय मे तुलसी का सामाजिक मत, तृतीय मे तुलसी की धर्मभावना, चतुर्थ मे तुलसी की साम्प्रदायिकता, पचम मे तुलसी की परम्परागत भक्ति, षष्ठ मे तुलसी की उपासना पद्धति, सप्तम मे तुलसीदास का दार्शनिक दृष्टिकोण, अष्टम मे तुलसी और प्राचीन राम-साहित्य, नवम् मे तुलसी की सन्दर्भण कला और राम-

चरितमानस तथा दर्शन में तुलसी का साहित्यिक उपहार विवेचित किया गया है। तुलसीदास के सम्पूर्ण काव्य को विराट् पृष्ठभूमि में रखकर महत्वांकन लेखक का अभीष्ट है।

(७) १९५० ई० में कु० सी० वादवील को "रामचरितमानस के स्रोत और रचनाक्रम" पर पेरिस (सारबोन) विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि मिली। इसका फ्रेंच रूप "पटना विश्वविद्यालय" में है।

(८) १९५३ में श्री रामदत्त भारद्वाज को उनके प्रबन्ध "तुलसीदास का दर्शन" पर पी एच० डी० की उपाधि आगरा विश्वविद्यालय से मिली। दर्शन विभाग के अन्तर्गत "फिलासफी ऑव तुलसीदास" प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक चौदह अध्यायों में विभक्त है।

(९) १९५३ में लखनऊ विश्वविद्यालय से श्री देवकीनन्दन श्रीवास्तव को "तुलसीदास की भाषा" पर पी-एच० डी० की उपाधि मिली। इस प्रबन्ध में पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में विषय प्रवेश, द्वितीय में व्याकरणिक विवेचन, तृतीय में भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण, चतुर्थ में कलापक्ष, पंचम में तुलसी की शब्दावली में सामाजिक और सांस्कृतिक संकेत। इसके बाद उपसंहार में भाषा सम्राट् के नाते तुलसी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया गया है। इसके अतिरिक्त तीन परिशेष और जुटे हुए हैं। प्रथम परिशेष में भाषा के आधार पर तुलसी की रचनाओं का वर्गीकरण किया गया है, द्वितीय में भाषा के आधार पर तुलसी की जीवनी और कृतियों से सम्बन्धित संकेत दिए गए हैं। तृतीय परिशेष सहायक-ग्रन्थ सूची है।

(१०) १९५५ ई० में श्री सीताराम कपूर का "रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। इसमें पाँच अध्याय हैं। प्रथम में प्रबन्ध की प्रस्तावना, दूसरे में मूल स्रोतों से तुलसीदास के द्वारा किये गये शब्द ग्रहण का अध्ययन है। शब्द ग्रहण का व्यापक अर्थ लेकर शोधकर्त्ता ने इसके अंतर्गत पद-ग्रहण, पाद-ग्रहण, अर्थ ग्रहण तथा वृत्त-ग्रहण को समेट लिया है। तीसरे और चौथे अध्यायों में तुलसीदास के रामचरितमानस के मूल स्रोतों से ग्रहण किये गए अर्थों का वर्गीकरण और विश्लेषण और प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय में तुलसी की मौलिक उद्भावना पर भी विचार किया गया है। पाँचवें अध्याय में मानस के सातों काण्डों की कथाओं के मूल स्रोतों की गवेषणा की गई है तथा अन्त की उपसंहृति में तुलसी की मधुकरी वृत्ति के साथ ही उनकी कारयित्री प्रतिभा का भी उल्लेख किया गया है। परिशिष्ट में संस्कृत के श्लोकों (दो सौ साठ पृष्ठों में) का उद्धरण दिया गया है।

११—१९५७ ई० में श्री राजाराम रस्तोगी को "तुलसीदास-जीवनी और विचारधारा" पर पी-एच०-डी० की उपाधि मिली। इसके दो खंड हैं। प्रथम खंड में जीवनवृत्त से संबंधित तथ्यों पर विचार किया गया है। द्वितीय खंड विचार से

सम्बन्धित है। इसके चार अध्याय है। सामाजिक, राजनैतिक विचार, धार्मिक विचार तथा आध्यात्मिक विचार। इस प्रबन्ध मे तुलसीदास पर किए गए कार्यों का ही एक प्रकार से पुनर्मूल्याकन हुआ है।

१२—उपर्युक्त वर्ष के आसपास ही "रामभक्ति शाखा" पर श्री रामनिरजन पाण्डेय को पी-एच० डी० की उपाधि मिली। यह पुस्तक नवहिन्द पब्लिकेशन हैदराबाद से छप भी गई है।

एकाध शोध ऐसा भी हुआ है जो तुलसीदास से मुख्यतया सम्बन्धित न होकर उनसे ईषत् सम्बन्धित हैं। "जैसे, रामानद सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव"—बदरी नारायण श्रीवास्तव (१९५५) तथा "कृतिवासी बगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन"—रामनाथ त्रिपाठी।

प्रेरणा

अत पुन यह कहना आवश्यक नही होगा कि तुलसी के भक्त्या मक गीत शोध-प्रज्ञो की दृष्टि से अपरिचित ही रहे हैं। १९५१ ई० मे ईश्वर की पूव निश्चित योजना तथा तुलसी साहित्य के प्रति आस्थावान परिवार एव परिवेश के समुज्ज्वल सस्कार ने मुझे विज्ञान के मरुस्थल से दूर हटाकर साहित्य की पुष्प-वाटिका मे ला खडा किया। जब स्नातकोत्तर कक्षा मे प्रविष्ट हुआ तो विशेषाघ्ययन पत्र मे तुलसी साहित्य का मैंने आस्वादन किया। एम० ए० कर जाने पर भी जब तुलसी साहित्य के अध्ययन की अतृप्ति बार-बार मन को कुरेदती रही, तो पुन तुलसी के अस्पृष्ट गीतिकाव्यो पर ही मैंने शोधकाय प्रारम्भ किया।

शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा एव मौलिकता

तुलसी के भक्त्यात्मक गीत—विशेषत विनयपत्रिका नामक मेरे इस प्रबन्ध के दो खड हैं। पहले खड के दो अध्यायो मे परम्परा और पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है। प्रथम अध्याय मे भक्ति के विकास की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि जो भक्ति ऋग्वेद से नि सृत हुई, वही अपने पूर्ण विकसित रूप मे तुलसी के गीतकाव्य मे प्रवाहित हुई है। द्वितीय अध्याय मे भक्त्यात्मक गीतो का विकास दिखलाकर उसमे तुलसी के भक्त्यात्मक गीतो—विशेषत विनयपत्रिका से प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखलाया गया है। भक्ति और भक्त्यात्मक गीतो पर इतस्तत कुछ निबन्ध या छिटफुट निर्देश भले मिल जाये, किन्तु इस प्रकार का क्रमबद्ध विवेचन लेखक का अपना मौलिक प्रयास है।

द्वितीय खड तुलसीदास की गीतकृतियो—गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली तथा विनयपत्रिका से सम्बधित है। इस खड मे छह अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय मे तीन कृतियो का विषय और रूप की दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भक्त्यात्मक गीतो के भी कई प्रकार होते हैं और उन सब प्रकार के गीतो की एक समृद्ध परम्परा है। किन्तु जहाँ तक विशुद्ध आत्मनिवेदनात्मक

भक्त्यात्मक गीतों का प्रश्न है, उसमे तो तुलसी की विनयपत्रिका शीर्ष स्थान की अधिकारिणी है।

द्वितीय अध्याय म इन गीत ग्रन्थो की अनेकानेक टीकाओं का अध्ययन प्रस्तुत कर, संक्षेप मे यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि तुलसी के गीतग्रन्थो के टीकाकारो ने कही शब्द, कही पूरे चरण और कही पूरे पद के अशुद्ध अर्थ उपस्थित कर, पाठकों के काव्यास्वाद मे विघ्न उपस्थित किया है।

तृतीय अध्याय मे भक्तिशास्त्रीय दृष्टिकोण से गीतो का अध्ययन किया गया है। अब तक तुलसी के दर्शन पर लिखने वाले विद्वानो ने उनके दर्शन का आधार रामचरितमानस को ही बनाया है किन्तु पात्रारोपित कथनों मे दर्शन का समावेश सायास होता है। गीतो मे कवि के चिंतन कण अनायास पिरोये रहते हैं। उन्ही चिंतन-कणो को चुनकर तुलसी के गीतग्रन्थों मे उनके दर्शन का अध्ययन किया गया है। इसी अध्याय म भक्तिशास्त्र म वर्णित प्रपत्ति या विनय की भूमिकाओं का उल्लेख हुआ है और उनके आधार पर इन गीतों को मैंने विश्लेपित कर रख देने की चेष्टा की है।

चतुर्थ अध्याय मे इन गीत ग्रन्थों का साहित्य-शास्त्रीय आकलन उपस्थित किया गया है। सगीतशास्त्र के शास्त्रीय निकष पर इन गीतो को परख कर ऐसा निर्णय हमने दिया है कि तुलसी कुशल सगीतज्ञ गीतकार थे। इसी प्रकार छद, रस, अलकरण एव भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से भी इन गीतों का परीक्षण हमने किया है और यथा सभव पिष्टपेषित पद्धतियो से अपने को मुक्त रखने की चेष्टा की है।

पाँचवें अध्याय मे तुलसी के भक्त्यात्मक गीतों की प्राक् तुलसीयुग और पश्चात् तुलसी युग के प्रमुख कवियो के भक्त्यात्मक गीतो से तुलना कर, उनका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय मे इन गीत कृतियों एव रामचरितमानस को सामने रखकर विचार किया गया है कि विषय एक रहने पर काव्य रूप बदल जाने से तथा काव्य रूप एक रहने पर विषय बदल जाने से काव्य सौष्ठव मे कैसा अतर आ जाता है।

छठा अर्थात् अन्तिम अध्याय इस प्रबन्ध का उपसहार है। तुलसी के भक्त्यात्मक गीत जातिप्रिय हैं अथवा नहीं—विभिन्न तथ्यो के आधार पर विवेचित किया गया है। साथ ही साथ तुलसी के भक्त्यात्मक गीतों का सदेश लौकिक कम करते हुए पारलौकिक उन्नयन है। और इस प्रकार चारित्रिक निर्माण एव नैतिक उत्थान की दृष्टि से तुलसी की विनयपत्रिका हिंदी की गीता है।

ऊपर हमने अपने अध्ययन का रूप देकर अपनी मौलिकता एव नवीनता की ओर भी ईषत् सकेत किया है किन्तु दार्शनिकों की दृष्टि मे जब यह जगत् ही

उच्छिष्ट है तो फिर मेरे इस कार्य मे मेरा कितना है, भला यह दावा मैं कैसे कर सकता हूँ ?

आभार प्रदर्शन

इस प्रबन्ध के लेखनकाल मे अनेक गुरुजनो एव विद्वानो के सुझाव प्राप्त हुए हैं उनके प्रति मैं विनम्र आभार प्रकट करता हूँ। पूज्यपाद प० जगन्नाथ राय शर्मा, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय सम्प्रति सचालक, श्रीकृष्ण साहित्यिक अनुसधान मन्दिर, पटना ने जो तुलसी साहित्य के अधिकारी विद्वान् हैं, हमारे इस कार्य का निर्देशन किया है, उनके पद-नखो का स्मरण कर ही हमारा हृदय ज्योतिमान हो उठता है। उनकी कृपा के प्रति आभार प्रदर्शन करना औपचारिक मात्र ही होगा। गुरुवर आचार्य नलिन विलोचन शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना के वात्सल्य के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर कृतघ्न होना नही चाहता, क्योकि यह अधिकार जाने-अनजाने मुझे उनके वात्सल्य से ही प्राप्त हो गया है। जब जब मेरा जिज्ञासा शिशु उनके पास पहुँचा है, तब तब पूर्ण मनोरथ होकर ही लौटा है।

अन्य समादरणीय गुरुजनो मे प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बिहार विश्व विद्यालय, अंग्रेजी साहित्य के प्रकांड पडित डा० राधाकृष्ण सिंहा, छन्दशास्त्र के मान्यविद्वान् डा० शिवनदन प्रसाद, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना कॉलिज, के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन लोगो ने प्रबन्ध की रूपरेखा से समाप्ति तक अपने अध्ययन परक सुझावो से निबन्ध को सारगर्भ बनाया है।

अपने राज्य की सीमा के बाहर जिन मान्य विद्वानो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से हमे उपकृत किया है वे हैं डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पजाब विश्वविद्यालय, डा० माताप्रसाद गुप्त, रीडर, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा डा० कृष्णलाल, हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

इन सबके प्रति मैं विनत श्रद्धा के सुमन अर्पित करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

अपने अभिन्न मित्रो के बारे मे मौन रहना अपराध ही होगा। प्रो० गोपाल-राय, पटना कालिज तथा प्रो० रमाकात पाठक को मैंने अपने शोध के क्रम मे बडा तग किया है, अत उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित कर रहा हू।

अन्त मे मैं अपने उन अनेक शिष्यो के प्रति जो एम० ए० के छात्र हैं, एम० ए० कर चुके हैं तथा कई कालेजों मे प्राध्यापक भी हैं, अपना आभार प्रकट करता हू जिन्होंने इधर-उधर से पुस्तकें लाकर मेरी सहायता की थी।

इस शोध-प्रबन्ध की प्रेरणा, कार्यान्वयन एव समापन का यही सक्षिप्त इति

ह्रास है। अपनी सारी न्यूनताओं के साथ, हमारे प्राय सात वर्षों के कठिन श्रम ने तुलसी साहित्य शोध-मंदिर के द्वार पर यदि एक लघु तुलसीदल रखा हो, तो अपने को कृतकृत्य समझूँगा।

पटना कॉलेज,
पटना　　　　　　　　　　　　　　　　　　बचनदेव कुमार

संक्षेप-संकेत

१—वि०	...	विनयपत्रिका
२—गी०	....	गीतावली
३—श्री कृ०		श्रीकृष्ण गीतावली
४—गीतावली १	...	गीतावली बालकाड
५—गीतावली २	....	गीतावली अयोध्याकाड
६—गीतावली ३	....	गीतावली अरण्यकाण्ड
७—गीतावली ४	..	गीतावली किष्किधाकाण्ड
८—गीतावली ५	.	गीतावली सुन्दरकाण्ड
९—गीतावली ६	...	गीतावली लकाकाण्ड
१०—गीतावली ७	....	गीतावली उत्तरकाण्ड
११— ।		लघु
१२— ऽ	...	गुरु
१३—पृ०	..	पृष्ठ

प्रथम खण्ड

परम्परा और पृष्ठभूमि
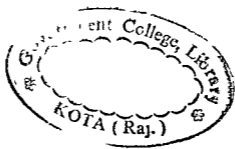
: १ :

भक्ति की परम्परा

भक्ति का विकास

व्युत्पत्ति और अर्थ—'भक्ति" शब्द "भज्" धातु मे क्तिन प्रत्यय लगने से बना है। भज् धातु के अनेक अर्थ हैं, जैसे सेवा, विभाग, गोणवृत्ति भगी, अनुराग विशेष आदि।[1] सक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर मे इसके इतने अर्थ दिए गए हैं। आराधना, सेवा, भजन, विभाग, विश्वास, उपचार, आश्रय लेना, आश्रित होना, आराध्य देवता का नाम जपना तथा उसका बारम्बार स्मरण और ध्यान करना।[2] अत ऐसा कहा जा सकता है कि भक्ति किसी व्यक्ति के अपने आराध्य देव के प्रति निरन्तर स्नेह रखने का नाम है। सामान्यत भक्ति अपने से किसी भी बडे आदमी या देवता के प्रति स्नेह का नाम है किन्तु विशेष रूप मे भक्ति शब्द का प्रयोग केवल ईश्वर प्रेम के अर्थ मे किया जाता है। इसलिए मनोवृत्ति से श्री प्रभु का दर्शन, भावना से सेवन-मनन, नेत्रो से श्री भगवतप्रेमी सतो का और प्रभु-प्रतिमा चित्रादिको का दर्शन, मुख से श्री भगवान् की गुण-स्तुति, सुयश युक्त चरित्रो का कीर्त्तन गान, कीर्त्तन से इन्ही चारो का श्रवण, हाथो से श्री हरि प्रतिमा और श्री गुरु सतो की पूजा सेवा, चरणो से परिक्रमा आदि भक्ति तल्लीन व्यक्ति के कार्य हैं। इन्ही कारणो से भक्ति की परिभाषा ईश्वर से ही सम्बन्धित भिन्न-भिन्न रूपो मे की गई है।

कुछ परिभाषाए निम्नलिखित हैं —

परिभाषाए

(क) सा त्वस्मिन् परमप्रेमारूपा।[4]

वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है।

(ख) सा परानुरक्तिरीश्वरे।[5]

ईश्वर मे अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है।

---

१ हलायुध कोश पृ० ४८७

२ पृ० ८७६, पाचवा सस्करण २००८ वि०

३ भक्तमाल प्रियादास की टीका सहित भूमिका पृ० १

४ नारद भक्ति सूत्र, सख्या २

५ शाडिल्य भक्ति सूत्र, १ अध्याय, २ सख्या

(ग) या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।[1]

अविवेकी पुरुषों की विषयों में जो अविचल प्रीति होती है वह आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदय से कभी दूर न हो ।

(घ) स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः ।[2]

पंडितों के द्वारा स्नेहपूर्वक परमात्मा में ध्यान लगाना ही भक्ति की संज्ञा पाता है ।

(ङ) उपाधि निर्मुक्तमनेकभेदकं भक्तिं समुक्ता परमात्मसेवनम्
अनन्यभावेन नियम्य मानसं महर्षिमुख्यैर्भगवत्परायणैः ।[3]

विद्वद्वय परम भक्ति रस-रसिक महर्षियों ने अनन्यभाव से तत्परता के साथ सर्वदा पुन-पुन छल-कपट प्रपंच आदि से रहित परमात्मा की सेवा को ही भक्ति कहा है ।

(च) द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता
सर्वेशे मनसो वृत्तिः भक्तिरित्यभिधीयते ।[4]

धर्म बुद्धि पूर्वक भगवद्गुणों का आराधन करने से द्रवीभूत चित्त की अविच्छिन्न धारावाहिक रूप तैल धारावत् भगवद् आकार वृत्ति ही भक्ति का लक्षण कहा जाता है ।

(छ) क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा
सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा ।[5]

क्लेश का नाश करने वाली, कल्याणदायिनी मोक्ष से भी महत्वपूर्ण दुर्लभ, गाढ़े, आनन्द की विशेषता से युक्त और श्रीकृष्ण को आकर्षित करने वाली वृत्ति ही भक्ति है ।

(ज) धर्म की रसात्मक अनुभूति भक्ति है ।[6]

व्याख्या

ऊपर जो भक्ति के लक्षण बतलाये गए हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि किसी व्यक्ति के हृदय में भक्ति उत्पन्न होने के लिए निम्नांकित बातें होनी चाहिए ।

---

१ विष्णु पुराण १।२०।१९

२ गीता पर रामानुजभाष्य ७ अध्याय, १ श्लोक

३ श्री वैष्णवमताब्जभास्कर, रामानन्द, ६१ वाँ श्लोक

४ भक्ति रसायन मधुसूदन सरस्वती, ३ सूत्र

५ श्री हरिभक्ति रसामृत सिन्धु प्रथम लहरी पूर्व विभाग १३ श्लोक

६ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, पृ० ७

(१) उस व्यक्ति का एक पूर्ण, सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् परमात्मा के अस्तित्व मे विश्वास।

(२) उस परमात्मा के प्रति उक्त व्यक्ति का श्रद्धापूर्ण विश्वास और अविरल प्रेम।

(३) परमात्मा का सगुण स्वरूप विशेषत मानवावतार भक्ति के लिए विशेष आवश्यक है।

जब तक मनुष्य इस समग्र विश्व मे एक तत्व का दर्शन नही करता तब तक उसके हृदय मे पूर्ण श्रद्धा हो नही सकती। यदि श्रद्धा पूर्ण नही तो प्रेम की अनन्यता और पूर्णता भी असभव है। उस ईश्वर को वह आराधक पहले जानने का प्रयत्न करता है। तात्पर्य यह है कि उसमे सबसे पहले ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा होती है। बारम्बार चिंतन और मनन से जब मनुष्य के हृदय मे उसके प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है तब उसके हृदय मे उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है और अन्त मे यही श्रद्धा आराधक के हृदय मे उस आराध्य देव के प्रति चरम कोटि का स्नेह उत्पन्न करती है जिसे भक्ति कहा जाता है। तुलसीदास ने इस प्रक्रिया को निम्नलिखित ढग से व्यक्त किया है।

जाने बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।[1]

ईश्वर के अनेक रूप हैं जिनमे दो प्रमुख हैं १ सगुण, २ निर्गुण। दोनो ही रूप परस्पर सापेक्ष हैं। किन्तु कुछ लोग इन दोनो रूपों को स्वतन्त्र मानते हैं और कुछ तो उसके सगुण रूप को स्वीकार ही नही करते। इसलिए वे निर्गुण भक्ति को ही ईश्वर की वास्तविक भक्ति मानते हैं। कुछ लोग ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकार करते हैं किन्तु उसका मनुष्य रूप मे अवतार नही मानते। किन्तु कुछ लोग सगुण ब्रह्म के अवतारो को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए भक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हो जाते हैं। हिन्दू धर्म के अधिकांश भक्त ईश्वर के निर्गुण सगुण एव अवतार रूप को भी स्वीकार करते हैं। यद्यपि ईश्वर के निर्गुण रूप को वे आराधना के सर्वथा उपयुक्त नही मानते। इस तथ्य के समर्थन के लिए लोकमान्य तिलक के गीता रहस्य का निम्नांकित उद्धरण द्रष्टव्य है।

"उपनिषदो मे जिस श्रेष्ठब्रह्मस्वरूप का प्रतिपादन किया गया है वह इन्द्रियातीत, अव्यक्त, अनन्त, निर्गुण और "एकमेवाद्वितीय" है। इसलिए उपासना का आरम्भ उस स्वरूप से नही हो सकता। कारण यह है कि जब श्रेष्ठ ब्रह्मस्वरूप का अनुभव होता है, तब मन अलग नही रहता, किन्तु उपास्य और उपासक अथवा ज्ञाता और ज्ञेय, दोनो एक रूप हो जाते हैं। निर्गुण ब्रह्म अन्तिम

१ रा० च० मा०—उत्तरकांड ८८ वा दोहा, पृष्ठ ५३७

साध्य वस्तु है, साधना नहीं और जब तक किसी न किसी साधन से निर्गुण ब्रह्म के साथ एक रूप होने की पात्रता मन में न आवे, तब तक इस श्रेष्ठ ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार हो नहीं सकता। अतएव साधन की दृष्टि से की जाने वाली उपासना के लिए जिस ब्रह्मस्वरूप को स्वीकार करना होता है, वह दूसरी श्रेणी का अर्थात् उपास्य उपासक के भेद से मन को गोचर होने वाला, यानी सगुण ही होता है, इसलिए उपनिषदों मे जहाँ जहाँ ब्रह्म की उपासना कही गई है वह यद्यपि अव्यक्त अर्थात् निराकार है तथापि छांदोग्योपनिषद् (३, १४) में कहा है कि वह प्राण, शरीर, सत्य सकल्प, सवगध, सर्वरस, सवकम अर्थात् मन को गोचर होनेवाले सब गुणों से युक्त हो। स्मरण रहे, कि यहाँ उपास्य ब्रह्म यद्यपि सगुण है, तथापि वह अव्यक्त अर्थात् निराकार है। परन्तु मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है, कि सगुण वस्तुओं मे से भी जो वस्तु अव्यक्त होती है, अर्थात् जिसका कोई विशेष रूपरग आदि नही और इसलिए जो नेत्रादि इन्द्रियो को अगोचर हो, उस पर प्रेम रखना या हमेशा उसका चिंतन कर मन को उसी में स्थिर करके वृत्ति को तदाकार करना मनुष्य के लिए बहुत कठिन और दु साध्य भी है। क्योंकि मन स्वभाव ही से चचल है इसलिए जब तक मन के सामने आधार के लिए कोई इंद्रिय गोचर स्थिर वस्तु न हो तब तक यह मन बार-बार ज्ञानी पुरुषो को भी दुष्कर प्रतीत होता है, तो फिर साधारण मनुष्यो के लिए कहना ही क्या ? अतएव रेगागणित के सिद्धान्तो की शिक्षा देते समय जिस प्रकार ऐसी रेखा की कल्पना करने के लिए, कि जो अनादि, अनत और बिना चौडाई की (अव्यक्त) किंतु जिसमें लम्बाई का गुण होने से सगुण है, उस रेखा का एक छोटा सा नमूना स्लेट या तख्ते पर व्यक्त करके दिखलाना पडता है, उसी प्रकार ऐसे परमेश्वर पर प्रेम करने और उनमें अपनी वृत्ति को लीन करने के लिए, जो सर्वकर्ता, सवशक्तिमान, सवज्ञ (अतएव सगुण है) परन्तु निराकार अर्थात् अव्यक्त है, मन के सामने प्रत्यक्ष नाम रूपात्मक किसी वस्तु के रहे बिना साधारण मनुष्यों का काम नहीं चलता। यही क्यो पहले किसी व्यक्त पदार्थ के देखे बिना मनुष्य के मन मे अव्यक्त की कल्पना ही जाग्रत नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, जब हम लाल, हरे इत्यादि अनेक व्यक्त रगो के पदार्थ पहले आँखो से देख लेते हैं तभी रग की सामान्य और अव्यक्त कल्पना जाग्रत होती है, यदि ऐसा न हो तो रग की यह अव्यक्त कल्पना हो ही नही सकती। अब चाहे इसे कोई मनुष्य के मन का स्वभाव कहे या दोष, कुछ भी कहा जाय, जब तक देहधारी मनुष्य अपने मन के इस स्वभाव को अलग नहीं कर सकता, तब तक उपासना के लिए यानी भक्ति के लिए निर्गुण से सगुण मे— और उसमें भी अव्यक्त सगुण की अपेक्षा व्यक्त सगुण ही मे आना पडता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं। यही कारण है कि व्यक्त उपासना का मार्ग अनादि काल से प्रचलित है, रामतापनी आदि उपनिषदो मे मनुष्यरूप धारी व्यक्त ब्रह्मस्वरूप की उपासना का वर्णन है और भगवद्गीता मे कहा गया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषा अव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःख देहवद्भिरवाप्यते ॥

अर्थात अव्यक्त मे चित्त की (मन की) एकाग्रता करनेवाले को बहुत कष्ट होते हैं क्योंकि इस अव्यक्त गति को पाना देहेन्द्रियधारी मनुष्य के लिए स्वभावत कष्टदायक है (१२, ५) इस प्रत्यक्ष मार्ग को ही भक्ति मार्ग कहते हैं। इसमे कुछ सदेह नही, कि कोई बुद्धिमान पुरुष अपनी बुद्धि मे परब्रह्म के स्वरूप का निश्चय कर उसके अव्यक्त स्वरूप मे केवल अपने विचारो के बल मे अपने मन को स्थिर कर सकता है परन्तु इस रीति मे अव्यक्त मे (मन को) आसक्त करने का काम भी तो अन्त मे श्रद्धा और प्रेम से ही सिद्ध करना होता है इसलिए इस मार्ग मे भी श्रद्धा और प्रेम की आवश्यकता छूट नहीं सकती। सच पूछो तो तात्विक दृष्टि से सच्चिदानद ब्रह्मोपासना का समावेश भी प्रेममूलक भक्ति मार्ग मे ही किया जाना चाहिए। परन्तु इस मार्ग मे ध्यान करने के लिए जिस ब्रह्म स्वरूप को स्वीकार किया जाता है, वह केवल अव्यक्त और बुद्धिगम्य अर्थात् ज्ञानगम्य होता है, और उसी से प्रधानता दी जाती है, इसलिए क्रिया को भक्तिमार्ग न कहकर अध्यात्मिक विचार, अव्यक्तोपासना या केवल उपासना अथवा ज्ञानमार्ग कहते हैं, और उपास्य ब्रह्म के सगुण रहने पर भी जब उसका अव्यक्त के बदले व्यक्त और विशेषत मनुष्य देह-धारी—रूप स्वीकृत किया जाता है तब वही भक्तिमार्ग कहलाता है।

भक्ति के भेद

भक्ति के भेद भिन्न-भिन्न दृष्टियो मे भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यदि हम उपासक या भक्त की भावनाओ के विकास की दृष्टि से देखें तो हम भक्ति के तीन भेद कर सकते हैं। (१) श्रद्धाभक्ति, (२) भावना भक्ति और (३) शुद्धा भक्ति। यदि हम उपास्य के प्रति श्रद्धा रखें और उसके स्नेह मे तल्लीन होकर उसे नमस्कार करें या उसकी प्रशसा करें तो वह श्रद्धा भक्ति कही जा सकती है।[१] जब हम एक मे अनेक और अनेक को एक मे देखते हैं और अनेक की सेवा के द्वारा ही एक की सेवा करने का प्रयत्न करते हैं तब हमारे कार्य मे भी एक गहरी एकान्त भावना की अनुभूति होती है और तब हम इसे भावना भक्ति की सज्ञा दे सकते हैं।[२] जब भक्त

१ It lay in Upasana or bhajana, expressed in namaskara vandana, seva, archana and the like, all performed in course of along with stutis or laudotory hymns
—The Bhaktionlt in Ancient India—Bhagwat Kumar P 3

२ Devotion to one was hence forward to be regarded as devotion to all, for the one must be contemplated in all It was all—comprehensive rational devotion—bhawana bhakti—which now came to dominate all religious ideas —The same book, Page 82

ईश्वर या अपने आराध्य देव को निर्गुण सगुण तथा अवतार रूप में भी स्वीकार करता है और उसके प्रति अपने अविरल प्रेम का प्रदर्शन करता है तो वह शुद्ध भक्ति कहलाती है जैसे गीता रहस्य के उद्धरण से स्पष्ट किया गया है। स्वामी विवेकानंद ने भी अपने भक्तियोग नामक ग्रंथ में भक्ति की तीन अवस्थाएं—श्रद्धा, प्रति तथा तदीयता स्वीकार की है।[1]

रूपगोस्वामी ने भक्ति के दो भेद स्पष्टत किए हैं—साध्यभक्ति तथा साधन भक्ति। साध्य भक्ति को ही भावभक्ति—पराभक्ति आदि नामों से अभिहित करते हैं। साधन मार्ग की भक्ति को गौणी भक्ति भी कहा जाता है। इस साधन भक्ति के दो भेद उन्होंने किए हैं। १ वैधी तथा २ रागानुगा।[2] जहां शास्त्रों का शासन, नियम-निर्धारण स्वीकार करते हुए भक्ति की जाती है वहां वैधी भक्ति है। लेकिन जहां केवल कृष्ण के प्रेम की कामना रहती है वहां रागानुगा भक्ति कहलाती है।

साधनों की दृष्टि से

यदि हम भक्तों के साधनों का ध्यान करके पुन भक्ति के भेद करें तो वह भागवत के अनुसार इस प्रकार कही जा सकती है।

> श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्
>
> अर्चन वदन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्[3]

अर्थात् जब आराधक अपने आराध्य देव की सेवा निम्नांकित व्यापारों से करता है उसके अनुसार भिन्न-भिन्न नौ नाम होते हैं, जैसे स्मरण, कीर्तन, श्रवण, पाद सेवन, अर्चन, वदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। ये सारे भेद भक्ति की क्रियाओं से सम्बन्धित हैं।

वृत्तियों के आधार पर

भक्त की विभिन्न वृत्तियों को ध्यान में रखकर भक्ति के चार भेद किए गए हैं। १ तामसी, २ राजसी, ३ सात्विकी, ४ निर्गुणा।[4] पुन आराध्य और आराधक के पारस्परिक सम्बन्ध के दो भेद से भी भक्ति के अनेक भेद किए जाते हैं। जैसे, कामजन्य भक्ति, द्वेषजन्यभक्ति, भयजन्यभक्ति, हास्यजन्य भक्ति, विस्मयजन्य भक्ति, उत्साहजन्य भक्ति इत्यादि।[5]

प्रियादास ने भक्तमाल की भूमिका में भक्ति की व्याख्या करते हुए भक्ति के

---

१ भक्तियोग—पृष्ठ ८४-८७, स्वामी विवेकानन्द

२ वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा

हरिभक्तिरसामृतसिंधु-पूर्वविभाग २ लहरी

३ भागवतपुराण—सप्तम स्कन्ध—श्लोक—२३-२४

४ भागवत—तृतीय स्कन्ध—२९ अध्याय, श्लोक ८-१४

५ भक्ति रसायन मधुसूदन सरस्वती, द्वितीय उल्लास, श्लोक ३ से २४ तक

पाँच भेदों की चर्चा की है । शात, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार तथा इनके रगो की भी कल्पना की है। शात का रग श्वेत, दास्य का चित्र-विचित्र, सख्य का लालरग, वात्सल्य का कचन रग तथा शृंगार का श्याम रग ।[1]

किन्तु इन भेद-प्रभेदो का अतिम निष्कर्ष यही है जिस प्रकार से हो अपने मन को अपने आराध्य देव मे तल्लीन कर देना चाहिए और तभी मनुष्य को आराध्य देव की पूर्ण भक्ति प्राप्त हो सकती है।

भक्ति के लक्षण और स्वरूप पर विचार करने के पश्चात् हमे उसकी उत्पत्ति और विकास के इतिहास पर विचार करना है। यह तो सही है कि मानव मस्तिष्क असख्य परस्पर विरोधी भावो का पुजीभूत रूप है और सम्भवत सभी भावो पर विजय प्राप्त करके केवल स्नेह या भक्ति को ही हृदय मे स्थान देना उसके लिए असम्भव कार्य है। शरीरधारियों के लिए शरीर की सारी वृत्तियों को दबाकर किसी एक वृत्ति को अपने मे बनाए रखना सर्वथा असम्भव है। इसलिए केवल भक्ति, केवल ज्ञान या केवल कर्म मनुष्य के जीवन मे उसके लक्ष्य नहीं बन सकते। प्रयत्न करने पर भी थोडे या अधिक अश मे ज्ञान, कर्म और भक्ति में कुछ-न-कुछ पारस्परिक मिश्रण रह ही जाता है। यह भी सही है कि ऐसी कोई वृत्ति हो नही सकती जिसमे केवल ज्ञान, केवल भक्ति या केवल कर्म की ही चर्चा की गई हो। जीवन के जिस प्रकार टुकडे नही हो सकते उसी प्रकार कर्म, ज्ञान और भक्ति को न तो जुदा किया जा सकता है और न तो ये जुदा हैं ही ।[2] यह सम्भव है कि कोई कृति केवल कर्म प्रधान हो, केवल भक्ति प्रधान हो या केवल ज्ञान प्रधान हो। इसलिए भक्ति का बीज यत्नपूर्वक ढूढने से प्राचीन योग प्रधान या कर्म प्रधान ग्रथो मे भी अवश्य मिल जायगा। इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि वेदो मे भक्ति का अस्तित्व है ही नही वे पूर्णत भ्रात समझे जा सकते हैं। कोई भी आस्तिक मनुष्य ऐसा हो नही सकता जो ईश्वर के प्रति श्रद्धा या प्रेम रखे बिना उसे अपने कार्य मे सहयोग देने के लिए आमत्रित करे। वेदो के मत्र जीवन्मुक्त महर्षियो के द्वारा श्रद्धा सम्पन्न हृदय से कर्मयोग के सम्पादन के लिए देवताओ के प्रति आह्वान हैं। ऐसी परिस्थिति मे उन महर्षियो के हृदय का सर्वथा अभाव बतलाना कदापि तर्कसगत नही माना जा सकता। कुछ लोगो का कहना है कि वेदो के मत्र वैदिक विधियो मे ही विनियुक्त होने के लिए रचे गए हैं। अतएव उनमे स्वतन्त्र रूप से हृदय के उद्गार नही हैं और यदि कुछ स्वतन्त्र उद्गार हैं भी तो वे प्रेम के पूर्ण स्वरूप से अनुप्राणित नही हैं। अतएव

---

1. शात दास्य सख्य वत्सल्य और सिंगार चारु,
पाचो रस सार विस्तार नीके गाये हैं।
टीका को चमत्कार जानेंगे विचारमान,
इनके सरूप मैं अनूप ले दिखाए हैं।

2. गीता प्रवचन—आचार्य विनोबा भावे, पृ० ८३

वेदों में भक्ति का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के लोगों के कुछ मत उद्धृत किए जाते हैं जिनपर हम विचार करना चाहते हैं।

मत

१ मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैंने वेद शब्द से उपलक्षित सारे वाङ्मय का अध्ययन किया है। पर यह भी कहना यथार्थ न होगा कि मेरे द्वारा इस अलौकिक साहित्य के पन्नों पर दृष्टिपात नहीं हुआ है। पहले, मंत्र भाग को लीजिए। जहाँ तक मैं देख पाया हूँ, किसी भी संहिता की किसी भी प्रसिद्ध शाखा में यह शब्द नहीं मिलता और यदि कहीं आ भी गया होगा तो उसका व्यवहार उसी अर्थ में नहीं होगा, जिस अर्थ में हम उसका आजकल प्रयोग करते हैं। अब ब्राह्मण को लीजिए। "उपनिषद्" भाग को छोड़कर ब्राह्मणों का शेष अंश तो कर्मकाड परक है। उसमें भक्ति की बात हो ही नहीं सकती। अब उपनिषद् भाग बच रहता है। इस नाम से सैकड़ों छोटी-बड़ी पुस्तकें पुकारी जाती हैं। इनमें से कुछ तो निश्चय ही तत्सम्प्रदाय-विशेष की प्रपोषक हैं। गोपालतापनी, नृसिंहतापनी, कालिकोपनिषद्, वृहज्जबालोपनिषद् जैसे ग्रन्थ इस कोटि में आते हैं। मैं इस समय इस विषय में कुछ नहीं कहता कि वस्तुतः इस प्रकार की पुस्तकों की प्रामाणिकता कहाँ तक है। परन्तु इस बात से सभी लोग सहमत होंगे कि जिन दस उपनिषदों पर शंकर तथा अन्य आचार्यों ने भाष्य किए हैं वे निश्चय ही प्रामाणिक रूप से उपनिषद् नामभाक् कृतियाँ हैं। शंकर ने श्वेताश्वतर पर भी भाष्य किया है। परन्तु इस पुस्तक की गणना, "ईशावास्य" आदि दश उपनिषदों के बराबर नहीं होती। अब यदि इन ग्रन्थों को देखा जाय तो इनमें भी भक्ति का कहीं पता नहीं चलता।

मोक्ष के उपाय सभी उपनिषदों में बताए गए हैं परन्तु कहीं भी इस प्रसंग में भक्ति की चर्चा नहीं आती। नचिकेता को यम ने—

"विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्" क० (२।३।१८)

इस ब्रह्मविद्या और सम्पूर्ण योगविधि की दीक्षा दी, जिससे नचिकेता को मोक्ष की प्राप्ति हुई। वहीं यह भी लिखा है कि जो दूसरा कोई भी इस मार्ग का अवलम्बन करेगा, वह मुक्त होगा।

छांदोग्य में कई विद्याओं का उपदेश है, परन्तु उनमें भक्ति की गणना नहीं है। इसका तात्पर्य क्या है? क्या वैदिक काल में कोई मुक्त नहीं हुआ? क्या जिसको वे लोग मुक्ति मानते थे, वह कोई दूसरी चीज थी? क्या वेद मोक्ष के विषय में प्रमाण नहीं है? यदि यह बात हो तो फिर हिन्दुओं के पास कोई भी धार्मिक आधार नहीं रह जायगा, क्योंकि श्रुति को छोड़कर ऐसा एक भी ग्रन्थ नहीं है जो सर्वमान्य हो।[1]

---

[1] कल्याण—भक्ति अंक, डा० सम्पूर्णानन्द, पृष्ठ १०६-११०

२—वेद की ऋचाओ मे देव (प्राण) ओतप्रोत हैं। देव का अर्थ जीवन होने से वेद जीवन काव्य (देवकाव्य) है। वेद जीवन प्रवाह को सतत प्रवाहमान रखने के लिए ब्रह्म को साकार (सान्त) रूप मे आबद्ध नही करता। वेद का कथन है कि ब्रह्म का कोई आकार (प्रतिमा) या उपमान नही है। साकार स्वरूप के अभाव मे ब्रह्म से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना असम्भव है। व्यक्तिगत सबधो के अभाव मे भक्ति का नि सृत होना दुष्कर है। वेद जीवन काव्य होने से भक्ति का स्रोत नही है। वेद जीवन काव्य है, इस चरम सत्य की अवहेलना कर डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० बेनी प्रसाद, जदुनाथ सिंहा, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, प० बलदेव उपाध्याय, श्री कृष्णदत्त भारद्वाज, डा० सील, बेल्वेल्कर, राणा डे प्रभृति विद्वानो ने इन्द्र इत्यादि देव को चेतन व्यक्तित्व के रूप मे अगीकृत कर यह स्वीकार किया है कि वेद भक्ति का आदि स्रोत है।

देव शब्द की व्याख्या से स्पष्ट है कि वेद मे किसी भी देव को चेतन व्यक्तित्व (साकार-स्वरूप) प्राप्त नही हुआ है। वेद मे देवो का अर्थ प्राण है। वेद मे चित्रित हुए देवताओ के स्वरूप के सम्बन्ध मे श्री अरविंद का मत है कि देवताओ के नाम ही इस बात के द्योतक है कि वह केवल विशेषण हैं, वर्णन है, किसी स्वतन्त्र व्यक्ति के वाचक नाम नही। मैक्समूलर का भी यही विचार है कि वैदिक देव जीवित व्यक्ति नहीं थे अपितु वह गुणवाचक सज्ञा है। यास्क का कथन है कि देव जीवित प्राणी न थे, प्रत्युत जड पदार्थ हैं।[1]

३ सच्ची बात कदाचित् यह है कि अपने मूलरूप मे भक्ति आर्येतर प्रवृत्ति थी और वह आर्यों एव द्रविडो के भारत आगमन के पहले से ही भारतीय जनता मे विद्यमान थी। चूँकि द्रविड भारत मे आर्यों से पहले आये, इसलिए भक्ति तत्व पहले द्रविड धर्म मे समाविष्ट हुआ। वैदिक आर्यों मे भक्ति का प्रस्फुटित रूप नही मिलता, क्योकि उनका धर्म हवन और यज्ञ तक सीमित था। जब तक यज्ञवाद लोकप्रिय रहा, आर्य जनता का ध्यान भक्ति की ओर नही गया, जो उस समय द्राविड जनधर्म का अग समझी जाती थी। पीछे ब्राह्मणो के काल मे जब यज्ञवाद निर्जीवता धारण करने लगा और ऋषिगण उपनिषदो मे एक नए धर्म की खोज करने लगे, तभी आर्य जनता ने भक्ति को अपनाया होगा क्योकि यज्ञवाद की जडता से उनका मन ऊबने लगा था।[2]

मतो का खडन

ऊपर जिन सज्जनो के उद्धरण दिए गए हैं वे कोई बडे वेदज्ञ विद्वान् तो नही हैं किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से उनमे श्री सम्पूर्णानन्द तथा दिनकर विशेष आदरणीय हैं। अब उनके मतो का प्रभाव सामान्य जनता पर विशेष रूप से पड

१ श्री रामावतार, एम० ए०, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४४, संख्या ४, पृ० ३२-३३

२ श्री रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ २६५

सकता है। ऐसी परिस्थिति मे इनके मतो की सूक्ष्म समीक्षा की यहाँ अपेक्षा है। श्री सम्पूर्णानन्द का कहना है कि (१) किसी भी संहिता की किसी भी प्रसिद्ध शाखा मे यह (भक्ति) शब्द नही मिलता। (२) अगर वह कही आया भी हो तो किसी अन्य ग्रंथ मे आया होगा। अत संहिताओ मे भक्ति का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। (३) ब्राह्मण ग्रन्थ कर्मकाड परक हैं अत उनमे भक्ति मिल नही सकती। (४) उपनिषदो मे जो दस प्रसिद्ध उपनिषदें हैं उनमे भी भक्ति का पता नही चलता। अत वैदिक साहित्य मे भक्ति भावना का अस्तित्व मानना उचित नही। श्री रामावतार का कहना है कि वैदिक साहित्य जीवन का साहित्य है। अत उसमे भक्ति के लिए अवकाश नही है। वे कहते हैं कि यास्क का कहना है कि देव जीवित प्राणी न थे प्रत्युत जड पदार्थ हैं। श्री दिनकर का कथन है कि अपने मूलरूप मे भक्ति आर्येतर प्रवृत्ति है। आर्यों के भारत आने के पूर्व द्राविडो मे भक्ति भावना थी जिसे आर्यों ने ग्रहण किया।

इनमे से किसी ने भी दीर्घकाल तक वैदिक साहित्य का निरन्तर अनुशीलन, मनन और चिन्तन नही किया है। इसलिए वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे उनके कथन की कितनी प्रामाणिकता है यह आसानी से समझा जा सकता है। किसी भी साहित्य मे यदि भक्ति का प्रतिपादन है तो उसमे भक्ति शब्द का प्रयोग करना कोई आवश्यक नही है। भक्ति शब्द का प्रयोग हो या न हो हमे उसमे यही देखना है कि उसमे वर्णित आराधक अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा, स्नेह और विश्वास की अभिव्यक्ति करता है कि नही। कोरा कर्मकाड भक्तिहीन भी हो सकता है और भक्तिपूर्ण भी। उपनिषदो के सम्बन्ध मे श्री सम्पूर्णानन्द का कथन है कि उसमे भक्ति का पता नही चलता उसके उत्तर मे उन उपनिषदो के निम्नांकित उद्धरण पर्याप्त होंगे।

१—अथाध्यात्म यदेतद्गच्छतीव च मनो नेन चेतस्मरत्य भीक्ष्ण सकल्प।
तद्ध तद्वन नाम तद्वनमित्युपासितव्य स य एतदेव वेदाभि हे न सर्वाणि भूतानि सवांछन्ति।[1]

अब उदाहरण दिया जाता है कि मन इस ब्रह्म के समीप जाता हुआ-सा प्रतीत होता है तथा इस ब्रह्म को निरन्तर अतिशय प्रेमपूर्वक स्मरण करता है, इस मन के द्वारा ही उस ब्रह्म के साक्षात्कार की उत्कट अभिलाषा भी होती है।

वह परमब्रह्म परमात्मा प्राणिमात्र का प्रापणीय होने के कारण 'तद्वन्' नाम से प्रसिद्ध है, वह आनन्दघन परमात्मा प्राणिमात्र की अभिलाषा का विषय और सबका परम प्रिय है, इस भाव से उसकी उपासना करनी चाहिए, वह जो भी साधक उस ब्रह्म को इस प्रकार जान लेता है, वह प्राणिमात्र का प्रिय हो जाता है।

[1] केनोपनिषद, खण्ड ४, मन्त्र ५, ६ —गीता प्रेस गोरखपुर

२— एतच्छ्रु त्वा सम्परिगृह्य मर्त्य
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य
स मोदते मोदनीय हि लब्ध्वा
विवृत सद्म नचि केतस मन्ये ।[1]

मनुष्य जब इस धर्ममय उपदेश को सुनकर, भलीभाँति ग्रहण करके और उस पर विवेकपूर्ण विचार करके इस सूक्ष्म आत्मतत्व को जानकर अनुभव कर लेता है तब वह आनन्द-स्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को पाकर आनन्द मे ही मग्न हो जाता है। तुम नचिकेता के लिए मैं परमधाम का द्वार खुला हुआ मानता हूँ।

३— न सदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनेनम्
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ।[2]

इस परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप अपने सामने प्रत्यक्ष विषय के रूप मे नही ठहरता। इसको कोई भी चर्मचक्षुओ द्वारा नहीं देख पाता, मन से बारम्बार चिन्तन करके ध्यान मे लाया हुआ वह परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने मे आता है। जो इसको जानते हैं वे अमृत स्वरूप हो जाते हैं।

४— यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरो
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन
प्रकाशन्ते महात्मन ।[3]

जिसकी परमदेव परमेश्वर मे परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वर मे है उसी प्रकार गुरु मे भी है उस महात्मा पुरुष के हृदय मे ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

श्री रामावतार ने देवताओ को जड बतलाया है और इसके लिए यास्क की दुहाई दी है। किन्तु यास्क ने अपने निरुक्त मे स्पष्टत लिखा है कि—

"एकस्यात्मनयो न्ये देवा प्रत्यगानि भवन्ति"[4]

अर्थात् एक ही आत्मा (परमात्मा) के दूसरे देवता (जड या चेतन) प्रत्यग होते हैं और उस पर जो व्याख्या है उसका अंतिम निष्कर्ष है—'सा एष महानात्मा अग्नीन्द्र सूर्याध्याग प्रत्यगभावेन् व्यूह मनुभवन् एकोपि सन् बहुधा स्तूयते।" अर्थात्

---

१ कठोपनिषद् अध्याय १ वाली २ श्लोक १३ —गीता प्रेस गोरखपुर
२ कठो० अ० २ वली ३ श्लोक म० ६
३ श्वेताश्वतरोपनिषद, अध्याय ६ श्लोक २३
४ निरुक्त—अध्याय ७ खड ४ नवीं कारिका

वही महान् आत्मा अग्नि, इन्द्र, सूर्य आदि जिसके अग एव प्रत्यग हैं, अनेक के साथ अपने को एक समभता हुआ एक होने पर भी बहुत प्रकार से प्रशसित होता है।

इसलिए देवताओ को जड कहना ठीक नही लगता।

श्री रामधारी सिंह दिनकर का वैदिक साहित्य पर विचार व्यक्त करना अनाधिकार चेष्टा प्रतीत होती है। आर्य बाहर से भारतवर्ष में आये यह बात विदेशियों की कोरी कल्पना है। आर्य साहित्य मे इसके लिए कोई प्रमाण नहीं। वेदो मे भक्ति भावना है या नही इसको समझने के लिए भी उनका निरन्तर अभ्यास आवश्यक है। बिना समझे-बूझे कुछ कहना ठीक नही है।

वेदो में भक्ति का मूल रूप

वेदों में भगवद्भक्ति का परिपक्व रूप भले ही न हो किन्तु उसका मूल अवश्य उनमें निहित है। इस सम्बन्ध में पंडित बलदेव उपाध्याय का कथन द्रष्टव्य है।

"वैदिक साहित्य के गाढ़-अनुशीलन से यही स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि वेद जैसे कर्म तथा ज्ञान का उदय स्थल है वैसे ही वह भक्ति का भी उद्गम स्थान है। इस अवसर पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। धर्म के सिद्धान्तों के इतिहास की पर्यालोचना करने पर प्रायः देखा जाता है कि किस युग में किसी सिद्धान्त विशेष की उपोद्बोधक सामग्री विद्यमान रहती है, यद्यपि उस सिद्धान्त का प्रतिपादक शब्द उपलब्ध नहीं होता। ऐसी दशा में अभिधान के अभाव में हम तत्तत् सामग्री की भी उपेक्षा कर बैठते हैं। यह सत्य है कि संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे अनुराग सूचक "भक्ति" शब्द का सर्वथा अभाव है, परन्तु यह मानना सत्य नही है कि इस अभाव के कारण उस युग मे भक्ति की कल्पना अभी तक प्रसूत ही नही हुई थी। संहिताओ मे कर्म काड का प्राबल्य था, परन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि उस समय ज्ञान तथा भक्ति की कल्पना का आविर्भाव ही नही हुआ था। मन्त्रो मे विशिष्ट देवताओ की स्तुति की गई है, परन्तु यह स्तुति इतनी मार्मिकता से की गई है कि इसमें श्रोता के हृदय मे अनुराग का अभाव मानना नितान्त उपहासास्पद है। हमारा तो कथन है कि बिना भक्ति-स्निग्ध हृदय के इस प्रकार की कोमल तथा *भावुक स्तुतियों का उदय ही नहीं हो सकता। शुष्क हृदय मे न तो इतनी कोमलता* आ सकती है और न इतनी भावुकता। देवताओं की स्तुति करते समय साधक उनके साथ पिता, माता, स्निग्ध बन्धु आदि नितात मनोरम हृदयगम सम्बन्ध स्थापित करता है और यह स्पष्ट प्रमाण है कि श्रोता के हृदय मे देवताओ के प्रति सर्वतोभावेन प्रेम तथा अनुराग विद्यमान है।[1]

[1] भागवत सम्प्रदाय—पण्डित बलदेव उपाध्याय, पृ० ६४

वेदो मे भक्ति भावना के अस्तित्व को स्वीकार कुछ विद्वान् इसलिए नही करते कि वेदो की रचना वे यज्ञ-संपादन के लिए ही मानते हैं। किन्तु इस बात का निर्णय करना कठिन है कि पहले यज्ञो के संपादन होते थे और उनके लिए ही वेदमन्त्रो की रचना हुई अथवा पहले श्रद्धा भक्तिपूर्ण ऋषियो ने अपनी ऋचाएँ लिखी और तत्पश्चात् उन मन्त्रो का कही न-कही यज्ञकर्त्ताओने विनियोग किया यदि यह मान लिया जाय कि कर्मकाड का विकास मन्त्र रचना के पीछे है तो निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि वेदो मे भक्ति और उपासना के बहुत से तत्व प्राप्त हो सकते हैं। प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा का कहना है कि "किन्तु स्वतन्त्र रूप से ऋग्वेद का अध्ययन करने पर यह बात सर्वाश मे सत्य नही प्रतीत होती। कुछ ऐसे मन्त्र भी हैं, जिनमे देवताओ का आह्वान नही मिलता जैसे नासदीय सूक्त और पुरुष सूक्त इत्यादि। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि ऋग्वेद के कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं जो यज्ञानुष्ठान से स्वतन्त्र एव असम्बन्धित हैं। वे ऋषियो के स्वतन्त्र चिंतन और भावोद्रेक के परिणाम हैं, जो यज्ञानुष्ठान मे कही न कहीं विनियुक्त कर लिए गए हैं। यदि यह बात सत्य हो तो हमे यह मानना पड़ेगा कि कर्मकाडप्रधान वैदिक युग मे भी स्वतन्त्र चिंतन और स्वत सम्भूत भावोद्रेक का अभाव नही था। यही स्वतन्त्र चिंतन और भावोद्रेक आगे चलकर विस्तृत एव विशाल बनकर कर्मकान्ड की प्रतिक्रिया स्वरूप दर्शन और उपासना के जन्मदाता हुए।[1]

पंडित बलदेव उपाध्याय तथा प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा ने ऋग्वेद के अनेक मन्त्र उद्धृत कर यह सिद्ध कर दिया है कि वेदो की सहिताओ मे भक्ति का बीज अवश्यमेव है। हाँ, एक बात निश्चित है कि वेदो मे निष्काम भक्ति से अधिक सकाम भक्ति ही है। वेदो की इसी सकाम भक्ति का भगवान श्रीकृष्ण ने "यामिमा पुष्पितां वाचं" इत्यादि शब्दो से प्रारम्भ होने वाले श्लोक और उसके आगे के कई श्लोको मे वेदिकी भक्ति का उपहास किया है। हम यहा स्वतन्त्र रूप से कुछ मन्त्रो को उद्धृत कर दिखाने का प्रयास कर रहे हैं कि वेदो मे भक्ति की कैसी तल्लीनावस्था दर्शनीय है।[2]

ऋग्वेद

परमात्मा का सुन्दर वर्णन

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्
वियस्त स्तम्भ षडिमा रजास्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्।

—१।१६४।६

---

१ सूर साहित्य दर्पण, पृष्ठ २१

२ वेदो में भक्ति है—इसकी पुष्टि के लिए

वेदों में नवधा भक्ति - याज्ञिक सम्राट प० श्रीवेणीराम जी शर्मा गौड, वेदाचार्य, काव्य तीर्थ, पृ० ४१-४३। प्रति अंक वर्ष ३२

मैं अज्ञानी हूँ। कुछ न जानकर ही ज्ञानियों के पास जाने की इच्छा से पूछता हूँ। जिन्होंने इन छ लोकों को रोक रखा है, जो जन्म रहित रूप से निवास करते हैं, वह क्या एक हैं।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन अश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
—१।१६४।२०

दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा), मित्रता के साथ, एक वृक्ष या शरीर में रहते हैं। उनमें एक (जीवात्मा) स्वादु पिप्पल का भक्षण करता है और दूसरा (परमात्मा) कुछ भी भक्षण (भोग) नहीं करता, केवल द्रष्टा है।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥

चचल, श्वास-प्रश्वासशील और अपनी कार्य सिद्धि में व्यग्र जीव सोकर घर में, अविचल भाव से अवस्थित हुआ। मर्त्य के साथ उत्पन्न मर्त्य का अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ सदा विहरण करता है।

ईश्वरीय सत्ता का अनुभव

स मद्वय यवसादो जनानामहं यावद उर्वज् अन्त
अत्रा युक्तो वमातारमिच्छादयो अयुक्त चुन जद्ववान्॥
—१०।२७।९—इन्द्रदेवता—इन्द्र पुत्र वसुक ऋषि।

(ऋषि की व्यापक अनुभूति) ससार में जो तृण खानेवाले हैं, वह भी हम ही हैं। विस्तृत हृदयाकाश में जो अन्तर्यामी ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ। हृदयाकाश में रहनेवाले इन्द्र अपने सेवक को चाहते हैं। योगशून्य और अतीव विषयी पुरुष को इन्द्र सन्मार्ग में लगाते हैं।

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षाम द्यावापृथिवी बिभर्ति
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितोवहन्ति॥
—१०।३१।८—विश्वदेव देवता। कवष ऋषि॥

द्युलोक और भूलोक ही अंतिम नहीं हैं इनके ऊपर भी और कुछ है। वह (ईश्वर) प्रजा का बनानेवाला और द्यावापृथ्वी का धारण करने वाला है। वह अन्न का प्रभु है। जिस समय सूर्य के घोड़ा ने सूर्य का वहन करना प्रारम्भ नहीं किया था, उसी समय उसने अपने शरीर का निर्माण किया था।

भक्त्यात्मक उद्गार

प्र ये दिवो बृहत शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम्॥
—५।८७ श्री सूक्त (मरुद्गण देवता—अत्रि के)

जो दीप्त स्वच्छन्दता विस्तीर्ण स्वर्ग से आह्वान श्रवण करते हैं, अपने गृह

मे अवस्थित करने पर जिन्हे चालित करने मे कोई समर्थ नही है जो अपनी दीप्ति द्वारा दीप्तिमान है जो अग्नि की तरह नदियो को सचालित करते हैं। एवयामरत स्तुति द्वारा उनकी उपासना करते हैं।

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वय प्रविद्मना बुवत एवयामरुत्।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधर्षे शवो दाना महना तदेषामधृष्टासो नाद्रय ॥[१]
—५।८७।२

जो महान् इद्र के सहित प्रादुर्भूत हुए हैं, उन मरुतो का एवयामरुत् स्तवन करते हैं। हे मरुतो! तुम लोगो का बल अभिमत फल दान से महान् है और अनभिभवनीय है। तुम लोग पर्वत की तरह अटल हो।

ते रुद्रास समखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वे वयामरुत्।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिव येषामज्मेष्वा मह शर्धास्द्युतेनसाम् ॥
—५।८७।७

हे पूजनीय और अग्नि की तरह प्रभूत रुद्र पुत्रो, एवयामरुत् की रक्षा करो। अन्तरिक्ष सम्बन्धी दीर्घ और विस्तीर्ण गृह मरुतो के द्वारा विख्यात होता है। निष्पाप मरुद्गण गमनकाल मे प्रभूतशक्ति प्रकाशित करते हैं।

ब्राह्मण और आरण्यक

सहिताओ के पश्चात् ब्राह्मणो और आरण्यको मे जिस कर्मकाड का निरूपण है वह भी सर्वथा भक्तिहीन नही है। कारण यह है कि उसमे कर्त्ता की बुद्धि प्रशस्तता अत्यत आवश्यक बतलायी गई है। श्रद्धा और विश्वासपूर्वक ईश्वर की आकाक्षाओ का पालन करना भक्ति ही है। इसलिए वैदिक कर्म ईश्वर की आज्ञा से सम्पादित होने के कारण भक्ति की परिधि के भीतर ही रहते हैं। लोक व्यवहार मे भी पितृभक्त वही पुरुष नही कहा जा सकता जो केवल अपने पिता की सेवा और प्रशसा करता रहे वरन् वह भी कहा जा सकता है जो पिता की सारी उचित आज्ञाओ का प्रेम पूर्वक पालन करता है। इसलिए कर्मकाड को भक्ति से शून्य नही बतलाया जा सकता।

दर्शन साहित्य

चिंतन प्रधान दर्शन शास्त्र भी भक्ति की ही एक अवस्था प्रकट करते हैं। आराध्य के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने मे लगी हुई मानसिक क्रियाए ही दर्शन का रूप धारण करती हैं। ऐसी परिस्थिति मे दर्शन भी भक्ति से सर्वथा पृथक् नही माना जा सकता। उपनिषद् काल मे ज्ञानकाड की दो धाराए भले ही दिखलाई पडे एक हृदयपक्ष रहित और दूसरी हृदयपक्ष समन्वित। लेकिन हृदयपक्ष रहित ज्ञान से

१ सूरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

भी ब्रह्मधाम प्राप्ति कतई सम्भव नहीं है।[1] हम ऊपर दिखला आए हैं कि कई उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों में उपासना का स्पष्टत उल्लेख किया गया है। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में तो "भक्ति" शब्द का स्पष्ट उल्लेख कर ही दिया गया है।

उपनिषद्

दर्शनों में भक्ति का अस्तित्व बतलाते हुए प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा ने कहा है—किन्तु जिस प्रकार संहिताओं में कर्मकाण्ड की प्रधानता होते हुए भी उनके बहुत से मंत्रों में भक्ति के उद्‌गार मिलते हैं, उसी प्रकार उपनिषदों में भी प्रेम या भक्ति के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की भावना मिलती है। उदाहरण के लिए बृहदारण्यकोपनिषद् के चौथे अध्याय के तृतीय ब्राह्मण में यह स्पष्ट लिखा है कि जिस प्रकार अपनी प्रियतमा से आलिंगन होने पर न कुछ बाहरी वस्तु का अनुभव होता है और न भीतरी वस्तु का, उसी प्रकार परमात्मा का आलिंगन होने पर मनुष्य न कुछ बाहरी बात जानता है, न भीतरी (तद्यथा प्रियया स्त्रियया सम्परिष्वक्तो न बाह्य किंचन वेदनान्तम्)। मुण्डकोपनिषद् के दूसरे खंड के ग्यारहवें मंत्र में भी अव्यय पुरुष के पास पहुंचने के लिए तपस्या के साथ श्रद्धा को भी परमात्मा को प्राप्त करने का एक साधन बतलाया गया है। श्वेताश्वेतरोपनिषद् के छठे अध्याय के अन्तिम मंत्र में भक्ति का स्पष्टतया उल्लेख है। वह मंत्र यों है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरो।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशते महात्मन ॥११॥

अर्थात् जो कुछ ईश्वर का स्वरूप बतलाया गया है वह उसी मनुष्य के हृदय में भासित हो सकता है जो ब्रह्म में पूर्ण भक्ति रखता है और जैसी भक्ति ब्रह्म में रखता है वैसे ही अपने गुरु में भी।

उपनिषदों के अतिरिक्त ब्रह्मसूत्र में भी पहले अध्याय के प्रथम पाद के सातवें सूत्र मोक्ष का अधिकारी बतलाते हुए भगवान् व्यास ने 'तन्निष्ठ" शब्द का प्रयोग किया है। इस तन्निष्ठ शब्द का स्पष्ट अर्थ है—ब्रह्म में निश्चल रूप से स्थित। जीवात्मा की यह स्थिति परमात्मा में निश्चल रूप से केवल ज्ञान से सम्भव नहीं है। अतएव इस सूत्र में भक्ति का यदि प्रधानतया नहीं तो गौण रूप में मोक्ष की योग्यता के लिए आवश्यक निर्देश किया गया है।"[2]

भक्ति विकास के तीन युग

पंडित बलदेव प्र० उपाध्याय ने भक्ति के तीन युग अथवा तीन उत्थान माने हैं। प्रथम १५०० ई० पू० से ५०० ई० तक, द्वितीय उत्थान ७०० ई०—१४०० ई०

---

[1] नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात। एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम —मुण्डकोपनिषद् (३-२)—४

[2] सूर साहित्य दर्पण, पृ० २६-२७

तक और तृतीय उत्थान १४०० से १६०० ई० तक। इस प्रकार ईस्वी सन् से लगभग १५०० वर्ष पूर्व से लेकर बीसवी सदी तक अर्थात् लगभग साढे तीन हजार वर्षो तक क्रमश विकास होता चला गया है। वैष्णव धर्म का विकास कई प्रकार के व्यक्तियो के सहयोग से हुआ है। साहित्यिक, धार्मिक आचार्य तथा महान् शासक भक्ति के उत्थान के प्रमुख स्तम्भ रहते चले आये हैं। यही नही कभी-कभी तो सामान्य जनजीवन मे भक्ति इस प्रकार घुली मिली पाई जाती है कि उसकी शक्ति की अवहेलना करना बडे-बडे सम्राटो के लिए भी असम्भव था। शूरसेन के सात्वतो मे और द्राविड के आलवारो मे भक्ति जिस प्रकार प्रस्फुटित दीख पडी थी, वैसी न कहीं कभी कर्मकाड मे दीख पडी, और न कभी ज्ञानकाड मे। भक्ति की सबसे बडी विशेषता है उसका सहज लोकव्यापी होना। यह मार्ग इतना सुगम और सरल है कि इस पर चलने से किसी भी मनुष्य या राष्ट्र का पतन सम्भव नही। सबसे पहले हम साहित्यिक ग्रथो को लेकर भक्ति के विकास की चर्चा करेंगे।

तन्त्रग्रन्थ

वेदो के बाद भक्ति के प्रधान स्रोत हैं तन्त्रग्रथ। पडित बलदेव प्रसाद उपाध्याय का कहना है कि भागवत धर्म का उदय पहले सात्वत वशीय क्षत्रियो मे हुआ और वासुदेव, सकर्षण प्रद्युमन तथा अनिरुद्ध ये चारो चतुर्व्यूह के भीतर रखे गए। उनके अनुसार सात्वत वश मथुरा को छोडकर भारत के दक्षिणी पश्चिमी छोर पर चला गया और उन्ही लोगो के द्वारा दक्षिण मे भक्ति का प्रचार हुआ। उक्त पडित जी का कथन है "सात्वतो के द्वारा ही यह धर्म उत्तर भारत से दक्षिण भारत मे पहुचता है।"[1]

पांचरात्र

पांचरात्र तन्त्र के कई ग्रथ हैं (१) महाभारत का शातिपर्व, (२) नारद-पांचरात्र, (३) ईश्वर सहिता, (४) पाद्मतन्त्र, (५) विष्णुसहिता इत्यादि।[2] पांच-रात्र मत के अनुसार साधक भगवान् को अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग इन पाँच व्यापारो से प्रसन्न करता है। यद्यपि भगवान् शकराचार्य ने चतुर्व्यूह को स्वीकार नही किया है फिर भी उन्होंने पांचरात्र के अन्य सिद्धान्तो को प्रामाणिक माना है।

वैष्णव पुराण

पाचरात्र ग्रथो के बाद भक्ति की प्रबलता वैष्णव पुराणो मे पाई जाती है। वेदो मे "एको सद्विप्र बहुधा वदन्ति" कहा गया है किन्तु पुराणो में 'एकम् सत् प्रेम्ना बहुधा भवति" का उद्घोष किया गया है। इसलिए पुराणो की आकर्षकता कभी मिट नही सकती। पुराणों मे भक्ति भावना का महान् इतिहास निर्मित किया

[1] भागवत सम्प्रदाय, पृ० ६१

[2] मध्यकालीन धर्मसाधना, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३०

गया है। अठारह पुराणों मे मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, नारद, ब्रह्मवैवर्त्त, पदम, विष्णु तथा श्रीमद्‌भागवत—ये सभी भक्तिपरक हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण श्री कृष्ण के चरित्र की भिन्न भिन्न घटनाओ के अनुशीलन के लिए अमूल्य है। विष्णु पुराण भी वैष्णव पुराणो मे भागवत की अपेक्षा द्वितीय कोटि मे गिना जाता है। इसके पचम अश मे कृष्ण की लीलाओ का वर्णन किया गया है।

भागवत

भागवत तो भक्ति का अजस्र स्रोत है ही। सम्भवत भगवान व्यास की यह सर्वश्रेष्ठ रचना है। आचार्य वल्लभ ने तो इसे व्यासदेव की समाधि भाषा मानी है। उन्होने इसका यह नाम इसलिए दिया है कि जिन परम तत्वो की अनुभूति समाधि दशा मे हुई थी, भागवत् मे उसी का विवेचन किया गया है। जो परमात्मा साधारण व्यक्तियो की पहुच के बाहर था उसी भगवान् को भागवत ने प्यार करने के लिए भक्तो के बीच खडा कर दिया है।[1] अतएव इस ग्रथ ने मध्य युग मे भक्ति के विकास मे अमित प्रभाव दिखाया है।[2]

पद्मपुराण एक सुप्रसिद्ध पुराण है। इस प्रकार अधिकांश पुराण भक्ति की खान हैं और भागवत पुराण तक आते-आते भक्ति भावना का चरमोत्कर्ष दृष्टि-गोचर होने लगता है।

गीता

यथार्थ मे उपनिषदो के बाद भक्ति का सबसे महत्वपूर्ण ग्रथ गीता है। इस ग्रथ मे ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनो का समन्वय किया गया है। फिर भी भक्ति के प्रति इसकी ममता विशेष मालूम होती है क्योकि इसमे भगवान् कृष्ण ने स्वय घोषित किया है कि—

> सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज
> अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।[3]

इन समस्त आन्तरिक और बाह्य चेष्टाओ, कर्मो और सकल्पो का आराध्य के चरणो मे समर्पण भक्ति नही तो और क्या है?[4] इसलिए भक्तिभाव की दृष्टि मे गीता अमृत तुल्य है।

---

१ शुक्ल सूरदास, पृ० ८४

२ The Srimad bhagwat Gita is indeed the one g eat pu which appears to have exercised an enormous influen the development of Bhakti ideas in mediaeval times
—Early History of the Vaishnava faith and movem Bengal Sushil Kumar De—M A D Litt, Page 5

३ गीता, अध्याय १८, श्लोक १८

४ Essays on Gita by Sri Aurbindo Ghosh Vol II Page

प्राकृत काव्य

गीता एव पाचरात्र ग्रन्थो के बाद प्राकृत काव्य के रचयिता प्रवरसेन का सेतुबध महाकाव्य लिखा गया। इसका रचयिता यद्यपि विष्णु भक्त है तथापि वह शिव और विष्णु को समान आदर देता है। इसी प्रकार प्राकृत के 'गौडवहो काव्य' के रचयिता वाक्पतिराज ने भी अपने ग्रथ का प्रारम्भ विष्णु की स्तुति से ही किया है।

सस्कृत काव्य

प्राकृत के बाद सस्कृत काव्य ग्रथो मे भी भक्ति का प्रच्छन्न प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। भट्टिकाव्य के रचयिता भट्टिकवि ने राम के चरित्र को लेकर ही अपने महाकाव्य की रचना की है। महाकवि माघ ने भी अपने महाकाव्य का नायक विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को ही बनाया है। नाटककारो मे भास ने प्रतिमा, अभिषेक एव बालचरित मे राम एव कृष्ण के चरित्र का ही चित्रण किया है। भवभूति ने महावीरचरित और उत्तर रामचरित मे रामचन्द्र के चरित्र का ही विशद रूप से चित्रण किया है। इसके पश्चात् मुरारि कवि का अनर्घ राघव नाटक तथा राजशेखर का बाल रामायण और बाल भारत महानाटक राम और कृष्ण के चरित्र को लेकर ही लिखे गए। बारहवी शताब्दी के आसपास जयदेव ने प्रसन्नराघव लिखा जिसमे रामचन्द्र का चरित्र अत्यन्त लोकप्रिय रूप मे चित्रित किया है। सस्कृत गीतिकाव्यो मे जो सर्वश्रेष्ठ है महाकवि जयदेव का गीति-गोविन्द, वह भी भक्ति भावना से ही ओत-प्रोत है। जयदेव के पश्चात् विद्यापति और मीरा ने समग्र उत्तर भारत को अपने भक्तिपरक गीतो से आनन्द विभोर बना दिया था। महाकवि सूरदास ने तो भक्ति को वह रूप दिया जिसकी समता विश्व के किसी भी साहित्य मे दुर्लभ है। इन कवियो और लेखको के अतिरिक्त भक्ति के विकास मे बडे बडे आचार्यों ने भी योगदान किया।

आचार्य

श्री शकराचार्य एक बडे दार्शनिक आचार्य थे। ऐसा प्राय कहा जाता है कि उनका अद्वैतवाद बुद्धि का सर्वोत्तम विकास भले ही हो किन्तु भक्ति भावना को उद्बुद्ध करने के लिए अनुकूल नही। इनका परम या केवल प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न नही कर सकता। जिस केवल का साक्षात्कार नही होता उसकी पूजा कैसे की जा सकती है। वह ऐसे प्रकाशपुज मे अवस्थित है जहाँ किसी की पहुँच सभव नही।

सगुणोपासना या भक्ति के लिए निराकार को आकार ग्रहण करना ही पड़ता है।[1] लेकिन शंकराचार्य ने भी अनेक भक्तिपूर्ण स्तोत्र लिखे हैं जिनमें उनका वह अद्वैतवाद रूप दिखाई नहीं पड़ता। स्वामी शंकराचार्य के बाद स्वामी रामानुजाचार्य ने द्राविड़ देश में प्रचलित भक्ति का प्राचीन भागवत धर्म के साथ सामंजस्य स्थापित किया और उसे राष्ट्रीय धर्म बना दिया। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में उनके कीर्ति संवाहक हैं रामानंद। दर्शनपक्ष में श्री रामानंद रामानुजाचार्य की परम्परा में हैं किन्तु उनके उपास्य लक्ष्मी नारायण की जगह सीताराम है। रामानंद ने दास्यभक्ति पर अधिक जोर दिया तथा भक्ति का अधिकारी नीच से नीच जाति के लोगों को माना। उनकी दृष्टि में "भक्ति भावना का द्वार सभी के लिये उन्मुक्त है। हाँ इस मन्दिर में प्रवेश करने के पूर्व अपने अंतर में आस्था और विश्वास की ज्योति अवश्य ही जला देनी होगी और जिसके अन्तर में आत्मविश्वास और भागवत्प्रेम की ज्योति जल गई, वह देश काल के बन्धनों से बहुत ही ऊँचा उठ गया"।[2]

उन दक्षिण के आचार्यों में निम्बार्काचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य के नाम उल्लेखनीय हैं। निम्बार्क ने भक्ति का बहुत प्रचार किया और राधा एवं कृष्ण दोनों की पूजा प्रचलित की। इनके द्वारा भक्ति का महान् उपकार हुआ। विष्णु स्वामी और मध्वाचार्य के सिद्धान्त प्रायः एक समान हैं। मध्व का सिद्धान्त था कर्म और ज्ञान की चरम परिणति भक्ति ही में होती है। मध्व एक महान् धर्म-प्रचारक थे और जितनी इनमें ऊँची प्रतिभा थी उतनी ही अधिक मौलिकता। इनका चरित्र अत्यन्त उच्च था और आजतक दक्षिण में इनके धर्म का प्रचार है। उत्तर भारत में भक्ति को बहुमान प्रदान करने वालों में वल्लभाचार्य का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अगर रामानन्द रामभक्तों के प्रेरणा-स्रोत रहे तो वल्लभाचार्य कृष्ण भक्तों के मूल उत्स रहे हैं। इनका प्रवर्तित मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है। भगवान् के अनुग्रह से ही प्रेमप्रधान भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति होती है।[3]

ऊपर जिन आचार्यों की चर्चा हुई है, उनसे भक्ति भावना के विकास में

---

१ It is generally said that Shankara's Advaita though a master piece of intellect, can not inspire religious piety Its absolute can not kindle passionate love and adoration in the soul We can not worship the Absolute whom no one hath seen or can see, who dwelt in the light that no man can approach into The formless (nirakara) and Absolute is conceived as formed (akarvat) for the purpose of worship

—Radhakrishnan—Indian Philosophy, Vol II, Page 648-49

२ रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, पृष्ठ ३१५

३ हिन्दी साहित्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ६५

बडी सहायता मिली है। इन्होने भक्ति को एक राष्ट्रीय धर्म का रूप दे दिया। वैदिक धर्म के अनुकूल होने के कारण इनके अनुयायियो की सख्या विस्तृत है। इसलिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन ठीक मालूम पडता है कि श्रीमद्भागवत की रस-सरिता मे भारत की जनता को मार्जन कराकर उसका मधुर रस चखाने वाले आगे चलकर मुख्यत श्री रामानुज एव श्री वल्लभ हुए।"[1] इन्ही आचार्यों से प्रेरणा-ग्रहण कर हिन्दी के कवियो ने भक्तिकाव्य का पावन स्रोत बहाया।

हिन्दीतर भाषाओ मे भक्ति

उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवियो एव लेखकों ने इस धर्म के प्रचार मे योगदान दिया है। पूर्वी भारत के बगाल और आसाम मे यह भक्ति-भाव खूब फैला। चैतन्यदेव के प्रभाव मे 'पचसखा"—बलरामदास, अनतदास, यशोवन्तदास, जगन्नाथदास तथा अच्युतानददास विख्यात है। आसाम के कामाख्या पीठ के वैष्णवो मे शकरदेव और उनके प्रिय माधवदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराष्ट्र मे चार वैष्णव पथ—महानुभाव पथ वारकारी पथ, रामदासी पथ और हरिदासी पथ ने भक्ति स्रोत उमडाया। इनमे ज्ञानेश्वर नामदेव तथा तुकाराम ने तो भक्ति की पावन गगा ही बहा दी। गुजरात मे तो महात्मा गांधी के प्रिय कवि नरसिंह मेहता ने भक्ति की धारा बहायी। इसी प्रकार उत्कल मे भी रचनाएँ होती रही। इस तरह भक्ति के प्रसार मे *अन्य भाषा भाषियो ने भी कम योग नहीं दिया।*

भक्ति मे सगुण और निर्गुण ब्रह्म के दोनो स्वरूपो को स्वीकार किया गया है। वैष्णव सम्प्रदाय ने भक्ति को वैयक्तिक साधना के साथ जो सामाजिक साधना का रूप धारण किया, श्रवण-कीर्तन आदि द्वारा उसने जो समाज की सुप्त आध्यात्मिक वृत्ति को सामूहिक रूप से उद्दीप्त किया, उससे साधक के अहभाव के विलयन मे अमूल्य सहायता पहुँची। दूसरी ओर भक्ति की अवहेलना करने और भक्ति को चरम साध्य मान लेने के कारण भावानुभूतियो मे जो चिर विरह की भावना प्रकट हुई, जो हमारे हिन्दी के भक्ति-साहित्य मे एकदम अभिनव है और जिसे कबीर, सूर और तुलसी जैसे भक्त कवियो ने विशेष रूप से अपनी रचनाओ मे मान्य स्थान दिया है, उसने भी इसी दिशा मे अनुपम कार्य किया।[2] इसलिए इसमे निम्न-से-निम्न श्रेणी से लेकर उच्च से उच्च जाति के भक्त हुए हैं। केवल पुरुष ही नही स्त्रियाँ भी इस धर्म मे दीक्षित हुई और इसके प्रचार और प्रसार मे सलग्न हुई। इन भक्तों मे ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, रामदास, नरसी मेहता, मीराबाई, कबीर, जयदेव, चैतन्यदेव, दादू, रविदास और नानक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस वैष्णवधर्म के प्रचार से हिन्दू धर्म मे बहुत उदारता आ गई। इसलिए भक्तिभावना

---

[1] सूरदास आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ३३

[2] भक्ति का विकास डा० मुशीराम शर्मा, पृ० ८०.

से बहुत मुसलमान (स्त्री और पुरुष) इस धर्म की ओर आकृष्ट हुए। इस भागवतधर्म से प्रभावित होकर रामानन्द जी के शिष्य कबीर ने निर्गुण ब्रह्म राम का प्रचार किया। कबीर की भक्ति यद्यपि निर्गुणवाद की थी तथापि उन्होने उपासना के क्षेत्र मे अपने निगु णवाद से ही काम न लिया। उन्होंने जो प्रेमपूर्ण पद लिखे हैं उनमे व्यक्त और सगुण परमात्मा के गुणो का उल्लेख हो ही गया है। कबीर के पश्चात् कबीर के शिष्यो का जो कबीर-पथ चला उसने भक्ति के प्रचार मे बहुत योगदान दिया। तुलसी और सूर के ग्रथ कबीर की कुछ कटु आलोचनाओ के उत्तर स्वरूप ही लिखे मालूम होते हैं। फारस के सूफी सम्प्रदाय के मुसलमान कवि भी इस भागवतधम से प्रभावित हुए बिना नही रह और जायसी तथा उसके अनुयायियो ने जिस प्रेम की पीडा का रहस्योद्घाटन किया, उससे भक्ति के प्रसार मे और भी सहायता हुई।

भक्ति प्रचार मे राजाओ का योगदान

भक्ति के प्रसार मे कुछ राजा-महाराजाओ ने भी कम योगदान नही दिया। इन राजाओ मे से कुछ तो शैव थे और कुछ वैष्णव। विष्णु एव शिव दोनो ही की भक्ति राष्ट्र के अतर्गत समानान्तर रूप मे चल रही थी। जिस तरह अशोक और उसके वशजो ने भारतवर्ष मे बौद्ध धर्म को आश्रय दिया था और अपने समग्र साम्राज्य मे भगवान बुद्ध के उपदेशो का प्रचार किया था उसी प्रकार गुप्तवश सम्राटो ने विष्णुभक्ति को अपना राष्ट्रधर्म और राज्यधम बना रखा था। शैव भक्तो मे हर्षवद्धन और उसके पिता प्रभाकर वर्द्धन का नाम प्रसिद्ध है। इसमे सदेह नही है कि भक्ति भावना एक रागात्मिका वृत्ति है। उसके आलम्बन भिन्न भिन्न हो सकते हैं। सात्वतों के उदयकाल से लेकर आज तक भिन्न-भिन्न देवताओ के प्रति लोगो की जो भक्ति है वह एक परम्परा के रूप मे है। पुराणो मे शिवपुराण, लिंगपुराण प्रधानतया शिवभक्ति के ग्रन्थ हैं विष्णु, शिव और शक्ति की उपासना सहस्त्रो वर्षों से इस देश मे प्रचलित चली आ रही है। किन्तु इन सब परम्पराओ मे विष्णुभक्ति की परम्परा समाज के उच्च और शिक्षित वर्ग म अधिक प्रचलित रही है। राम और कृष्ण के अवतार इसी भक्ति परम्परा मे जाने जाते हैं। हिन्दू साहित्य और सस्कृत को इसी परम्परा ने प्रभावित किया है। इनमे से भी रामभक्ति की उज्ज्वल धारा हिन्दू समाज को सर्वाधिक प्रिय रही है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और हिन्दी के महान् ग्रन्थ रामभक्ति परम्परा को लेकर लिखे गये हैं।

भगवान रामचन्द्र के चरित्र की महानता

भगवान रामचन्द्र के चरित्र मे कुछ ऐसा आकर्षण, कुछ ऐसी दिव्यता और पूर्णता है कि वे केवल आदर्श मनुष्य ही नही, आदर्श आराध्य भी माने जाते हैं। इसीलिए राम शब्द भारतीय साहित्य मे ईश्वर के सगुण और निगु ण दोनो रूपो का प्रतिनिधित्व करता है। कबीर के राम तलसी के राम से सवथा भिन्न हैं। फिर भी

राम मे दोनो की परिपूर्ण आस्था है। रामभक्ति बाल्मीकि-काल से आजतक हिन्दू समाज को इतनी प्रिय रही है कि शैव और शाक्त भी उससे प्रभावित हुए बिना नही रह सके हैं। इसलिए तुलसी का रामचरित मानस और उनकी विनयपत्रिका भारत मे आज सर्वजनग्राह्य हैं। हिन्दुओ की बात कौन कहे, मुसलमान भी राम रामभक्तो से प्रभावित और मुग्ध बनते रहे हैं। इसीलिए आज तुलसी के राम और सम्बन्धी ग्रन्थ भारतीय हृदय को जितने प्रिय हैं उतना विश्व के किसी कवि, लेखक, दार्शनिक या धार्मिक का कोई ग्रन्थ नही है। यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि रामचरितमानस जैसा लोकप्रिय ग्रन्थ साहित्य मे विशेषत विश्व के धार्मिक साहित्य मे अद्वितीय है।

तुलसी के भक्ति-काव्य

तुलसी ने विनयपत्रिका, गीतावली तथा श्रीकृष्ण गीतावली मे अपने भक्ति विह्वल हृदय का जितना चित्रण किया है उतना मानस मे भी नही।

निष्कर्ष

विनयपत्रिका तो भक्ति-काव्य को गीता है। इसमे कवि ने अपनी आत्मा की सारी माधुरी को दलित द्राक्षा की तरह बहा दिया है। लौकिक अनुभूतियो का पारलौकिककरण विनयपत्रिका की निजी विशेषता है। भक्त्यात्मक गीतो की वह मदाकिनी जो वैदिक, सस्कृत प्राकृत, अपभ्र श साहित्य के जटाजूट मे चक्कर काट रही थी, उसे हिन्दी साहित्य मे प्रवाहित कर तुलसी ने सर्वजन सुलभ बना दिया। उसके दर्शन, मज्जन पान एव अवगाहन से न मालूम कितने कलियुग-सताप-सतप्त प्राणियों ने शान्ति एव शक्ति उपलब्ध की है। इसलिए तुलसी के ये भक्त्यात्मक उद्गार विश्व के भक्ति साहित्य मे अद्वितीय स्थान के अधिकारी हैं। आगे के पृष्ठो मे इन्ही भक्त्यात्मक गीतो का धार्मिक, दार्शनिक एव साहित्य शास्त्रीय विवेचन करना हमारा उद्देश्य है।

०

: २ :

भक्त्यात्मक गीतों का विकास

गीत का अर्थ-विस्तार और व्यंजना

गीत, गीति या गीतिका का अर्थ है गायी जानेवाली वस्तु। पीछे शास्त्रीय दृष्टि से इन्हीं गायी जानेवाली वस्तु को ताल, स्वर और लय में बाँधते हैं उसे भी गीत ही कहते हैं। गीत का मानव जीवन से वही सम्बन्ध है जो रुदन से। लोकोक्ति है रोना और गाना किसे नहीं आता। यह एक पूर्णतः स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एक नन्हा छोटा बालक किसी प्रकार के दुःखमय अनुभव से जिस प्रकार रोता है उसी प्रकार किसी अलौकिक वस्तु को देखकर हँसता और किलकता भी है। किन्तु जिस प्रकार रोना आन्तरिक होकर लोकरंजनकारी होता है उसी प्रकार गाना भी आनन्द-पूर्ण होकर दिलों को मुग्ध करने की क्षमता रखता है। गाने का सम्बन्ध शब्द और अर्थ दोनों से अत्यन्त घनिष्ठ होता है। गाना बिना अर्थ के भी चित्त को मुग्ध करने की क्षमता रखता है। गीत का संगीत चेतन का ही धर्म नहीं अपितु जड़ में भी उद्दीप्त होता है। सच पूछिए तो सर्व सृष्टि ही संगीतमय है। सृष्टि के मूल तत्त्व हैं पंचभूत। आकाश का गुण शब्द है इसलिए आकाश संगीतमय है और उसका संगीत शाश्वत है। अग्नि की लपटों से भी एक अद्भुत संगीत प्रवाहित होता है। जल के स्रोत में तो संगीत का निवास होता ही है। नदी और सरोवरों की कल-कल ध्वनि, समुद्र की उत्ताल तरंगों का नर्तन, उमड़ते-घुमड़ते मेघों का मनोहर गर्जन, बहते वायु का सर्वविदित कम्पन मनुष्य के अस्तित्व के अनुभव की वस्तुएँ हैं। पृथ्वी की हरीतिमा में भी एक मौन संगीत का निवास रहता है। इस पंचभूतात्मक जगत् में शरीर प्राप्त करनेवाले चेतन प्राणियों की गीत-शक्ति तो मनोहर है ही। चिड़ियों की चहचहाहट, विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों द्वारा उच्चरित मनोरम ध्वनियाँ तथा कोयलों की काकली किसे मुग्ध नहीं बनाती। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्—सारा ब्रह्माण्ड संगीतमय है। इसलिए इस प्रकार की प्रकृति से अपनी प्रकृति का सामञ्जस्य करने के लिए मनुष्य का स्वभावतः संगीतप्रिय होना सिद्ध है। विश्व के प्राचीनतम साहित्य—ऋग्वेद का उद्भव संगीतपूर्ण छन्दों से ही होता है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संगीत न केवल हमारे साहित्य का वरन् हमारे समस्त जीवन के पुरुषार्थ-क्रम, ज्ञान और भक्ति तथा उसके द्वारा प्राप्य परमात्मा का मूल है।

गीत क्या है ? इसकी व्याख्या कौन कर सकता है ? जिस प्रकार आत्मा परमात्मा, प्रकृति तथा मनुष्य के अंत करण की कतिपय वृत्तियाँ परिभाषा मे बंधना स्वीकार नही करती उसी प्रकार गीत भी परिभाषा के बन्धन मे बाँधा नही जा सकता। जैसे ब्रह्म के सम्बन्ध मे सब कुछ कहने के बाद नेति-नेति कहा करते हैं, उसी प्रकार गीत की परिभाषा लिखने वाले को "नेति-नेति" कहना ही पडता है। गीतों की परिभाषाएँ लिखनेवाले लिख जाते हैं किन्तु उनसे पढने सुनने वालो को तृप्ति नही होती। क्योंकि गीत का अर्थ और प्रभाव इतना व्यापक है कि शब्द उन्हे व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। फिर भी गीतो की कुछ परिभाषाएँ दी गई हैं जिन्हे हम उपस्थित कर रहे हैं।

गीत सम्बन्धी परिभाषाएँ

गीत काव्य वही है जो सगीत सम्बन्धी बाजो के साथ गाया जाता है या गाने के योग्य होता है। गीतकाव्य जीवन के गूढतम रहस्यो को कला के माध्यम से व्यक्त करता है। वह इसकी आशाओ, इसकी खुशियो, इसके दुखो एव इसकी मूर्छा को भी व्यक्त करता है।[1]

सगीतकाव्य मे किसी एक ही विचार, अनुभूति या स्थिति का अभिव्यजन होता है।[2]

गीत मे सवेगात्मक अभिव्यजना ही प्रधान होती है। उसमे कवि का व्यक्तित्व मुखर होता है।[3]

गीतिकाव्य, कवि द्वारा उसकी अपनी ही अनुभूतियो की अभिव्यक्ति है।[4]

---

१ Lyric poetry, which is, or can be supposed to be, susceptible of being sung to the accompaniment of musical instrument . the lyric has the function of revealing, in terms of pure art the secrets of the inner life, its hopes, its fantastic joys, its sorrow, its delerium

—Encyclopaedia Britanica—14th Edition, Page 532

२. Lyrical has been here held essentially to emply that each poem shall turn on single thought, feeling or situation

—Palgrane—'Golden Treasury of Song and Lyric' O U Press

३ The lyric is the best adapted for imotional expression on .is supposed with the individualty of the author

—Normal Hepple—Lyric form in English

४ Lyric poetry is the expression by the poet of his own feeling

—Ruskin—Quoted in Eng Poetry E B Reed, Page 8

आधुनिक गीत को अवश्य ही आत्मनिष्ठ भावनाओ का सक्षेप सगीतिक अभिव्यजन होना चाहिए।[१]

गीतिकाव्य, किसी भी कलाकृति की तरह, सवेगात्मक मन स्थितियो से सम्बन्धित है जिसमे अनुभूति प्रत्यक्ष रूप से अनुभवो या विचारोके द्वारा या अप्रत्यक्ष-रूप से कल्पना की सक्रियता के द्वारा उद्‌बुद्ध होती है।[२]

इसका तात्पय सामान्यत वैसी कविता से है जिसमे उच्चकोटि का ध्वनिक्रम और उफनाती हुई गहन व्यक्तिगत अनुभूतियो का प्रभाव उत्पन्न किया जाय।[३]

गीत आवेग को अभिव्यक्त करनेवाली एक अति सक्षेप कविता है।[४]

सामान्यत गीत एक लघु वैयक्तिक कविता है।[५]

साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा मे तीव्र सुखदु खात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता मे गेय हो सके।[६]

इन परिभाषाओ से यह व्यक्त होता है कि गीत वर्णनात्मक से अधिक भावात्मक होते हैं। प्रत्येक गीत मे एक मुख्य विचार या भाव रहता है उसमे उसका वैयक्तिक रूप मे अभिव्यजन रहता है। यथार्थ मे मनुष्य भावो और विचारो से सम्पन्न प्राणी है। उसके हृदय से मध्य या अत मे उठे हुए विचार और भाव कभी उसके अनुकूल और कभी उसके प्रतिकूल होते हैं। अनुकूल भाव के जाग्रत होने पर वह प्रसन्न होता है और हँसता तथा प्रतिकूल भाव या विचार के उदय होते ही वह दु खी होता है और रोता है। इस प्रकार हास्य और रुदन परस्पर सापेक्ष हैं। एक ही

---

१ The modern lyric must be a short, musical expression of subjectives feeling
—E B Reed – English lyrical poetry, Page 9

२ Lyric verse, like every other art product is concerned with emotional words, the feeling being aroused directly by experiences or thoughts or indirectly through activity of the imagination
—The Typical Forms of English literature – Afred H Upttam

३ This usually implies a poem having a highly pattern of sound and producing the impression of an out pouring of intense personal feeling
—Calvin S Brown—Would literature , Page 260

४ A fairly shert poem expressing emotion
—By Marjorie Boul Ton The Anatomy of Poetry

५ Usually a short personal poem
—Joseph T Shipley—Dictionary of Literary Terms

६ महादेवी वमा   महादेवी का विवेचनात्मक गद्य

मनुष्य अपनी अनुकूल वेदनाओं से गाता और प्रतिकूल वेदनाओं से रोता है। अत यथार्थ में रुदन भी गान ही है। यथार्थ जीवन में अनुकूल भाव या विचार सुख तथा प्रतिकूल भाव या विचार दुःख प्रदान करते हैं। किन्तु काव्य में ये दोनों ही प्रकार के व्यापार सुखों की ही सृष्टि करते हैं। और वह सुख इंद्रिय जन्य नहीं होता, मानसिक और आध्यात्मिक होता है, इसलिए उसे अलौकिक आनन्द कहा गया है। इसी बात को लक्ष्य करके आचार्य मम्मट ने कवि निर्मित को ह्लादैकमयी—केवल आह्लादपूर्ण ही कहा है।

मनुष्य जीवन दुःख-सुख का अपूर्व मिश्रण है। सुख-दुःख के तारों से उसका जीवन-पट हर क्षण, हर घड़ी बुना जाता रहता है। यथार्थ जीवन के सभी व्यापार को कवि अपनी अलौकिक प्रतिभा के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान कर सहृदय व्यक्तियों की सहृदयता को जाग्रत करने का प्रयत्न करता है। जिस व्यक्ति में सहृदयता का बीज निहित है वह इन सुख-दुःख सम्बन्धित गीतों को सुनकर पुलकित रोमांचित हो उठता है। यथार्थत गीतों का महत्व इसी में है कि वे असंस्कृत हृदयों में भी सहृदयता, कोमलता, आर्द्रता एव परदुःख कातरता की भावना उत्पन्न कर उसमें मानवता की स्थापना करे और आनन्द-विभोर बनावें।

गीति और गीत में अन्तर

यहाँ यह भ्रम हो जाना स्वाभाविक है कि गीत और गीति Song और lyric में क्या अन्तर है? क्या हम इन दोनों शब्दों के सूक्ष्म पार्थक्य को न समझ सकने के कारण इसे गड्डमड्ड कर रहे हैं? तुलसी और सूर के गीतों की चर्चा होती है, प्रसाद, पंत और निराला के भी गीतिकाव्य पर आलोचना लिखी जाती है तथा अज्ञातकुलशीलस्य कवियों की रचनाएँ भी गीत शीर्षक से छपती हैं। इसलिए गीत और गीतिकाव्य में भ्रम हो ही सकता है। संस्कृत में गीत और गीति एक ही धातु से निकले हैं। किन्तु अंग्रेजी में ये दो शब्द थोड़े भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं। इस सम्बन्ध में बंगाल के सुप्रसिद्ध आलोचक एवं कथाकार बंकिमचंद्र की कुछ पंक्तियाँ ही पर्याप्त होंगी। उनका कहना है"गीत के सुडौल होने के लिए दो बातों की आवश्यकता है। स्वरचातुरी और शब्द-चातुरी। इन दोनों की अलग-अलग क्षमता होती है। दोनों क्षमताएँ एक ही मनुष्य में अक्सर नहीं देखी जाती। सुकवि और सुगायक होना हरएक को नसीब नहीं होता।" इसी कारण एक आदमी गीत की रचना करता है और दूसरा गाता है। इस प्रकार गीत से गीतिकाव्य अलग हो जाता है। गीत होना ही गीतिकाव्य का आदिम उद्देश्य है। किन्तु जब देखा गया कि गीत न होने से भी केवल पद्य रचना ही आनन्ददायक है और सम्पूर्ण रूप से मनोभाव व्यक्त कर सकती है तब गीत के उद्देश्य पर ध्यान न देकर अनेक गीति काव्यों की रचना होने लगी।

अतएव गीत का उद्देश्य ही जिस काव्य का उद्देश्य है वही गीतिकाव्य है । वक्ता के भावोच्छ्‌वास को व्यक्त करना ही जिसका उद्देश्य है वही गीति काव्य है ।[1] इस उद्धरण से मेरा मतव्य स्पष्ट है कि मैं गीतिकाव्य को इन्ही अन्तरानुभूति विह्वल स्वरताल प्रधान गीतो के प्रकाश मे देख रहा हू ।

गीतो का वैशिष्ट्य

ऊपर कहा जा चुका है कि गीतो का निर्माण सहज और स्वाभाविक है । यह सृष्टि के प्रत्येक कण मे विद्यमान है । मानव हृदय इसीलिये गीत को सुन कर चमत्कृत हो उठता है और उस गीत को बार-बार दुहराकर अपनी आत्मा को प्रफुल्लित और पुलकित बनाने की चेष्टा करता है । यो तो सारा साहित्य ही सगीत-मय है । उत्तम कोटि के भाव और विचार गद्य मे भी अभिव्यजित होकर मनुष्य की आत्मा को पुलकित करते हैं । इस प्रकार के वाक्यो को दुहरा कर मनुष्य की आत्मा तृप्ति का अनुभव करती है । किन्तु पद्यवद्ध भाव एव विचार स्वर और लय से मिश्रित होकर और भी अधिक मनोरजक बन जाते हैं । काव्य का प्रथमावतार आय जनश्रुति के अनुसार एक शोकपूर्ण घटना से स्वाभाविक रूप मे हुआ था, यह पूर्णतया विख्यात है । महर्षि बाल्मीकि का क्रौंचवध से उत्पन्न शोक श्लोक बन गया था, यह बात महाकवि कालिदास ने भी स्वीकार की है—

"निषाद विद्धाराडजदर्शनोत्थ श्लोकत्वमापद्यत यस्यशोक"[2]

यो तो छन्दो का विकास भी प्रतिभासम्पन्न कवियो और आचार्यों के चिन्तन और मनन का परिणाम है और इसलिये यदि उन छन्दो मे कोई गीत लिखा जाता है तो अशिक्षित कठ से उच्चरित होने पर भी वह मनोहर ही लगता है । इसलिये भारतीय आय साहित्य का प्रत्येक पद्यवद्ध काव्य सुन्दर और आह्लादक होता है । किन्तु यो ही पद यदि किसी स्वर-लय के पण्डित गायक के कण्ठ से गाये जाते हैं तो उनसे असीम आह्लाद की सृष्टि होती है । भारतीय आय साहित्य के काव्य गगन मे अनेक ऐसे नक्षत्र प्रकाशित हो चुके हैं जिन्होने अपने शास्त्रीय सगीत के ज्ञान से साहित्य जगत को अतिशय आलोकित और अभिराम बना दिया है । साहित्य के भाव एव रूप के विकास के साथ-साथ उसकी सगीतात्मकता का भी क्रमश विकास होता गया है और हर महात्मा तुलसीदास के गीतात्मक कार्यों के पूर्व इस प्रकार की चेष्टा दीर्घ काल से होनी चली आई थी । यहाँ हम उसी चेष्टा का सक्षिप्त पर क्रमबद्ध विवेचन उपस्थित कर रहे हैं ।

गीतो का आदि स्रोत—ऋग्वेद

भारतीय साहित्य की ही नही, विश्व साहित्य की सबसे प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद

---

[1] बकिम निबधावली, पृ० ५२

[2] रघुवश, चतुर्थ सर्ग, ७० वा श्लोक, पृ० १५६—कालिदास ग्रथावली, विक्रम परिषद, काशी ।

है । ऋग्वेद गीतात्मक छन्दो मे लिखा गया है । हमे इसका पता नहीं कि इसके पहले कोई एक या अनेक ग्रन्थ लिखे गये थे अथवा नहीं ? इसका कौन-सा मत्र सबसे पहले लिखा गया यह बतलाने मे भी हम आज असमर्थ हैं । लेकिन इतना तो निर्विवाद है कि ऋग्वेद पढने के लिये नहीं वरन् गाने के लिये लिखा गया । यों तो सम्पूर्ण ऋग्वेद ही गीतात्मक है किन्तु अत्यन्त सुन्दर गीतात्मक प्रसग देखना हो तो उषा विषयक ऋचाए, पवमान सोम का आह्वान करने की व्यग्रता, श्यावाश्व की विरह व्यजना, पुरुरवा-उर्वशी का आत्म निवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है । इन गेय पदो की रत्न-मजूषा के सर्वोत्तम रत्न उषा स्तुति पर मुग्ध होकर मैकडोनेल ने लिखा है—"वैदिक काव्य मे उषा का चित्र अत्यन्त शालीन है । विश्व साहित्य के किसी भी वर्णनात्मक धार्मिक गीतिकाव्य मे इतना आकर्षक इतर रूप प्राप्त नहीं होता ।"[1] इतना ही नहीं अगर गीतो की टेक-पद्धति का आधार भी ढूँढना हो तो उसका स्वरूप भी यहाँ मिल जाता है यथा वृषाकपि, इन्द्राणी और इन्द्र के परस्पर सवाद वाले प्रसग मे[2] (ऋ० १०/८६/१) ।

सामवेद

यद्यपि ऋग्वेद गेय काव्य है फिर भी ऋषि इसकी सगीतात्मकता से सतृप्त नहीं हो पाये, इसलिये उन्होंने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रो के साथ कतिपय अन्य मन्त्रों को जोडकर सामवेद की रचना की थी । साम एक शब्द है जिसका अर्थ गान अथवा गीत ही है ।[3] सामवेद मे सगीत के सूक्ष्म सिद्धान्तो का पालन हुआ है इसका प्रमाण उदात्त तथा स्वरित की प्रणाली है । इसमे प्रयुक्त शब्द तो साधन मात्र हैं, साध्य है लयोत्पत्ति और उसकी शिक्षा ।[4] और यह जादू जैसा उस समय प्रभाव डालता रहा वैसा बहुत पीछे ब्रह्मकाल तक भी ।[5]

---

१ Usas is the most graceful creation of vedic poetry and there is no more charming figure in the descriptive religious lyric of any othor liturature

—Vedic Mythology, Page 46

२ हिन्दी के वैदिक्य उद्भव और विकास—डा० शिवनाथ शुक्ल, पृ० १२

३ वैदिक साहित्य और संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, पृ० १४६

४ For in the Samveda, in the Arcika as well as in the uttararcika, the text is only a means to the end The essential element is always the melody, and purpose of both parts is that of teaching the melodies

—M Winternitz, Ph D , Vol I, Page 164

५ The melodies of Samveda were looked upon as possessing magic power even as late as in brahmanical times —Page 168

सामवेद का उपवेद गान्धर्व वेद बतलाया जाता है इससे भी स्पष्ट है। सामवेद तो पूर्णतया गीतात्मक है ही। इस प्रकार के स्वर मण्डलो में आबद्ध गीतो की रचना भारतीय साहित्य के प्रारम्भ मे ही की गई थी। अब यह विचारणीय है कि भारतीय साहित्य का प्रारम्भिक साहित्य इतना गीतात्मक क्यो है ? इसका कारण भी स्पष्ट है। वेद के ये मन्त्र आनन्दातिरेक की अवस्था मे लिखे गये हैं। श्रद्धा, स्नेह और उत्सुकता से परिपूर्ण होकर ऋषि ज्ञान के अन्वेषण के लिए ध्यानावस्थित होकर परमात्मा के समक्ष पहुचता है और कुछ ज्ञान कर्म या उपासना का आदेश या सदेश पाकर वह आनन्द विभोर हो जाता है और उसकी नर्तित हृतत्री से वीणा के झकार के समान मधुर मधुर गीत फूट पडते हैं। इसीलिये उनमे ताल, स्वर और लय का समावेश हो जाता है और वे पूर्णतया गीतात्मक रूप धारण कर प्रकट होते हैं। स्वभावत गीतात्मक होने पर भी वेद के मत्रो को और भी गीतात्मक बनाने के लिये—द्राक्षारस मे शक्करा के समान ऋग्वेद के मत्रो को पूर्णत शास्त्रीय ढग से सुसज्जित कर सामवेद के मत्रो की रचना की जाती है। इस प्रकार वैदिक काल ही मे काव्य सगीत का पूरा सहारा लेकर खडा होता है। वैदिक साहित्य को देखने से प्रतीत होता है जैसे काव्य और सगीत का सम्बन्ध अभेद्य—अटूट है।

यजुर्वेद

सहिता काल मे ऋक्, साम, अथर्व तीनो मे हृदयपक्ष की प्रधानता थी इसलिये उनमे काव्यत्व और गीतात्मकता का सन्निवेश हो पाया। किन्तु यजुर्वेद सहिता मे कर्मकाण्ड की जटिलता और व्यावहारिकता के कारण गीतात्मकता के लिये अवकाश नही मिला इसलिये वहाँ गद्य का सहारा लिया गया। सहिताकाल के समाप्त होने पर वेद मत्रो की व्याख्या और विवेचन का समय आया। हृदय पर मस्तिष्क का आधिपत्य होने लगा। भाव तर्क के वशीभूत होने लगे। परिणाम यह हुआ कि गीतात्मकता से अधिक पठनीयता का प्रचार रहा और इसलिये ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य मे लिखे गये। आरण्यको मे भी चिन्तन मनन की प्रधानता थी, भावुकता गौण थी इसलिये गद्य का साम्राज्य बहुत कुछ स्थिर रहा। उपनिषदो के समय मे चिन्तन और भावुकता दोनो का साम्राज्य रहा अतएव अधिक गीतात्मकता न रहने पर भी सुन्दर छन्दो का प्रयोग न किया गया।

महाकाव्यो मे गीत

महाकाव्य काल म वाल्मीकि रामायण गेय ही कहा गया है। कुश और लव ने श्री रामचन्द्र के रामाश्वमेध म इसका गान करके ही राम को प्रसन्न किया था। इसलिये वाल्मीकि रामायण गीतात्मक ही कहा जा सकता है। महाभारत अवश्य गीतात्मक और अधिक पठनीय है। अगर ऐसी बात नही होती तो श्रीमद्भगवद् गीता का नाम गीता अर्थात् गाई हुई नहीं पडता।

इसके पश्चात् बौद्ध साहित्य का बहुत कुछ प्रसार और प्रचार होता है यद्यपि पालिसाहित्य चिन्तनपूर्ण और तर्कसमन्वित है फिर भी ऐसे स्थानों का अभाव नहीं जहां गीतात्मक माधुर्य फूटती दिखलाई पड़ती है। ऐसे स्थलों में सुत्तनिपात के धनियगोप प्रसग, दीर्घनिकाय के पचशिख गधर्व का गान थेरीगाथा, थेरगाथा तथा धम्मपद उल्लेखनीय हैं। ये थेर और थेरी गाथाएँ अपने स्वामी बुद्ध के प्रति व्यक्त उद्गार हैं जो उनके जीवनकाल या उनके निधनोपरान्त निर्मित हुई थीं।[1] ये बौद्ध भिक्षुणियां एव भिक्षुक कठिन अनुशासन का जीवन व्यतीत करते हुए जब भाव विह्वल हो उठते थे तो इनकी वाणी में अन्तर स्पर्शन की अमित शक्ति आ जाती थी। इसी-लिए विन्टरनित्स महोदय ने इन गाथाओं को भारतीय साहित्य की सर्वोत्तम गीति कविताओं के समकक्षीय माना है।[2] इन गीतों में से एकाध उदाहरण पर्याप्त होगा। भिक्षुणियाँ सौंदर्य की नश्वरता का उल्लेख कर कहती है—

"कालका भमरवणसदिसा वेल्लितग्गा मममुद्धजा अहु,
ते जराय साणवाक सदिसा सच्चवादि वचन अनञ्ञथा।
का नर्नादम वनसण्डचारिणी कोकिला व मधुर निकूजित
त जराय खलित तहि तहि सच्चवादि वचन अनञ्ञथा॥[3]

भ्रमरावली के समान सुचिक्कण काले और घुंघराले मेरे प्रत्यक गुच्छ जटा के कारण आज सन और वल्कल जैसे हो गये हैं। परिवर्तन का चक्र इसी क्रम से चलता है। सत्यवादी का यह कथन मिथ्या नहीं।

भरत का नाट्यशास्त्र

इसके पश्चात् आचार्य भरत का समय आता है। उन्होंने नाट्यशास्त्र का प्रणयन किया। उन्होंने नाटकों में गीत की अनिवार्यता मानी है। उन्होंने लिखा है—

गीते प्रयत्न प्रथम तु कार्य
शय्या हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्

---

१ The Thera—Theri gatha are two companion anothologies of the stanzas that are supposed to have been uttered by the theras and theris surrounding the Budha during the life time of the master or atleast shortly after his death

—Dr Bimla Charan Law—A History of Pali Literature, Vol I, Page 391

२ The Thera and Theri-gatha are fit to rank with the best productions of Indian lyric poetry, from the hymns of Rigveda to the lyrical poems of Kalidas and Amru

—A History of Indian Literature, Vol 2 Page 100

३ गीतिकाव्य रामखेलावन पांडेय, पृ० २०

गीत च वाद्ये चहि संप्रयुक्ते
नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ।[1]

पहले गीत में प्रयत्न करना चाहिए गीत को नाट्य की शय्या कहते हैं। गीत और वाद्य के सम्यक् प्रयोग से नाटक में कोई त्रुटि नहीं होती।

संस्कृत साहित्य के जो अनेक प्राचीन नाटक उपलब्ध होते हैं उनमें असंख्य गीत मिलते हैं। ये गीत केवल संस्कृत के ही नहीं वरन् प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के हैं।

प्राकृत साहित्य

प्राकृत गीतों का प्रथम उपलब्ध रूप गाथा सप्तशती और वज्जालग्ग नामक संग्रह ग्रंथ हैं। इनमें ग्राम-वधूटियों, अहीर-ललनाओं तथा कृषक-पत्नियों की दिनचर्या, उनकी प्रेमव्यंजना तथा सुख-दुःख के मार्मिक चित्र भरे पड़े हैं। एक उदाहरण गाथा सप्तशती का देखें—

"रुअ अच्छीसु ढिअ फरिसो अंगेसु जम्पिअ कराणे।
हिअअ हिअए णिहिअ विओइअ क्तिय देव्वेण।"[2]

वज्जालग्ग भी अतिप्रसिद्ध सतसई है। इनमें अड़तालीस विषयों या व्रज्या पर बड़ी मार्मिक उक्तियाँ कही गई हैं। शृंगार के संभोग और वियोग दोनों पक्षों से सम्बन्धित उक्तियों में हृदयस्पर्शिनी शक्ति है। जब विरह-रूपी मन्दराचल हृदय-रूपी क्षीरसागर को मथकर, उनके रत्नरूपी सुख को उन्मूलित कर देते हैं तो उनकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है।[3] संस्कृत नाटकों में शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, रत्नावली, विप्रयदर्शिका प्राकृत गीतों में भी आत्माभिव्यक्ति का उच्छल उद्दाम वेग दर्शनीय है।

अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश साहित्य में भी गीतिकाव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में सोन्माद राजा पुरूरवा के मुख से अनेक अपभ्रंश पद्य सुनाई पड़ते हैं। उन्मत्त राजा बादल से कहता है[4]—

मइ जाणिअ मिअ लोअणि णिसिअरु कोइ हरेइ।
जावण णवन्तडि सामलो धाराहरु वरिसेइ ॥१॥

जब तक नई बिजली से युक्त श्यामल मेघ बरसने न लगा तब तक मैंने यही समझा था कि मेरी मृगलोचनी प्रियतमा को शायद कोई निशिचर हरण कर लिए जा रहा है।

---

१ नाट्यशास्त्र—३२ वाँ अध्याय, पृ० ४४१, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

२ प्राकृत और उसका साहित्य—डा० हरदेव बाहरी, पृ० १०६

३ वज्जालग्ग,—डा० हरदेव बाहरी पृ० ३८१

४ देखिए अपभ्रंश दर्पण, तृतीय भाग, पृ० १३० तथा पृ० १७४

गन्धुम्माइम्र महुग्रर गोएहिं।
वज्जन्तेहिं परहुम्र-रव-तूरेहिं॥
पसरिय पवणुव्वेल्लिर पल्लव निम्ररु।
सुललिम्र विविह-पम्रारे णवइ कप्प म्ररु॥२॥

गन्ध से उन्मत्त भ्रमरो की गु जार तथा बजती हुई, कोयल रूपी तुरही के साथ वह कल्पवृक्ष विविध प्रकार से अत्यन्त सुन्दर ढग से नाच रहा है जिसकी शाखाएँ तथा पल्लव फैले हुए पवन से आन्दोलित हो रहे हैं।

बहिण पइ इम्र म्रब्भत्थेमि म्राम्रक्खहि म ता।
एत्थु रण्णे भम ते जइ पइ दिट्ठी सा महु कता॥
णिसम्महि मि म्रक-सरिसें व म्रणें हस-गइ।
ए चिण्हें जाणिहसि म्राम्रक्खिउ तुज्झु मइ॥३॥

हे मयूर! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि यदि इस अरण्य मे भ्रमण करती हुई मेरी प्रियमता को देखा हो तो मुझसे कहो। सुनो, चन्द्रमा के समान मुख तथा हस के समान चाल इन चिन्हों से तुम उसे पहचान सकते हो। अत इन दोनो को मैंने तुमसे कह दिया है।

परहुम्र महुर-पलाविणि कन्ति।
नन्दण-वण सच्छन्द भमन्ति॥
जइ पइ पिम्र-म्रम मा महु दिट्ठी।
ता म्रा म्रक्खहि महु परपुट्ठि॥४॥

अरी दूसरो से पाली जाने वाली कोयल! मेरी मधुर भाषिणी प्रियतमा कान्ता को यदि नन्दन वन मे स्वच्छन्द घूमती हुई तूने देखा हो तो मुझे बता।

रे रे हसा किं गोविज्जइ।
गइ म्रणुसारें मइ लक्खिज्जइ॥
कइ पइ सिक्खिउ ए गइलालस।
सा पइ दिट्ठी जहणभरालस॥५॥

रे रे हँस! तू मुझसे क्या छिपा रहा है? तेरी चाल ही से मैं पहचान चुका हूँ कि तुमने मेरी जघन-भारालस प्रियतमा को अवश्य देखा है। नहीं तो तेरे जैसे गति के लालची को इतनी सुन्दर चाल की शिक्षा किसने दी है?

हउ पइ पुच्छिमि म्रक्खहि गम्र-वरु।
ललिम्र-पहारें णासिम्र-तरु-वर॥
दूर-विणिज्जिम्र ससहर-कती।
दिट्ठी पिय पइ समुह जती॥६॥

हे अपने हलके झटके से वृक्षो को तोड डालने वाले गजवर! मैं तुझसे पूछता

हूँ कह ! चन्द्रमा की कान्ति को पूर्णत: जीत लेने वाली मेरी प्रिया को क्या तूने सामने से जाती हुई देखा है ?

इसके अतिरिक्त चौरासी सिद्धो एव नाथपथी योगियो की साधनात्मक पदावलियो मे प्रेम, विस्मय, शोक आदि के भाव भरपूर मिलते हैं। सिद्धो ने तो अपने चर्यागीतो मे राग तक के नाम दिए हैं। "ये राग सख्या मे कुल १८ हैं—अरु, कामोद, गड्डा, गुञ्जरी, देशाख, दैवकी, धनसी, पटमजरी, वगाल, भैरवी, मल्लारी, मालशी, मालशी, गुवड, रामकी, बलाहि, वराडी, शबरी।"[1] अतएव यह स्पष्ट है कि सिद्धो के पद गीतिकाव्य की मणिमाला मे एक महार्घ मणि है। भैरवी राग मे निबद्ध चर्यागीत की सांगीतिक माधुरी को देखें—

> भव निर्वाणे पडह मादला
> मण पवण वेणि करण्ड कसाला
> जन्न जन्न दुन्दुहि साद उछलिला
> कान्ह डोम्बी विवाहे चलिल
> डोवी विवाहिआ अहारिउ जाम
> जउतुके किउ आणुतु धाम
> अह निसि सुरअ पसगें जाअ
> जोइणि जाले रअणि पोहाअ
> डोम्बी एर सगे जो जोइ रत्तो
> खण्ह न छाडअ सहज उन्मतो।

अर्थात् कण्ह और डोमिन के विवाह मे पटह, ढोल आदि का शब्द उठ रहा है। मन पवन दोनो वाद्य यन्त्र हो गये। जय जय शब्द होने लगा। कण्हपा ने डोमिन को वधू रूप मे स्वीकार कर लिया। दहेज मे उसे अनुत्तर धाम मिला। उसने जन्म मरण के बन्धन को नष्ट कर दिया। दिन रात उसी के सग से महासुख मे लीन रहता है। इस प्रकार उसने पूर्ण निर्वाण अवस्था को प्राप्त कर लिया।[2]

इसके अतिरिक्त जैन कवियो के चर्चरी और रासको मे गीतिकाव्य का नमूना मिलता है।

सस्कृत साहित्य

सस्कृत गीतिकाव्यो का प्राथमिक उल्लास कालिदास के मेघदूत मे उमड पडा है। धनपति कुबेर के शाप से विश्लेषित यक्ष रामगिरि के सानुओ पर वप्रक्रीडा करते वारिद को देखकर जब प्रकृतिकृपण हो उठता है तब कवि उसके विरहोच्छ्वासो एव सदेशो को गीतिबद्ध करता है। इसे अनुगमन कर सस्कृत मे पवनदूत, हसदूत,

१ सिद्ध साहित्य, डा० धर्मवीर भारती, पृ० २६८

२ अपभ्रश साहित्य—डा० हरिवश कोछड, पृ० ३१५

चातकदूत, कोकिलदूत आदि न मालूम कितने गीतिकाव्य लिखे गये। सस्कृत गीतिकाव्य मे अमरुक का अमरुक शतक भी कम प्रशसनीय नही। इसमे सयोग और वियोग की एक-से-एक सरस उक्तियाँ हैं। इसीलिए इसके पूर्णबध गीति मुक्तको को देखकर ठीक ही कहा है—

अमरुककवेरेक श्लोक प्रबधशतायते।

सस्कृत गीतिकाव्यो का हार है गीत गोविंद। महाकवि जयदेव के इस लघु-काव्य की रसपेशलता का क्या कहना ?

इन्ही सस्कृत पालि, प्राकृत और अपभ्रश गीतो से प्रभावित होकर मिथिला मे विद्यापति तथा बगाल के चडीदास ने कृष्णविषयक मधुगीतो की रचना की। महाकवि जयदेव की परम्परा मे ही मिथिला मे तथा बगाल मे चडीदास, अभिनव जयदेव, महाकवि विद्यापति हुए। ये बडे भारी सगीतज्ञ और गायक थे। राग-रागनियो का ज्ञान इनके सगीतज्ञ होने का प्रमाण है तो विद्यापति कवि गाओल हे से इनके गायक होने का पता चलता है। चडीदास के पदो मे वही तन्मयता और राधा का उत्कट प्रेम दीख पडता है। परन्तु चडीदास और विद्यापति के गीतो के मूलभाव मे अन्तर दीख पडता है। विद्यापति उल्लास के कवि हैं, आनन्द-भोग के कवि हैं किन्तु चडीदास विरहोच्छ्वास और दुःख-यातना के कवि हैं।[1] यदि विद्यापति के गीत हास्य के रग से प्रोद्भासित हैं तो महाकवि चडीदास के पद दुःख के भार से बोझिल।

कुज भवन सय निकसलि रे
कोकल गिरधारी
एकहिं नगर वस माधव रे
जनि कर बटमारी
छाड़ु कन्हैया मोर आचर रे
फाटत नय सारी —विद्यापति

× × ×

दुहु कोरे दुहु कारे विच्छेद भाविया
आर तिल न देखिल जाय जेमरिया —चडीदास

× × ×

सई, केवा दुवाइल श्याम नाम ?

---

[1] चडीदास और गोविन्ददास पदावली भूमिका—श्री मृत्यु जय डे

चडीदास दुःखरे कवि आर एइ खानइ कवि विद्यापतिर सहित तोहार कल्पना ओ वर्णना गभीर पार्थक्य हय। विद्यापति सुखेर कवि। विद्यापतिर राधिका नव अनुरागे उच्छ्वसिता, आवेगमयी ओ आनन्देर प्रतिमूर्ति तिनि जेन चचल प्रेम ओ लीला लास्यमयी आनन्द। किन्तु चडीदासेर राधिका वैराग्यमयी, तन्मय शुष्कता, प्रगाढ़ वेदना, कारुण्य ओ कोमलता समभावे वर्त्तमान।

काबेर मितरदिया, मरमे पशिल गो
आकुल करिल मोर प्राण।

हिन्दी का गीत-साहित्य

इन्ही प्रभावों की दूसरी धारा मे राजस्थान के चारण तथा भक्तशिरोमणि मीरा ने अपने अप्रतिम माधुर्यपूर्ण गीतो की रचना की। इस प्रकार चिरकाल से आती हुई गीतो की जो परम्परा थी उसका पूरा पूरा उपयोग अपने आराध्य श्रीकृष्ण-चन्द्र के चरित्रो के गान मे महाकवि सूर तथा अन्यान्य अष्टछाप के कवियो ने किया। इस काल के कवियो ने विशेषत सूर ने सगीतात्मकता की पराकाष्ठा कर दी। मालूम होता है कि स्वय वेद के गीतो ने बौद्धधर्म, जैन, यवरण तथा अन्यान्य हिन्दू धर्म के ऊपर आक्रमण करने वालो से उसकी रक्षा करने के लिए सूर के कठ से ही जन्म लेना स्वीकार किया। इस प्रकार भारतीय साहित्य के गीतात्मक पद्य, भारतीय साहित्य के रत्न हैं और उनमे लोकहृदय को रजित करने का तथा लोक-धर्म की रक्षा करने का पूरा-पूरा सामर्थ्य है। सम्भवत इसी तत्व को हृदयगम करके गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपनी विनयपत्रिका, गीतावली एव कृष्णगीतावली मे गीतिकाव्य की भिन्न-भिन्न शैलियों का समावेश किया। महाकाव्यकार एव मुक्तक-कार तुलसी ने गीतिरचना का क्यों सहारा लिया इसका यही रहस्य है।

सामान्य गीत और भक्त्यात्मक गीतो का पार्थक्य

यहाँ तक हमने भिन्न-भिन्न प्रकार के गीतिकाव्यों का उदाहरण प्रस्तुत किया है अब हमे भक्त्यात्मक गीतो का विवेचन तथा उदाहरण देना है। वस्तुत काव्य, गीतिकाव्य या भक्त्यात्मक गीतिकाव्य का मूल उत्स बहुत पृथक् नही रहता है और इसके लिए बहुत अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता भी नहीं है। एक कवि अपने जीवशास्त्रीय मूल के बारे मे जितनी जानकारी नहीं रखता जितना वह ईश्वर के प्रति अपने विश्वास को स्वीकृत करता है।[1] इसलिए साधारण गीतिकाव्य और भक्ति-काव्य की मूल प्रेरणा मे समता होते हुए भी इतना अतर तो अवश्य है कि कवि अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को ईश्वर की ओर प्रेषित कर अभिव्यक्ति प्रदान

[1] At no time was the distance very great—for in all literatures the sources of poetry are close to the sources of divine inspiration, and we need not repeat the well known anthropoligical historical proofs of that relationship Yet—and not so long ago—it was unfahionable to admit that religious *feeling and* writing of poetry had valid associations It was then *more* appropriate for a poet to be aware of his biological origins that to a belief in God

—A book of Religious verse—Horale Greogory

करता है। गीतिकाव्य और भक्त्यात्मक गीतिकाव्य की प्रक्रिया मे इसलिए थोडा-सा अन्तर हो जाना स्वाभाविक है।

भक्त्यात्मक गीतो का भी मूल स्रोत ऋग्वेद

हम अभी-अभी कुछ पृष्ठ पहले प्रथम अध्याय में कह आए हैं कि कुछ उच्च पदस्थ एव विख्यात सज्जन ऋग्वेद मे भक्ति का अस्तित्व नही मानते। किन्तु हमे उनका यह या तो भ्रम या दुराग्रह प्रतीत होता है। यो तो ऋग्वेद की प्राय सभी ऋचाएँ श्रद्धा एव भक्ति से प्रेरित होकर रची गई हैं किन्तु इन्द्र, विष्णु या वरुण के प्रति जो ऋचाएँ लिखी गई हैं उनमे भक्ति का उद्गार स्पष्ट प्रतीत होता है। यहाँ हम इन्द्रसबधी वे ऋचाएँ उद्धृत करना चाहते हैं जो उनके पराक्रम एव महिमा का वर्णन करती है। इनको उद्धृत करने मे हमारा अभिप्राय यह है कि इससे राम-चन्द्र सम्बन्धी विनयपत्रिका के तुलसी के किसी पद से तुलना करके स्पष्ट हो सकता है कि वेद की इस ऋचा और तुलसी के भक्तिपूर्ण गीत मे कितना साम्य है। साथ ही इस ऋचा मे विशेषता है कि यह स्वर लय के साथ गाने पर ही सुन्दर नही लगती वरन् उच्चस्वर से पाठ करने पर भी इसमे सगीत का आनन्द आता है। ये ऋचाएँ ऋग्वेद के द्वितीय मडल के बारहवें सूक्त मे हैं। इन्द्र इसके देवता हैं और त्रिष्टुप छद है। गृत्समद नामक ऋषि इन मत्रो के द्रष्टा हैं।

यो जातस्व प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्र ॥१॥

मनुष्य या असुर, जो प्रकाशित हैं, जिन्होंने जन्म के साथ ही देवो मे प्रधान और मनुष्यो में अग्रणी होकर वीरकर्म द्वारा सारे देवो को विभूषित किया था, जिनके शरीर बल से द्यावा पृथिवी भीत हुई थी और जो महती सेना के नायक थे वही इन्द्र हैं।

य पृथिवीं व्यथमानामद्दहय पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्ष विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्र ॥२॥

मनुष्य या असुर, जिन्होंने व्यथित पृथ्वी को दृढ किया है, जिन्होंने प्रकुपित पर्वतो को नियमित किया है जिन्होने प्रकांड अन्तरिक्ष को बनाया है और जिन्होंने द्युलोक को स्तब्ध किया है, वही इन्द्र हैं।

यो हत्वाहिमरिणात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य।
यो अश्मनोरतर्ग्नि जजान सवृक्समत्सु स जनास इन्द्र ॥३॥

मनुष्य या असुर, जिन्होंने वृत्र का विनाश करके सात नदियो को प्रवाहित किया है, जिन्होने बल से असुर द्वारा रोकी हुई गायो का उद्धार किया था, जो दो मेघो के बीच से अग्नि को उत्पन्न करते हैं और जो समरभूमि मे शत्रुओ का नाश करते हैं, वही इन्द्र हैं।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

मनुष्य या असुरो, जिन्होने सम्पूर्ण विश्व का निर्माण किया है जिन्होंने दासो को निकृष्ट और गूढ स्थान मे स्थापित किया है, जो लक्ष्य जीतकर व्याध की तरह शत्रुओ के सार धन ग्रहण करते हैं वही इन्द्र हैं ।

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

मनुष्य या असुर, जिन भयकर देव के सम्बन्ध मे लोग जिज्ञासा करते हैं, वह नही है और जो शासक की तरह शत्रुओ का सारा धन, विनष्ट करते हैं, विश्वास करो, वही इन्द्र हैं ।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

मनुष्यो या असुरो को जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं, जो दरिद्र याचक और स्तोता को धन देने हैं और जो शोभन हनु या केहुनी वाले होकर सोमाभिषव-कर्त्ता और हाथो मे पत्थर वाले यजमान के रक्षक हैं, वही इन्द्र हैं ।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

मनुष्य या असुर, घोडे, गायें, गाँव और रथ जिनकी आज्ञा के आधीन हैं, जो सूर्य और उषा को उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

मनुष्यो या असुरो के दो सेनादल, परस्पर मिलने पर, जिन्हें बुलाते हैं, उत्तम अधम दोनो प्रकार के शत्रु जिन्हे बुलाते हैं और एक ही तरह के रथो पर बैठे हुए दो मनुष्य जिन्हे नाना प्रकार से बुलाते हैं, वही इन्द्र हैं ।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥

मनुष्य या असुर जिनके न रहने से कोई विजयी नही हो सकता, युद्धकाल मे, रक्षा के लिए, जिन्हे लोग बुलाते हैं, जो सारे ससार के प्रतिनिधि हैं और जो क्षयरहित पर्वतादि को भी नष्ट करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥

मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वज्र द्वारा अनेक महापापी अपूजको का विनाश कि है जो गर्वकारी मनुष्य को सिद्धि प्रदान करते हैं और जो दस्युओ के हन्ता हैं, या वही इन्द्र हैं ।

य शम्बर पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने पर्वत में छिपे शम्बर असुर को चालीस वर्ष खोजकर प्राप्त किया था और जिन्होंने बल प्रकाशक अहनाम के सोये हुए दैत्य का विनाश किया था वही इन्द्र हैं।

य सप्तरश्मिर्वृषभस्तु विष्मानवासृजत् सतवे सप्तसिन्धू ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज् बाहुर्द्यामरोहन्त स जनास इन्द्रः ॥१२॥

मनुष्यो या असुरो, जो सप्त वर्ष या वाराह स्वप्त-विद्यु, मह धूपि, स्वापि, गृहमेध आदि सात रश्मियों वाले अभीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नदियों को प्रवाहित किया है और जिन्होंने बज्रबाहु होकर स्वर्ग जाने को तैयार रोहिण को विनष्ट किया था, वही इन्द्र हैं।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वतामयस्तो ।
य सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्त स जनास इन्द्र ॥१३॥

मनुष्यो या असुरो, द्यावापृथिवी उन्हें प्रणाम करती हैं। उनके बल के सामने पर्वत काँपते हैं और जो सोमपान वर्ता, दृढाग वज्रबाहु और वज्रयुक्त हैं, वही इन्द्र हैं।

य सुस्वन्तमवति य पचन्त य शसन्त य शसमानभूतो ।
यस्य ब्रह्मवर्धन यस्य सामो यस्येद राध स जनास इन्द्रः ॥१४॥

मनुष्यो, जो सोमाभिषव-कर्ता यजमान की रक्षा करते हैं, जो पुरोडास आदि पकाने वाले, स्तोता और स्तुतिपाठक यजमान की रक्षा करते हैं और जिनके वर्धक स्तोत्र, सोम और हमारा अन्न हैं, वही इन्द्र हैं।

य सुन्वते पचते दुध्र आचिद्वाज दर्दर्षि स किलासि सत्य ।
वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियास सुवीरासो विदयमावदेम ॥१५॥

इन्द्र दुर्धर्ष होकर सोमविषव कर्ता और पाककारी यजमान को अन्न प्रदान करते हो, इसलिए तुम्ही सत्य हो। हम प्रिय और वीर पुत्र, पौत्र आदि से युक्त होकर चिरकाल तक तुम्हारे स्तोत्र का पाठ करेंगे।

—ऋग्वेद संहिता, द्वितीय पुष्प, पृष्ठ १४४ से १४६।

अब तुलसी के एक पद को समक्ष रखकर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि जिस प्रकार वैदिक ऋषि ने इन्द्र के प्रति भक्ति प्रकट की है, ठीक उसी तरह तुलसी ने भगवान राम के प्रति भक्ति प्रकट की है।

सत सतापहर विश्वविश्राम कर, राम कामारि, अभिरामकारी ।
शुध्द बोधायतन सच्चिदानंदघन, सज्जनानद वर्धन खरारी ॥१॥

शील-समता-भवन, विषमता मति-शमन, राम, रमारमन, रावनारी ।
खड्‌कर, चर्मवर-वर्मधर, रुचिर कटि तूण, शर-शक्ति-सारगधारी ॥

सत्यसधान, निरतिपद, सर्वहित, सवगुण ज्ञान-विज्ञानशाली ।
सघन तम-घोर ससार-भर शर्वरी नाम दिवसेश खर किरणमाली ॥
तपन तीक्ष्ण तरुन तीव्र तापन, तपरूप, तनभूप, तमपर, तपस्वी ।
मानमद-मर्दन-मत्सर-मनोरथ-मथन, मोह-अम्भोधि-मदर मनस्वी ॥
वेदविख्यात, वरदेश, वामन, विरज, विमल, वागीश, वैकुण्ठस्वामी ।
कामक्रोधादि मर्दन, विवर्धन, क्षमा शाति-विग्रह, विहगराज गामी ॥
परम पावन, पाप-पु ज मु जाटवी-अनलइव विमिष निर्मूलकर्त्ता ।
भुवन-भूषण, दूषणारि, भुवनेश, भूनाथ, श्रुतिनाथ जय भुवनकर्त्ता ॥
अनल अविचल अकल, सकल, सतप्त-कलि-विकलता भजनानदरासी ।
उरग-नायक-शयन, तरुणपकज-नयन, छीरसागर-अयन, सर्ववासी ॥
सिद्ध-कवि-कोविदानद दायक, पदद्वद मदात्ममनुजेदु राप ।
यत्रसभूत अतिपूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरित पापं ॥
नित्य निर्मुक्त, सयुक्तगण, निर्गुणानद, भगवंत, न्यामक, नियता ।
विश्व-पोषण भरण, विश्व कारण करण, शरण तुलसीदास-भास हंता ॥
—विनय ५५ ।

उपनिषदों में भक्ति गीत

उपनिषदो मे भी भक्तिपूर्ण गेय पदो का अभाव नही वरन् प्रचुरता है। उदाहरण के लिए मुण्डकोपनिषद के द्वितीय खण्ड के निम्नाकित पदों को देखिए—

तदेतत्सत्य मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यस्तानि त्रेतायां बहुधा सततानि ।
तान्याचरथ नियत सत्यकामा एष व पन्था सुकृतस्य लोके ॥१॥

वह, यह सत्य है कि बुद्धिमान् ऋषियो ने जिन कर्मों को वेद मत्रो मे देखा था वे तीनों वेदों मे बहुत प्रकार से व्याप्त हैं। हे सत्य को चाहने वाले मनुष्यो ! तुम लोग उनका नियमपूर्वक अनुष्ठान करो। इस मनुष्य शरीर मे तुम्हारे लिये यही शुभकर्म की फलप्राप्ति का मार्ग है।

यदा ले लायते ह्यर्चि समिद्धे हृव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुती प्रतिपादयेत् ॥२॥

जिस समय हविष्य को देवताओ के पास पहुँचाने वाली अग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर ज्वालाऐं लपलपाने लगती हैं उस समय आज्यभाग की दोनो आहुतियो के स्थान छोड़कर बीच मे अन्य आहुतियो को डालें।

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास
मचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जित च
अहुतमवैश्व देवमविधिना हुत—
मासप्तमास्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥३॥

जिसका अग्निहोत्र दर्शनात्मक यज्ञ से रहित है, पौर्णमासनामक यज्ञ से रहित है, चातुर्मास्य नामक यज्ञ से रहित है, आग्रयणकर्म से रहित है तथा जिसमे अतिथि सत्कार नही किया जाता, जिसमे समय पर आहुति नही दी जाती जो वलिवैश्वदेव नामक कर्म से रहित है जिसमे शास्त्रविधि की अवहेलना करके हवन किया गया है ऐसा अग्निहोत्र उस अग्निहोत्री सातों पुण्यलोकों को नाश कर देता है।

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वा ॥४॥

जो काली कराली तथा मनोजवा और सुलोहिता तथा सुधुवर्णा, स्फुलिङ्गिनी तथा विश्वरूपी देवी ये सात लपलपाती हुई जिह्वाएँ हैं।

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकाल चाहुतयो ह्याददायन्।
त नयन्त्येता सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवाना पतिरेको धिवास ॥५॥

जो कोई भी अग्निहोत्री इन देदीप्यमान ज्वालाओ मे ठीक समय पर अग्निहोत्र करता है उस अग्निहोत्री को निश्चय ही अपने साथ लेकर ये आहुतिया सूर्य की किरणें बनकर पहुँचा देती हैं जहाँ देवताओ का एकमात्र स्वामी निवास करता है।

एह्येहीति तमाहुतय सुवर्चस
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमान वहन्ति।
प्रिया वाचमभिवदन्त्योर्चयन्त्य
एष व पुण्य सुकृतो ब्रह्मलोक ॥६॥

वे देदीप्यमान आहुतियाँ आएँ, यह तुम्हारे शुभ कर्मों से प्राप्त पवित्र ब्रह्मलोक है, इस प्रकार की प्रिय वाणी बार बार कहती हुई और उसका आदर-सत्कार करती हुई उस यजमान को सत्य की रश्मिओ द्वारा ले जाती हैं।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो ये भिनन्दन्ति मूढा
जरा मृत्यु ते पुनरेवापि यन्ति ॥७॥

निश्चय ही ये यज्ञरूप अठारह नौकाएँ अस्थिर हैं जिनमे नीची श्रेणी का उपासना रहित सकाम कर्म बताया गया है जो मूर्ख, यही कल्याण का मार्ग है (यो मानकर) इसकी प्रशंसा करते हैं वे बार-बार निस्सदेह वृद्धावस्था और मृत्यु को प्राप्त होने रहते हैं।

त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।
अन्ते पृथिव्या सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥२२॥
त्रील्लोकान्धारयन्राम देवगंधर्व दानवान् ।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥२३॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्राह्मणा निर्मिता प्रभो ।
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥२४॥
संस्कारास्त्वभवन्वेदा नेतदस्ति त्वया विना ।
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥२५॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षण ।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥२६॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिंबद्ध्वा सुदारुणम् ।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥२७॥'[1]

अर्थात् आप ही नारायण देव हैं। आप स्वयं चक्र रूपी अस्त्र धारण करने वाले, लोकों के स्वामी विष्णु हैं। आप (एकशृंग एक दाँत वाले) वराह हैं। आप अपने आप उत्पन्न हुये वर्तमान और भविष्यत् शत्रुओं को जीतने वाले हैं। आप कभी अपने स्थान से नीचे नहीं उतरते। आप स्वयं ब्रह्म हैं। आपका आदि, मध्य और अंत सभी सत्यमय है। आप ही लोगों के परम धर्म और चार भुजाएँ धारण करने वाले विष्णु हैं। आप शारंग नामक धनुष के धारण करने वाले, इंद्रियों के स्वामी, पुरुष और पुरुषोत्तम हैं। आप किसी के द्वारा जीते नहीं जा सकते, आप खड्ग धारण करने वाले विष्णु हैं और अत्यंत बलवान् कृष्ण हैं। आप ही सेनानी और ग्रामणी हैं। आप ही सब की बुद्धि हैं, तथा क्षमा और दम हैं। आप सबके कारण, अन्यय, उपेन्द्र तथा मधुसूदन हैं। इंद्र के समान काम करने वाले आप महेन्द्र हैं। आपकी नाभी कमल के तुल्य है और युद्ध में शत्रुओं का अन्त करने वाले हैं। स्वर्गीय महर्षि आप को शरण्य तथ शरण बतलाते हैं। आपके हजारों सींगे हैं। वेद ही आपकी आत्मा है और आपके सैकड़ो सिर हैं। हे प्रभो आप स्वयं तीनों लोकों के आदिकर्ता हैं। आप सिद्धों और साध्यों के आश्रय हैं और उनसे पहले उत्पन्न होने वाले हैं। आप ही यज्ञ हैं आप ही वषट्कार तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म ओंकार हैं। आप सबके कारण और नाश हैं। हम यह नहीं जानते कि आप कौन हैं। आप तो सभी जीवों में दिखाई पड़ते हैं। गायों में भी और ब्राह्मणों में भी। सभी दिशाओं में। आकाश पर, पर्वत पर और नदियों में आप ही विद्यमान हैं। आपके हजारों पैर हैं, सिर हैं और नेत्र हैं। आप सभी जीवों को, पृथ्वी को, सभी पर्वतों को पृथ्वी के अंत होने पर धारण करते हैं। उस समय आप एक महान दिखाई पड़ते हैं। हे राम, आप देव,

---

[1] वाल्मीकिय रामायण, पृ० १२७०-१२७१—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई।

गधर्व और दानव—इन तीनों लोकों के धारण करने वाले हैं। मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ, और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा है। देवता लोग आपके रोएँ हैं और ब्राह्मण आपके शरीर हैं। आपका पलक गिरना रात्रि है और पलक खोलना दिन है। आपके सस्कार वेद हैं, इस विश्व मे आपके सिवा और कुछ नही। सारा ससार आपका शरीर है और स्थिरता पृथ्वी है। आपका क्रोध अग्नि है, आपकी कृपा चद्रमा है। आपने अपने कर्मों से तीनो लोकों को जीत लिया था। अत्यत भयानक राजा बलि को बाधकर आपने इद्र को राजा बनाया था। सीताजी लक्ष्मी हैं और आप विष्णु भगवान हैं आप ही कृष्ण और प्रजापति हैं।

—१३वें श्लोक से २७ तक।

गीता

श्रीमद्भगवद्गीता मे जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट् स्वरूप का दर्शन दिया तो अर्जुन का मोहांधकार दूर हुआ और उनकी स्तुति इस प्रकार है—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या,
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति,
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसघा ॥३६॥

हे अतर्यामिन् यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत् अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है तथा भयभीत हुए राक्षस लोग दिशाओ मे भागते हैं और सब सिद्धगणो के समुदाय नमस्कार करते हैं।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्,
गरीयसे ब्रह्मणे प्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास,
त्वमक्षर सदसत्तत्पर यत् ॥३७॥

हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदिकर्ता और सबसे बडे आपके लिये वे कैसे नमस्कार नही करें क्योंकि हे अनन्त देवेश। हे जगन्निवास! जो सत, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है वह आप ही हैं।

त्वमादिदेव पुरुष पुराण—
स्त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम।
वेत्तासि वेद्य च पर च धाम,
त्वया तत विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

और हे प्रभो! आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत् के

परम आश्रय और जानने वाले तथा जाने योग्य और परम धाम हैं। हे अनन्तरूप ! आपसे यह सब जगत् व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है।

वायुर्यमोग्निर्वरुण शशाङ्क
प्रजापतिस्त्व प्रपितामहश्च।
नमो नमस्ते स्तु सहस्रकृत्व
पुनश्च भूयो पि नमो नमस्ते ॥३९॥

और हे हरि ! आप वायु, यमराज अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिये हजारो बार नमस्कार होवे। आपके लिये फिर भी बारम्बार नमस्कार, नमस्कार होवे।

नम पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमो स्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्व
सर्व समाप्नोसि ततो सि सर्व. ॥४०॥

और, हे अनन्त सामर्थ्य वाले, आपके लिये आगे से और पीछे से भी नमस्कार होवे, हे सर्वात्मन्, आपके लिये सब ओर से ही नमस्कार होवे, क्योकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब ससार को व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं।

सखेति मत्वा प्रसभ यदुक्त
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमान तवेद
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

हे, परमेश्वर ! सखा ऐसे मानकर आपके इस प्रभाव को न जानते हुए मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी हे कृष्ण, हे यादव !, हे सखे ! इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है।

यच्चावहासार्थमसत्कृतो सि
विहारशय्या सनभोजनेषु।
एको थवाप्यच्युत् तत्समक्ष
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

और हे अच्युत ! जो आप हँस के लिये विहार शय्या, आसन और भोजनादिको मे अकेले अथवा उन सखाओ के समान भी अपमानित किये गये हैं वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाव वाले आपसे मैं क्षमा कराता हूँ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।

न त्वत्समो त्स्यभ्यधिक कुतो न्यो
लोकत्रये प्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

हे विश्वेश्वर ! आप इस चराचर जगत् के पिता और गुरु से भी बडे गुरु एव अति पूजनीय हैं, हे अतिशय प्रभाव वाले तीनो लोकों मे आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक कैसे होवे ।

—गीता ११वाँ अध्याय, श्लोक ३६ से ४३ तक

पाली, प्राकृत और अपभ्रश

इन गीतो के पश्चात् जरा हम पाली, प्राकृत तथा अपभ्रश के भक्त्यात्मक गीतो पर विहगम दृष्टि डाल लें। पाली का साहित्य भगवान बुद्ध के जीवन, विचार एव उनकी श्रद्धा से सवलित साहित्य है। यद्यपि बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास नहीं किया है फिर भी स्वय बुद्ध के प्रति उद्गारो मे भक्ति का उत्कृष्ट निदर्शन होता है।

प्राकृत में भी भक्तिविह्वल गीतो का अभाव नहीं। आचार्य कुदकुन्द (समय लगभग ईसवी सन् की प्रथम शताब्दि) के रयणसार में भक्ति की प्रशसा की गई है।

विणओ भतिविहीणो महिलाण रोयण विणा,
चागो वेरग्गविणा एदे दोवारिया भणिया।

भक्ति के बिना विनय, स्नेह के बिना महिलाओ का रोदन, वैराग्य के बिना त्याग—तीनों विडम्बनायें हैं।

प्राकृत साहित्य मे "देसभक्ति" (देशभक्ति) मे तीर्थंकर, सिद्ध, श्रुत, चरित्र, योगि, आचार्य, निर्वाण, पचगुरु, नन्दीश्वर और शक्ति भक्ति का वर्णन है।

सिद्धभक्ति

जरमरण जम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तरम
दितु वरणाण लाह बुहयण परिपत्थन परम सुद्ध।

जरा, मरण और जन्म से रहित सिद्ध, भक्तिभावना से युक्त मुझे केवल ज्ञान की प्राप्ति करायें, यह बुद्धिमान जनों की परम शुद्ध प्रार्थना है।

आचार्य भक्ति

ससार काणणे पुण भमण मार्णेहि भय जीवेहि।
णि वाणस्स हु मग्गो लद्दो तुम्हं पसाएण ॥

ससार रूपी कानन मे भ्रमण करते हुए आप जीवों के द्वारा आपके प्रसाद से निर्वाण का मार्ग प्राप्त हुआ।

अपभ्रश साहित्य मे भी भक्ति गीतो का अभाव नहीं किन्तु वे विनयपत्रिका के गीतों की तरह विशुद्ध भक्त्यात्मक गीत नहीं हैं। ये गीत बौद्ध और जैन धर्म के

सम्बन्धित हैं।[1]

संस्कृत साहित्य

संस्कृत के भक्ति-विह्वल गीतो मे जयदेव के गीतगोविन्द के गीत उद्धरणीय हैं ही—

दिनमणि मण्डल मण्डन भवखण्डन ए
मुनि जनमानसहंस जय जय देव हरे ॥२॥
कालिय विषधर गंजन जनरंजन ए ।
यदुकुल नलिन दिनेश जय जय देव हरे ॥३॥
मधु मुरनरक विनाशन गरुडासन ए।
सुरकुलकेलि निदान जय जय देव हरे ॥४॥
अमलकमलदलोचन भव मोचन ए ।
त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥५॥

—द्वितीय सर्ग, पृ० १०-११
कचोडी गली, बनारस सिटी ।

अर्थात हे नारायण ! सूर्य मंडल के भूषण स्वरूप समस्त लोगो को गति, भक्ति और मुक्ति देने वाले आप ही, सन्त भक्तजनो के हृदय मे हंस सदृश विराजमान रहते हो। इससे हे भगवान् आपकी जय हो, जय हो, जय हो ॥२॥

हे भगवन् ! आपने कालियनाग का दमन किया था और आप ही भक्त-जनो की मनोकामना के परिपूर्ण करने वाले हैं। यदुवंश रूप कमल के प्रकाशक रूप स्वरूप आप ही हैं। इसलिये आपकी जय हो, जय हो, जय हो ॥३॥

हे भगवन् ! आपने मधु दैत्य और मुर नामक असुर का विनाश किया था, नरकस्थित पापियो को आप मुक्तिपद देते हैं। गरुड जिनके वाहन हैं ऐसे हे गरुडासन भगवान् ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो ॥४॥

हे भगवान् ! आपके नेत्र, कमल के समान हैं, भवपाश से छुडाने वाले आप ही हैं। त्रिभुवन भवन-विधान आप हैं। आपकी जय हो, जय हो, जय हो ॥५॥

हिन्दी साहित्य तुलसी पूर्व और समकालीन भक्ति गीत

हिन्दी मे भक्तिपूर्ण गेय पदो के आदिकवि विद्यापति ही माने जा सकते हैं। भक्तिपूर्ण पद उनके पदो मे बहुत ही कम हैं। राधा और कृष्ण इनके आराध्य नही थे। ये शैव थे। इसलिये इनके भक्तिपूर्ण पद चंडी और शिव के सम्बन्ध ही मे मिलते हैं। उनमे एक पद इस प्रकार है—

जय-जय भैरवि असुर भयाउनि
पशुपति—भामिनि माया ।

---

[1] विशेष विवरण के लिए डा० हरिवंश कोछड की पुस्तक अपभ्रंश साहित्य देखिये

सहज सुमति वर दिग्रम्रो गोसाउनि
अनुगति गति तुग्र पाया।
बासर रैनि सवासन सोभित
चरन, चन्द्रमणि चूडा।
कतम्रोक दैत्य मारि मुह मेलल
कतम्रो उगिल केल कूडा।
सामर बरन, नयन अनुरंजित
जलद जोग फुलकोका।
कट कट विकट म्रोठ पुट जोउरि
लिधुर फेन उठ फोका।
धन धन धनए घुघुर कत बाजए
हन हन कर तुग्र काता।
विद्यापति कवि तुग्र पद-सेवक
पुत्र विसरि जनि माता।[1]

विद्यापति के बाद भक्तिपूर्ण पद लिखने वालो मे कबीर आदर के योग्य हैं। यह बात दूसरी है कि इनकी भक्ति निर्गुण भक्ति है लेकिन कबीर भक्त हैं, इससे इकार नही किया जा सकता। एक भावपूर्ण पद का उदाहरण लीजिये—

तुम बिन राम कवन सों कहिये,
लागी चोट बहुत दुःख सहिये ॥टेक॥
बेध्यो जीव बिरह के भाले, राति दिवस मेरे उर साले।
को जानें मेरे तन की पीरा, सतगुरु सबद बहि गयो सरीरा।
तुम से वैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसें जीवे बियोगी।
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहु न आइ मिले रामराई।
कहत कबीर हमको दुख भारी, बिन दरसन क्यू जीवहि मरारी।[2]

निर्गुण सतों के भक्ति-गीत

निर्गुणिया सन्तो की परम्परा मे भक्तिपूर्ण पदों के रचयिताम्रो मे रैदास तथा धरनीदास के नाम उल्लेखनीय हैं। पहले रैदास के एक पद का उदाहरण दिया जाता है जिसमे आराध्य अपने आदर्श के दर्शन के लिये अपनी अपार उत्कठा व्यक्त करता है।

दरसन दीजै राम, दरसन दीजै
दरसन दीजै विलब न कीजै।

---

[1] ७७२ वां पद, पृ० ५०४—मित्र तथा मजुमदार
[2] कबीर ग्रथावली सपादक श्यामसुन्दर दास, पृ० १८५

दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यों जिवे चकोरा॥
साधो सतगुरु सब जगचेला। अबके बिछुरे मिलन दुहेला॥
धन जोवन की झूठी आसा। सत सत भाखें जन रैदासा॥[1]

नानक के अधोलिखित पद मे परमात्मा की सर्वव्यापकता के प्रति एकात् निष्ठा द्रष्टव्य है। उनका कहना है—

आपे रसीआ आपि रसु, आपे रावण हाए
आपे होवे चोलडा, आपे सेज मताए
रंगरिता मेरा साहिबु, रवि रहिआ भरपूरि
आपे माछी मछुली, आपे पाणी जालु
आपे जाल मणकडा, आपे अंदरि लालु
नित खे सोहागणी, देखु हमारा हालु
प्रणवे नानक बेनती, तू सरवरु तू हंसु
कउल तहै क्वीआ तू है, आदे वेखि विगसु।[2]

धरमदास ने अपने इस पद मे परमात्मा और गुरु की एकतानता निर्घोषित की है—

झरि लागै महलिया घहराय।
खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै सोभा बरनि न जाय।
सुन महल से अमृत बरसै, प्रेम अनद ह्वै साधु नहाय।
खुली केवरिया, मिटी अँधिभिरिया, धनि सतगुरु जिन दिया लखाय।
धरमदास विनवं करि जोरी, सतगुरु चरन मे रहत समाय।[3]

कृष्ण भक्त कवियो के भक्ति-गीत

कृष्ण भक्त कवियो मे अष्टछाप के कवि भक्त-विह्वल पद लिखने मे विख्यात हैं। लेकिन अष्टछाप मे भी सूरदास सर्वश्रेष्ठ हैं। ये तुलसीदास के पूर्ववर्ती तथा ईपत्काल तक समकालीन भी कहे जा सकते हैं। सूरदास पूर्ण भक्त थे। व्यापकता की दृष्टि से सूर का काव्य तुलसी की तरह नही है। उनके पद कृष्ण के बाल और किशोर जीवन से ही सम्बन्धित हैं। किन्तु इतने सीमित क्षेत्र में ही सूर ने भक्ति के असख्य भाव अभिव्यजित किये हैं। इससे उनकी कल्पना की उर्वरता और भक्ति की तल्लीनता का पता चल जाता है। उनके भक्ति-पदो मे से एक देखिये कितना सरस और मार्मिक है—

मन वच क्रम मन, गोविंद सुधि करि।
सुचि रुचि सहज समाधि साठि सठ, दीनबधु करुनायन उर धरि।

---

१ सतकाव्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २२१
२ सतकाव्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २४०
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ८३

मिथ्यावाद विवाद छाँडि के, काम क्रोध मद लोभहिं परिहरि ॥
चरन प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुखतर हरि ।
वदनि कह्यौ, सुमतिहूँ भाष्यो, पावनपतित नाम निज नरहरि ॥
जाको सुजस सुनत अरु गावत, जेहे पाप वृंद भजि भरहरि ।
परम उदार, स्याम घन सुंदर, सुखदायक, सतत हितकर हरि ॥
दीनदयाल, गोपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिगठरहिं ।
अति भयभीत निरखि भवसागर, घन ज्यों घेरि रह्यो घर घरहरि ॥
जब जम जाल पसार परेगो, हरि बिनु कौन करैगो धरहरि ॥
अजहूँ चेत मूढ़, चहु दिसि तें, उपजी काल अगिनि भर भरहरि ।
सूरकाल-बल-व्याल ग्रसत है, श्रीपत सरन परत किन फरहरि ॥[1]

अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त गीतों का मधुर प्रवाह बहाया स्वामी हितहरिवंश ने । ये तुलसीदास से वय में बड़े थे । इनके पद विद्यापति और जयदेव के पदों से होड़ लेते हैं । ये राधा जी के भक्त थे । माधुर्य गुण से सन्निविष्ट एक पद देखें ।

ब्रज नव तरनि कदंब मुकुट मनि स्यामा आजु बनी,
नख सिख लौं अंग-अंग माधुरी मोहे स्याम धनी ।
यों राजति कबरी गूंथित कच कनक-कंज बदनी,
चिकुर चंद्रिकन बीच अधरविधु मानो ग्रसित फनी ।
सोभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी,
भृकुटी काम कोदंड नैन सर, कज्जल रेख अनी ।
भाल तिलक, ताटंक गंड पर, नासा जलज मनी,
दसन कुंद, सरसाधर पल्लव, पीतम मन-समनी ।
हित हरिवंश प्रशंसित स्यामा कीरति विसद घनी,
गावत श्रवननि सुनत सुखाकर विश्व-दुरित दवनी ।[2]

तुलसीदास के समकालीन संतों में मीराबाई भी थीं जो स्वयं भक्ति के अवतार-सी थीं । इनके पद भक्ति से पूर्णतः ओतप्रोत हैं । अपने प्रभु की चरणोपासना से सम्बद्ध एक पद में मीरा कहती हैं—

मण थे परस हरि के चरण ।
सुभग सीतल कंवल कोमल, जगत ज्वाला हरण ।
इण चरण प्रह्लाद परस्यो, इन्द्र पदवी धरण ।
इण चरण ध्रुव अटल करस्यां, सरण असरण सरण ।

---

[1] सूरसागर सम्पादक—नंद दुलारे बाजपेयी, पृ० १०३

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८१ ।

इण चरण ब्रह्माण्ड भेंट्यो, नखसिखो सिरी भरण।
इन चरण कलियों नाथ्यों, गोपीलीला करण।
इण चरण गोवरधन धारयो, गरब मधवाहरण।
दासि मीरां लाल गिरधर, अगम तारण तरण।[1]

राम साहित्य में भक्ति गीत

रामभक्ति परम्परा में पद लिखने वाले बहुत कम कवि हुये हैं। स्वामी रामानन्द के लिखे कुछ स्तोत बतलाये जाते हैं। हनुमान जी की स्तुति में लिखा गया उनका एक पद इस प्रकार प्रचलित है जिसे मिश्रबन्धुओं ने अपने "विनोद"[2] तथा शुक्ल जी ने अपने इतिहास में उद्धृत किया है—

आरति जै हनुमान लला की, दुष्टदलन रघुनाथ कला की।
आनि सजीवनि प्रान उबार्‌यो, मही सबन के भुजा उपार्‌यो।
गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोहीं, होहु दयाल देहु जस मोहीं।
लका कोट समुंदर खाई, जात पवनसुत बार न लाई।
जो हनुमत की आरति गावे, बसि बैकुंठ परमपद पावे।[3]

तुलसी और निष्कर्ष

इसके बाद स्वामी भक्तप्रवर तुलसीदास ने भक्ति सम्बन्धी गीतों का नया अध्याय प्रारम्भ किया। उनकी विनयपत्रि का तो भक्त्यात्मक गीतों का वह हिमालय शिखर है जिसकी ऊंचाई को छू सकना शायद असम्भव सा ही है। वेद से जो भक्त्यात्मक गीतों का प्रवाह चला, वह मानो विनयपत्रिका मे आकर पारावार का रूप धारण कर लेता है। इसलिये तुलसी की यह कृति भक्ति साहित्य की महार्घत मणि है।

●

---

१. मीराबाई की पदावली—परशुराम चतुर्वेदी, पद १, पृ० १३१
२ विनोद, प्रथम भाग, पृ० १५२-५३
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

द्वितीय खण्ड

तुलसी के भक्त्यात्मक गीत

: १ :

तुलसी की प्रामाणिक कृतियों का विवरण

तुलसी की प्रामाणिक रचनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने दीर्घ जीवन मे वृहत् साहित्य का प्रणयन किया किन्तु उनकी समग्र कृतियो की प्रामाणिकता के विषय मे निर्भ्रान्त रूप से कहा नही जा सकता। यदि उन्होंने अपनी किसी भी रचना मे अन्य रचनाओ की सूचना दी होती तो आज इस प्रकार के ऊहापोह की आवश्यकता ही नही पडती।

हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक गार्सा द तासी ने तुलसी की रचनाओ का उल्लेख एवंविध किया है। रामायण से (जो तुलसीदास की सबसे लोकप्रिय रचना है) स्वतन्त्र, उनकी और रचनाएँ हैं —

१ एक "सतसई", विभिन्न विषयो पर सौ छदो का सग्रह।

२ "रामगानावली" राम की प्रशसा मे पद्यो की माला।

३ एक 'गीतावली" नैतिक और धार्मिक उद्देश्य वाली एक काव्यरचना। मेरे विचार से यह वही रचना है जो रामगानावली है।

४. "विनयपत्रिका" अपने आचरण के ढग पर एक प्रकार की पद्यात्मक रचना।

५ अपने इष्टदेव और उनकी पत्नी, अर्थात् राम और सीता के उपलक्ष मे अनेक प्रकार के भजन जैसे "राग", "कवित्त" और पद। यह रचना आगरे से प्रकाशित हो चुकी है।

श्री विलसन द्वारा उल्लिखित इन रचनाओ के साथ कोई निम्नलिखित ग्रन्थ जोडते हैं—

६ रामजन्म—उनके अनुसार, भोजपुर की बोली मे लिखी गई।

७ "रामशलाका"—कन्नौज प्रान्त की बोली मे लिखित।

८ "जानकीमगल"—(राम के साथ) —सीता का विवाह—लहौर,बनारस, मेरठ, आगरा से मुद्रित १६ अठपेजी पृष्ठ और १८६८ मे बनारस से फिर प्रस्तुत की गई।

९ अन्त मे "पचरत्न"—पांच बहुमूल्य रत्न—शीर्षक—पांच छोटी कविताएँ १८६४ बनारस से मुद्रित।

१० तुलसी की उन रचनाओं के अतिरिक्त जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है "रुक्मिणी स्वयंवर टीका" स्वयंवर के रूप में विवाह का उपहार—उनकी देन है। इसकी एक प्रति कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी में है।[1]

तासी के द्वारा "रामगानावली", "रामशलाका", "पचरत्न" रामजन्म तथा "रुक्मिणी स्वयंवर टीका" ये ऐसी पांच पुस्तकें उल्लिखित हैं जो अपरिचित सी लगती हैं।

शिवसिंह सेंगर ने अपने "सरोज" में भी तुलसीदास की कृतियों की चर्चा की है। उनका कथन है "जो ग्रंथ हमने देखे अथवा हमारे पुस्तकालय में हैं उनका जिकर किया जाता है प्रथम ४९ कांड रामायण बनाया है इस तफ्सील से १ चौपाई रामायण ७ कांड २ कवितावली ७ काण्ड गीतावली ७ काण्ड ४ छदावली ७ काण्ड ५ बरवे ७ काण्ड ६ दोहावली ७ काण्ड ७ कुण्डलिया ७ काण्ड और सिवा इन ४९ काण्डो के १ सतसई २ रामशलाका ३ सकटमोचन ४ हनुमत् बाहुक ५ कृष्णगीतावली ६ जानकी मगल ७ पारवती मगल ८ कडखा छद ९ रोलाछद १० झूलना छद इत्यादि और ग्रंथ बनाए हैं अन्त मे विनयपत्रिका—"[2]

इन पुस्तको मे कुछ ऐसी पुस्तकें हैं जो प्रामाणिक नही मानी जाती हैं। स्वय जार्ज ग्रियर्सन ने अपने इतिहास मे लिखा है कि शिवसिंह सेंगर द्वारा कथित पुस्तको को मैंने कही नही देखा है वे ये हैं—

१ रामशलाका (रामकल्पद्रुम)
२ कुण्डलिया रामायण
३ कडखा रामायण
४ रोला रामायण
५ झूलना रामायण[3]

मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ "हिंदी नवरत्न" मे तुलसीदास के बारह ग्रंथ प्रामाणिक तथा तेरह ग्रन्थ अप्रामाणिक माने हैं।

प्रामाणिक पुस्तकें

१ रामचरित मानस	२ कवितावली
३ गीतावली	४ जानकीमगल

---

१ हिंदुइ साहित्य का इतिहास—मूल लेखक-गार्सा द तासी, अनुवादक डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ० १०१-१०२

२ शिवसिंह सरोज—तृतीय सस्करण, पृ० ४२६

३ द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान—अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० १२६

५ कृष्णगीतावली	६ हनुमानबाहुक
७ हनुमान चालीसा	८ रामशलाका
९ रामसतसई	१० विनयपत्रिका
११ कलिधर्माधम निरूपण	१२ दोहावली

अप्रामाणिक पुस्तकें

१ *कडखा रामायण*	२ *कुण्डलिया रामायण*
३ छप्पय रामायण	४ पदावली रामायण
५ रामाज्ञा	६ रामलला नहछू
७ पार्वती मगल	८ वैराग्य सदीपनी
९ बरवे रामायण	१० सकटमोचन
११ छन्दावली रामायण	१२ रोला रामायण

१३. झूलना रामायण[1]

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित तुलसी ग्रथावली के तीनो सपादको (प० रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा श्री व्रजरत्नदास) ने छक्कनलाल, जो मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी तथा भक्त रामगुलाम जी द्विवेदी परम्परा मे हैं, के आधार पर इन द्वादश ग्रथो को प्रामाणिक माना है।

१ रामचरितमानस	७ रामाज्ञा प्रश्न
२ रामलला नहछू	८ दोहावली
३ वैराग्य सदीपनी	९ कवितावली
४ बरवे रामायण	१० गीतावली
५ पार्वती मगल	११ श्रीकृष्णगीतावली
६ जानकीमगल	१२ विनयपत्रिका

"हिन्दी नवरत्न" तथा तुलसीदास ग्रथावली की पुस्तको मे इतना ध्यातव्य है कि ग्रथावली के सपादक मिश्रबधुओ द्वारा मान्य १ हनुमान चालीसा, २ रामशलाका, ३ रामसतसई, ४ कलिधर्माधमनिरूपण को स्थान नहीं देते। मिश्रबधु इन कृतियो को बिलकुल अप्रामाणिक मानते हैं फिर भी ग्रथावली के सपादक तथा आज के विद्वान भी प्रामाणिक मानते हैं। ये पुस्तकें हैं—१ रामाज्ञा, २ रामलला नहछू, ३ पार्वती मगल, ४ वैराग्यसदीपनी, ५ बरवे रामायण।

१९०० ई० से १९५० ई० की खोज रिपोर्ट जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित की गई है उसमे बहुत-सी ऐसी पुस्तकों के नाम हैं जो तुलसीदास के नाम से सबधित हैं। इन पुस्तकों का उल्लेख न तो तासी ने किया, न सेंगर ने, न ग्रियर्सन ने, न अन्य समीक्षकों ने, इसलिए इन्हें उपस्थित किया जा रहा है।

---

१ हिन्दीव नरत्न—पृ० ८९-१०१

(क) ग्रन्थावली प्रकाशन के पूर्व उल्लिखित पुस्तकें

१ मगल रामायण
२ सगुणावली
३ सूरज पुराण
४ ध्रुव प्रश्नावली
५ ग्रथावली
६ तुलसीदास की वाणी
७ ज्ञान को प्रकरण[1]

(ख) ग्रन्थावली प्रकाशन के अनन्तर उल्लिखित पुस्तकें

१ भगवद्गीता
२ छदावली रामायण
३ ज्ञानदीपिका भाषा
४ मगल रामायण
५ रामजप
६ सगुणावली
७ सप्तक
८ सतपच चौपाई[2]

किन्तु इन पन्द्रह पुस्तकों की प्रामाणिकता बिलकुल सदिग्ध ही है। इन त्यागी महानुभावों ने अपने को निश्शेष करके भी अपनी कृति को अकाल काल कवलित होने से बचाने के लिए तुलसी नाम रखकर रचनाएँ कीं। आज भी तुलसी नाम से कविताएँ होती हैं किन्तु गोस्वामी जी की प्रतिभा भाषा-सौष्ठव कल्पना-वैभव के आधार पर इन कृतियों को बिलगाने में बहुत कम कठिनाई होती है। इस प्रकार अनेकानेक पुस्तकों में आज गोस्वामी जी द्वारा रचित वे ही पुस्तकें प्रामाणिक हैं जिन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू ब्रजरत्नदास ने प्रामाणिक माना है।

किन्तु डॉ० रामकुमार वर्मा इन द्वादश पुस्तकों के अतिरिक्त "कलिधर्माधर्म निरूपण" को तुलसीकृत मानते हैं। उनका कथन द्रष्टव्य है —

"यदि तुलसीदास की शैली पर दृष्टि डाल कर इनके समस्त मिले हुए ग्रन्थों की समीक्षा की जावे तो इन १२ ग्रन्थों के अतिरिक्त 'कलिधर्माधर्म निरूपण" भी प्रामाणिक माना जाना चाहिए।"[3] लेकिन अन्य विद्वानों ने स्यात् इसीलिए इसे

१ खोज रिपोर्ट—१६०६, १६१०, १६११ ई०
२ खोज रिपोर्ट १६२३, १६२४, १६२५ ई० के आधार पर
३ हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५३१

तुलसीकृत नही माना है कि किसी से स्वय निर्मित चौपाइयो, सोरठे और हरिगीतिका छद के बीच दोहावली के २५ दोहो को मिलाकर एक नए ग्रन्थ की रचना कर दी । दोहे की भाषा, पद्धति तुलसीकृत है, लेकिन चौपाइयाँ सोरठे तुलसीकृत नही।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी तुलसीदास की प्रामाणिक पुस्तकें बारह ही मानी हैं लेकिन वे कवितावली और हनूमान बाहुक को पृथक् कृति मानते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "वैराग्य सदीपिनी" को वे प्रमाणित नही मानते। उनका कहना है 'अन्य किसी भी दृष्टि से भी 'वैराग्य सदीपिनी" तुलसीदास की रचना नही कही जा सकती। अन्त एक व्यापक मत के इसके पक्ष मे होते हुए भी इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओ मे स्थान नही मिल सकता है।[1]

डॉ० गुप्त 'अ से ग" तक पन्द्रह उदाहरणो के आधार पर इसे तुलसीदास की कृति नही मानते। इनके निराकरण के लिए भी तुलसी-साहित्य से अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यह तुलसीदास की प्रारम्भिक कृति है इसलिए इसकी कुछ त्रुटियो के आधार पर इनकी रचना नही मानना उचित नही मालूम पडता।

लेकिन तुलसीदास की प्रामाणिक कृतियो की सख्या बारह हो ग्यारह या तेरह इससे तुलसीदास की महत्ता मे थोडी भी कमी नही आती और न हमारे शोधकार्य से सम्बन्धित विषय को भी किसी प्रकार की क्षति पहुँचाती। इसी के साथ यह भी विचारणीय है कि जिस गोस्वामी तुलसीदास को अपने महाकाव्य रामचरित मानस के कारण इतनी प्रशस्ति मिली, क्या वे ही महाकाव्यकार तुलसीदास विनय-पत्रिका, गीतावली तथा श्रीकृष्णगीतावली जैसी गीत-कृतियो के भी रचयिता हैं। यद्यपि इसमें किसी को कभी सन्देह नही हुआ तथापि निम्नांकित उद्धरणो से इस बात की पुष्टि कर देना अप्रासंगिक न होगा।

रामचरितमानस और विनयपत्रिका

रामभगति चिंतामनि सु दर। बसई गरुड जाके उर अतर ॥

—मानस, उत्तर० ११९

सो तनु हरि हरि भजहि न जे नर। होहिं विषय रत मद मदतर।
काच किरिचि बदले ते लेही। कर ते डारि परस मनि देही।

—मानस, उत्तर० १२०

तथा—

जेहि के भवन चिंतामनि सो कत काच बटोरे।

—विनयपत्रिका

कबिहि अरथ जिमी ब्रह्मसुख ग्रह मम मलिन जनेया।

—मानस, अयो० २२५

---

१ तुलसीदास—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृ० १३६, तृतीय सस्करण

तथा—

चलु मिलु बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि।
तुलसिदास प्रभु सरन सबद सुनि अभय करेगो तोहि॥

—गी० लंका० १

नृप अभिमान मोह बस किंवा। हरि आनेहु सीता जगदंबा॥

—रा० च० मा०, सं० १९

तथा—

श्री मद नृप अभिमान मोह बस जानत अनजानत हो लरि लायो—

—गी० लंका० २

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥

—रा० च० मा०, बाल० १३६

याको फल पाव हुगे आगे बानर भालु चपेटन लागे।

—रा० च० मा०, लंका० ३१

तथा—

पावहुगे निज करम जनित फल। भले ठौर हठि बैर बढ़ायो।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तब ह्वै है पछितायो।

—गी० लंका० ४

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक।

—रा० मा०, लंका० ३२

हौं ही दसन तोरिबे लायक कहा करों, जो न आयसु पायो।

—गी० लं० ४

शब्द-प्रयोग साम्य

(क) तो सिव धनु मृनाल की नांई। तोरहु राम गनेस गोसाईं।

—रा० बा० २५४

(ख) ते पावौं भनौं मृनाल ज्यों तौ प्रभु अनुज कहावौं।

—गी० बा० ८९

राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों सेनु सरासन तोर्यो।

—गी० बा० १०२

सुनहु भानु कुल पंकज भानू।
जौं तुम्हारी अनुसासन पावौं।

—रा० च० मा० २५२

तथा—

सुनहु भानुकुल कमल भानु ज्यों अब अनुसासन पावौं।

—गी० बा० ८६

(क) भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

—मानस

रूप सील गुण धाम प्रगट भए आई।

—गी० बाल०

(ख) विनय प्रेम बस भई भवानी, ससी भाल मूरति मुसकानी।

—मानस

सुनि सिय सत्य असीस हमारी, पूजहि मनकामना तुम्हारी।

—बालकाड, २३५ वा दोहा

मूरति कृपाल मंजु माल दे बोलत भई,
पूजो मन कामना भावतो बर बरि के। २

(ग) तहा राम रघुवंस मनि, सुनिय महा महिपाल,
भजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकजनाल।

—मानस, बाल० २६२

राज सभा रघुबर मृनाल ज्यों, संभु सरासरन तोर्यो।

—गी० बाल० १०२

(घ) भरत बचन सब कह प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥
लोग वियोग विषम विषदागे। मंत्र स्बीज सुनत जनु जागे॥

—मानस, अ० १८३

(च) तुलसी राम-वियोग विषम विष विकल नारि नर भारी।
भरत सनेह सुधा सींचे सब भये तेहि समय सुखारी॥

—गी० अयो० ६२

रामचरितमानस और श्रीकृष्णगीतावली

रामचरितमानस और श्रीकृष्णगीतावली के आलंबन एक नहीं हैं इसलिए रामचरितमानस और गीतावली जैसा चरणगत या शब्द साम्य दृष्टिगोचर नहीं होता फिर भी एक कवि की रचना होने के कारण प्रकरणगत साम्य दीख पड़ता है—

कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत अब कहु रामकृपाल॥

—मानस, बाल० २०४ दोहा

तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज रूप धारी,
बालकेलि लीलारस ब्रजजन हितकारी।

—श्रीकृष्णगीतावली, १

जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।
—मा० बा० २०४

नदनंदन मुख की सुन्दरता कहि न सकत स्रुति सेष उमावर।
तुलसिदास त्रैलोक्य विमोहन रूप कपटनर त्रिविध सूलहर॥
—श्रीकृष्ण० गी० २१

गीत कृतियों के प्रामाणिक पदों की संख्या

विनयपत्रिका

तुलसीदास के प्रामाणिक गीतात्मक पदों की संख्या कितनी है, यह आजतक निश्चित नहीं हो पाई है। विनयपत्रिका की प्राय सभी मुद्रित प्रतियों में २७९ पद हैं किन्तु कृष्णानन्द व्यास के रागकल्पद्रुम में कितने ऐसे पद हैं जो विनयपत्रिका के परिनिष्ठित माने जाने वाले संस्करण में नहीं हैं। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से तुलसी नाम से प्रसारित होने वाले, "रघुवर तुमको मेरी लाज" जैसे पद भी विनयपत्रिका में नहीं मिलते। अत भाषा और भावधारा को ध्यान में रखकर इन पदों की यदि परीक्षा की जाय तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विनयपत्रिका के पदों की संख्या कितनी है।

गीतावली के सात काडों के पदों की संख्या सरस्वती भण्डार, पटना नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तथा रामनारायणलाल, इलाहाबाद के संस्करणों में ३२८ है। किन्तु नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, की बैजनाथ की टीकावली, खगविलास प्रेस की महात्मा हरिहर प्रसाद कृत टीकावली तथा गीताप्रेस की सटीक प्रतियों में इन पदों की संख्या ३३० है। इन संस्करणों के बालकांड में जो १२ से लेकर १५ वें तक चार पद हैं, उनको एक माना गया है तथा ३७ वें पद को दो। सम्पूर्ण काव्य की दृष्टि से अन्तर न होते हुए भी संख्या की दृष्टि से यह अन्तर ठीक नहीं जँचता। गोस्वामी जी के जितने पद हैं उनके अन्त में निरपवाद रूप से "तुलसी" रहा करता है। पद के बीच बीच में "तुलसी" आया हो ऐसा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता और इसलिए उन चार पदों को एक कर देना और ३७ वें पद जिसके मध्य में तुलसी शब्द का प्रयोग नहीं है, अलग-अलग करना ठीक नहीं मालूम होता। इसके अतिरिक्त गीतावली के बहुत से ऐसे पद हैं जो सूरसागर में भी पाये जाते हैं।

गीतावली और सूरसागर

गीतावली के बालकांड का १९ वाँ पद "कनक रतनमय पालनो रच्यो मार सुतहार" सूरसागर के ६६० वें पद "कनक रतन मनि पालनो, गढ्यो काम सुतहार" वाले पद से, इसी कांड का २० वाँ पद "पालने रघुपति भुलावै" सूरसागर के ६६३ वें पद "पालने गोपाल भुलावै" पद से, इसी कांड का २३ वाँ पद "आँगन फिरत

घुटरुवनि धाए" सूरसागर के ७२७वाँ पद "आँगन खेलत घुटरुवनि धाए" पद से, इसी कांड का २४वाँ पद, "रघुवर बाल छवि कहौं वरनि" सूरसागर के ७२२ वें पद "हरि जू की बालछवि कहौं वरनि" पद से, इसी काड का २८ वाँ पद "आँगन खेलत आनन्द कन्द" सूरसागर के ७३५वें पद "आँगन खेलत नद के नद" वाले पद से, इसी काड का ३०वा पद "छोटी-छोटी गोडिया अँगुरिया छबीली छोटी' सूरसागर के ७६६वें पद "छोटी-छोटी गोडिया, अँगुरियो छबीली छोटी" पद से, इसी काड का ३६ वाँ पद "जागिए कृपानिधान जानराय रामचन्द्र" सूरसागर के ८२३ वें पद "जागिए गुपाललाल, आनन्द निधि नन्द बाल" से तथा इसी काड का ३८ वाँ पद "खेलिए चलिए आनन्द कन्द" सूरसागर के ८३६ वें पद 'खेलन चलो बाल गोविन्द" पद से मिल जाता है। इस प्रकार गीतावली के बालकाड के ८ पद (१६, २०, २३, २४, २८, ३०, ३६, ३८) सूरसागर के क्रमश ६६०, ६६३, ७७२, ७२७, ७२३५, ७६६, ८२३, ८३६ से मिल जाते हैं।

१. तुलसी का कनक रतनमय पालनो से प्रारम्भ होने वाला पद बहुत बडा है और उसमे प्रत्येक दो बडी पक्तियों के बाद एक छोटी पक्ति है। इन पक्तियो मे एक क्रम है क्योंकि जो दो बडी पक्तियो मे बात कही है उसका सार छोटी पक्तियो मे कहा गया है। गीतावली के पद का पाठ पृथक् है—और वे पक्तियाँ तुलसी की शैली की स्पष्ट रूप से अभिव्यजना करती हैं। सूरसागर मे इन पक्तियो मे जो शब्द दिए गए हैं उनसे पक्तियो की मात्रा बढ जाती है किन्तु तुलसी के यहाँ कोष्ठक मे कोई शब्द नही दिया गया है। अत यह सम्भव प्रतीत होता है कि यह पद तुलसी का ही है। किसी सूर के भक्त ने तुलसी की कुछ पक्तियो को लेकर एक नवीन पद सूरदास के नाम से तैयार कर उनके पदो मे मिला दिया है।

२ टेक सूरदास की है। सम्भव है यह टेक सूरसागर की ही हो जिसे तुलसी ने ग्रहण कर लिया हो और बिल्कुल नवीन पक्तियो की रचना की हो।

३ गीतावली के पद २३ से सूरसागर ७२२ की प्राय सभी पक्तियाँ कुछ शब्दों के हेर फेर के साथ मिलती हैं। दोनो ग्रथों की भाषा ब्रजभाषा ही है, दोनो ही भाव एक समान प्रतिभा की उपज हैं, विषय भी एक ही है इसलिए अर्थात् मे यह पद किसका है—यह निर्णय करना कठिन अवश्य है। यह तो सम्भव नहीं कि तुलसी जैसा समर्थ कवि किसी अन्य कवि की रचना को अपनी रचना बता दे और सूर तो तुलसी के पहले हो चुके हैं। इसलिए सूर के द्वारा इस पद का ग्रहण करना असम्भव है इसलिए यथार्थ मे पद किसका है इसके निर्णय के लिए कोई ठोस आधार नही मिलता, किन्तु यह पद तुलसी का ही है ऐसा प्रतीत होता है। कारण यह है कि तुलसी ने बालको के वर्णन मे उनके अग का सौंदर्य जितना अकित किया है उतना उनकी प्रकृति का सौंदर्य नही अकित किया है। इस पद मे भी बालको की प्रकृति का चित्रण नहीं है बल्कि बालक के शरीर सौंदर्य का चित्रण है।

४ यह पद भी उपर्युक्त कारणों से तुलसी की भावना का युक्तिसगत है।

५ इस पद में भी अन्तिम पक्तियाँ हैं—

सुमिरत सुषमा हिय हुलसी है। गावत प्रेमपुलकि तुलसी है॥

किसी के चोरी के पद को लेकर तुलसीदास प्रेम से पुलकित होकर नहीं गा सकते हैं इसीलिए यह पद तो स्पष्टतया तुलसीदास का है। जो सूर के भक्तो के द्वारा सूर के पदो मे मिला दिया गया है। सूर के भक्त ने पद में जो परिवतन किए हैं उससे उसका स्वरूप स्पष्ट रूप से कृत्रिम-सा दिखाई देता है। आनन्द कन्द के नन्द का नन्द और सानुजा को सग-सग तथा भरत लखन को बल मोहन कह देना सवथा कृत्रिम प्रतीत होता है। सूरसागर के पद की अन्तिम दो पक्तियाँ यो हैं—

ब्रज जन सिरखत हिय हुलसाने। सूर स्याम महिमा को जाने॥

किन्तु ये पक्तियाँ इस पद की समाप्ति मे वह सौंदर्य नहीं ला सकती जो तुलसी की अन्तिम दो पक्तियो मे है। अत यह पद अवश्य ही तुलसीदास का है।

६ इस पद के सम्बन्ध मे भी निश्चित निर्णय देना कठिन है किन्तु सम्भावना यही है कि यह तुलसी का ही है। कारण यह है कि इसमे भी केवल बालक के अगो के सौंदय का ही चित्रण है।

७ यह पद भी तुलसीदास कृत ही प्रतीत होता है क्योकि जिस प्रवाह का अस्तित्व गीतावली के पदो मे है सूरसागर की पक्तियो मे उसका अभाव दीख पडता है।

८ इस पद में भी इतना साम्य है कि निश्चित निर्णय देना कठिन है। किन्तु सम्भावना यही है कि यह तुलसीकृत ही पद है क्योकि उसमे दो पक्तियाँ और हैं जिनसे इसका तुलसी का पद होना प्रमाणित होता है। ये पक्तियाँ यो हैं—

श्रीकृष्णगीतावली और सूरसागर

यद्यपि श्रीकृष्णगीतावली की मुद्रित प्रतियो में ६१ ही पद हैं तथापि इसके साथ ही वही गडबडी है जो गीतावली के साथ। श्रीकृष्णगीतावली और सूरसागर के कई पद हू बहू मिल जाते हैं। तुलसी ग्रथावली के विद्वान सम्पादको ने लिखा है कि "इसमे बहुत से पद सूरसागर के हैं जैसे ३३, ३४, ४१, ४२, ४३, ४४।"[1] अगर ये पद सूरदास के हैं तब तो तुलसी ग्रथावली के सम्पादको को तुलसी ग्रथावली के दूसरे खड मे सकलित श्रीकृष्णगीतावली से इसे निकाल कर ही सम्पादित करना चाहिए था। लेकिन उन लोगों ने ऐसा नहीं किया।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अपने शोध प्रबन्ध "तुलसीदास" मे लिखा है कि "श्रीकृष्णगीतावली मे भी गीतावली की भाँति चार पद ऐसे मिलते हैं जो सूरसागर

१ तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खड, पृ० ८६

मे भी पाए जाते हैं।"[1] २४,४२, ४३, ४४, इस तरह कम से कम ७ पद (२४, ३३, ३४, ४१, ४२, ४३) श्रीकृष्णगीतावली मे प्रक्षिप्त हैं।

श्रीकृष्णगीतावली का ४४ वां पद नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर के ४२१८ वें पद से मिल जाता है। श्रीकृष्णगीतावली का ३३वाँ पद वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित सूरसागर के दशम स्कंध के भ्रमरगीत के ७५वें पद (६६३ पृष्ठ) से मिल जाता है। श्रीकृष्णगीतावली के २४ और ४१वें पद नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित भ्रमरगीत सार के प्रथम संस्करण क्रमश: ३३३वें और २८७वें पद से मिल जाते हैं। इस प्रकार सूरसागर के विभिन्न संस्करणों मे श्रीकृष्णगीतावली के ये पद मिल जाते हैं। श्रीकृष्णगीतावली के सम्बन्ध में अपना गीतावली से सम्बन्धित कथन दुहराना चाहता हू कि तुलसी के ग्रंथो से ही ये पद सूर सागर के विभिन्न संस्करणो मे मिला दिए गए हैं।

अत मेरी दृष्टि मे भी विनयपत्रिका के २७८ पद, श्रीकृष्णगीतावली के ३३० और श्रीकृष्णगीतावली के ६१ पद भी तुलसी के हैं।

गीतकाव्य का विभाजन

काव्य के भेद

काव्य का विभाजन कई प्रकार से किया जाता है।

(१) अभिनेयता अथवा अनभिनेयता की दृष्टि से—

(क) श्रव्यकाव्य — प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य

(ख) दृश्यकाव्य — रूपक, उपरूपक

(२) रचना की दृष्टि से—

(क) प्रबध काव्य, (ख) गीतकाव्य, (ग) मुक्तककाव्य।

(३) छन्दयुक्तता, छन्दमुक्तता तथा मिश्रण की दृष्टि से—

(क) पद्य, (ख) गद्य, (३) चम्पू।

(४) काव्योत्कर्ष की दृष्टि से—

(क) ध्वनिकाव्य, (ख) गुणीभूत व्यंग्यकाव्य, (ग) चित्रकाव्य।

(५) अंग्रेजी के आलोचको के अनुसार एक और प्रकार से भी काव्य का विभाजन किया जा सकता है।[2]

---

१. तुलसी ग्रन्थावली पृ० २२५

२ An Introduction to the Study of Literature
—William Henry Hudson Page 96
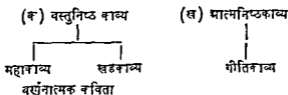
तुलसीदास के द्वादश प्रामाणिक ग्रन्थ निम्न कोटियो मे रखे जा सकते हैं—

(१) महाकाव्य —रामचरितमानस ।

(२) खडकाव्य —पार्वतीमगल, जानकी मगल ।

(३ अगेय मुक्तककाव्य —वैराग्य सदीपिनी, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली ।

(४) गीतकाव्य — विनयपत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली ।

काव्य का विभाजन कोई कठोर नियमानुशासित विभाजन नही है। एक ही विधा को हम कई प्रकार से किये गये विभाजन मे पा सकते हैं। तुलसीदास का रामचरितमानस प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत माना जाता है किन्तु वह सफलता से गीतकाव्य की तरह गाया भी जाता है और नाटक की तरह अभिनीत भी होता है। दोहावली, कवितावली आदि भी सुगमता से गायी जाती हैं। किन्तु पारिभाषिक रूप में गीतिकाव्य एक सक्षिप्त आत्मोद्गार है जो ताल-लय समन्वित रहा करता है। गीतकाव्य में सगीत और काव्य—दोनो का मणिकाचन योग घटित होता है। इस तुला पर तुलसी के तीन ग्रन्थ—विनयपत्रिका, गीतावली और श्रीकृष्ण-गीतावली—ही गीतकाव्य कहलाने के अधिकारी हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी लिखा है—

"तुलसी ने गीतावली, विनयपत्रिका और श्रीकृष्णगीतावली की रचना पदशैली में की है। इनके अन्तर्गत उन्होंने अपनी प्रगीतात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि की व्यक्तिगत वेदना की आशिक अभिव्यजना हनुमान बहुक मे अवश्य हुई है जो शैली की समानता के कारण कवितावली का ही अश मान ली गई है। इसी प्रकार गीतावली में भी इनके कुछ आत्मकथात्मक अश पाए गए हैं। दोहावली में कुछ दोहो मे गीतितत्व अवश्य पर्याप्त पाया जाता है किन्तु शैली और प्रकार के भेद के कारण उसे गीत की सज्ञा नहीं दी जा सकती। अतएव तुलसीदास के गीति-काव्य का विवेचन करने के लिये उपर्युक्त तीन ग्रन्थों का ही आधार ग्रहण करना उपयुक्त प्रतीत होता है।"[1]

गीतिकाव्य के भेद

जिस तरह काव्य के विभिन्न प्रकार से विभिन्न भेद-प्रभेद किये गये हैं उसी तरह गीतिकाव्य के भी विभिन्न आधारों से विभिन्न भेद किये गये हैं।

१ तुलसीदास डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३००-३०१

(क) नारमन हेपले ने गीतिकाव्य के पाँच भेद किये हैं—

(१) गीत, (२) चतुष्पदी, (३) सम्बोधि गीति, (४) ग्रामगीति, (५) शोकगीत।[१]

(ख) अरनेस्ट रीस ने अपने 'गीतिकाव्य" नामक पुस्तक में गीतिकाव्य के अन्य रूपों में वर्णनात्मक गीति (ballad) की भी चर्चा की है।[२]

(ग) गीतिकाव्य के अनेक भेदोपभेद किये गये हैं, गीत, भावगीति और उसके अनेक रूप जिनमें सम्बोध-गीति प्रमुख है, शोकगीति, वर्गगीति या समाजगीति, राष्ट्रीय आदि।[३]

(घ) इसके अतिरिक्त अन्य गीतिकाव्य के अन्य भेद भी दृष्टिगत होते हैं—स्तुतिगीत (hymns), प्रेमगीत (love lyric), उत्सवगीत (festival lyric Carnival poetry)।

(ङ) शिप्ले ने Epigram को भी गीतिकाव्य के अतर्गत माना है।

(च) डा० शिवमंगल सिंह सुमन ने अपने "गीतिकाव्य, उद्भव, विकास और भारतीय काव्य में इसी परम्परा' नामक शोध प्रबन्ध में गीतिकाव्य के तीन भेद किये हैं—

१ बाधित, २ आरोपित, ३ शुद्ध।

उनका कहना है कि "किसी भी कवि के प्रगीतकाव्य को परखने के लिये हमने उसे सुविधा की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया है—बाधित, आरोपित तथा शुद्ध।

बाधित के अतर्गत गीतों के उस स्वरूप को लिया गया है जिसमें संगीत और पदावली का सौन्दर्य गीत के अनुकूल होते हुए भी उसमें किसी अतर्भाव व्यंजक स्वरूप का अभाव है अथवा अति अलौकिकता के समावेश के कारण रस-परिपाक में बाधा पड जाती है। ऐसे गीत अधिकांश रूप-वर्णन आदि के अलंकार-बहुल स्वरूपों में पाए जाते हैं।

आरोपित के अतर्गत उन गीतों को लिया गया है जिनमें किसी मानसिक रति की तन्मयता पूर्ण आवेश में वर्णन है किन्तु वे कथा-प्रसंग के अंग होने के कारण स्वयं रचनाकार की अनुभूति की व्यंजना नहीं करते वरन् किसी माध्यम द्वारा व्यंजित किए जाते हैं। कौशल्या, यशोदा आदि के विलाप अथवा अन्य पात्रों की आत्मविह्वलता अभिव्यक्ति इसी श्रेणी के अन्दर ग्रहण की गई है।

१ Song lyric, sonnet ode, Idylb, Elegy
—Lyrical froms in English—Norman Happle

२ Ernest Rhys—Lyric Poetry

३ हिंदी साहित्य कोष, पृ० २६४

शुद्ध गीतिकाव्य की सज्ञा उन अतर्वादी उद्गारो को प्रदान की गई है जो स्वय रचनाकार की व्यक्तिगत विह्वलता की व्यजना करते हैं और जिनमे अलौकिक भाव-भूमि पर आकर पूर्णत सहृदय सवेद्य हो जाता है।"[1]

तुलसी की गीत कृतियो पर गौर किया जाय तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि तीनो मे दो प्रकार की धारा स्पष्ट है। गीतावली मे रामचरित के मार्मिक प्रसगो पर तथा श्रीकृष्णगीतावली में कृष्ण चरित्र के मार्मिक प्रसगो को गीतात्मक उद्गार के रूप मे अभिव्यक्त करता है। दूसरो की स्थिति में अपने को डालकर कवि उन भावो को ऐसा रूप दे देता है जैसे व्यक्तिगत रूप से अनुभूत ही सब कुछ है। कथात्मक प्रसगो के साथ गीतात्मक माधुरी और सरसता का काम साधारण कवि की क्षमता के अनुकूल नही। लेकिन विनयपत्रिका मे कवि दूसरे धरातल पर ही दीख पड़ता है। इसमे उसने अपने को स्पष्ट रूप से ईश्वर की ओर उन्मुख किया है और इसलिए एक-एक गीत मे पारलौकिक अध्यात्म चिंतन के दिव्यलोक का ही निदर्शन होता है। कवि अपने आराध्य के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देता है और अपनी सारी कमजोरियो का कच्चा चिट्ठा ही मानो खोलकर रख देना चाहता है। अगर उसी ने उसे अपना लिया तो फिर उसे और कुछ नहीं चाहिए। लेकिन ६३ पदो तक देवी-देवताओ की स्तुति स्तोत्रात्मक पद्धति पर की गई है। दूसरी बात यह कि भक्त्यात्मक गीतों का विवेचन विश्लेषण ही हमारा सप्रति लक्ष्य है। अत सामान्य गीतिकाव्य के भेदोपभेदो से इन भक्तिपरक गीतो का कोई सम्बन्ध नही।

इसलिए डा० सुमन के ऊपर कथित विभाजना को छोडकर हम तुलसी की गीत कृतियो के दो मुख्य विभाग करते हैं—

(१) कथा-प्रधान गीत।

(२) अध्यात्म-प्रधान गीत।

कथा-प्रधान गीतो के अतर्गत प्रधानतया गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली और अध्यात्म-प्रधान गीतों के अतर्गत प्रधानतया विनयपत्रिका के पद गृहीत होते हैं। अध्यात्म-प्रधान मे भी स्तोत्रात्मक गीत और विशुद्ध आध्यात्मिक गीतो जैसा विभाजन किया जा सकता है। इस प्रकार तुलसी के भक्त्यात्मक गीतो के तीन प्रकार हुए।

(१) कथाप्रधान भक्त्यात्मक गीत।

(२ स्तोत्रात्मक गीत।

(३) शुद्धआध्यात्मिक गीत।

इन तीन प्रकार के गीतों की अपनी एक सुदीर्घ परम्परा है जिसका सक्षिप्त परिचय पहले के दो अध्यायो में गया होगा। यहाँ हम अति सक्षेप मे इन तीनो के विकास क्रम पर थोडा प्रकाश डालना, अप्रासगिक नही मानते।

---

[1] हिंदी गीतिकाव्य उद्भव, विकास और भारतीय काव्य में इसकी परम्परा

—डा० शिवमगल सिंह सुमन, पृ० ३०८

कथाप्रधान गीतो की परम्परा

कथा प्रधान गीतो का आरम्भ भी वेदो से ही होता है और पुरुरवा-उर्वशी सवाद या ऋग्वेद के ही अन्य बहुत से स्थानो पर ऐसे गीत देखे जा सकते हैं। इसके पश्चात् आरण्यको, उपनिषदो मे कथाओ के माध्यम से गीत उपस्थित किए गए हैं। सस्कृत के गीत-ग्रन्थो मे मेघदूत, गीत गोविंद मे तो कथा है ही। विद्यापति और सूरदास के गीत भी कथा के बारीक धागो पर बुने गये हैं और इन्ही कथा प्रधान गीतो की परम्परा मे गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली के गीत आते हैं। राम और कृष्ण के जीवन की मधुरतम घटनाओ को कवि ने गीतो का रूप दिया है।

स्तोत्रात्मक गीतो की परम्परा

स्तोत्र भी गीत ही हैं—लेकिन इनमे नमस्तति और याचक वृत्ति का समन्वय रहता है। स्तोत्र और शुद्ध आध्यात्मिक गीतो मे अन्तर इतना है कि स्तोत्रो मे स्तुति की प्रधानता रहती है, उसमे आत्माभिव्यक्ति की ओर ध्यान अधिक रहता है। स्तोत्र मे भक्त अपने आराध्य का प्रशसात्मक वर्णन अधिक करता है, लेकिन शुद्ध आध्यात्मिक गीतो मे आत्ममथन करता हुआ वह ईश्वरीय प्रभुत्व के समक्ष अपने को अकिंचनाति अकिंचन समझता है।

स्तोत्रो का इतिहास उतना ही पुराना है जितना भारतीय सस्कृति और साहित्य का। भारतीय मनीषा की प्रथम उद्रेक स्थल-वेदो मे मगलमय विभु के प्रति ऋषियो के एक-से-एक सुन्दर उद्गार भरे पडे हैं। वेदो मे इतने स्तोत्र हैं कि उन स्तोत्रो पर एक स्वतन्त्र ग्रथ लिखा जा सकता है। उन प्रसिद्ध स्तोत्रो मे से उदाहरणार्थ रुद्राध्याय का एक स्तोत्र दिया जाता है—

मानस्तोके तनये मान आयुषिमानो
गोषुमानो इश्वेपुरीरिष
मानो वीरान् रुद्रभामिनोवधी
ईविष्मन्त सद्मित्वा इवाहहे
नमस्तेरुद्रमन्यवे उतोर हयवेनम।

अर्थात् हे रुद्र, आप हमारे पुत्र, पौत्र, आयु गोधन, अश्व तथा हमारे कुपित वीरो को मत मारें। सदैव हम आपके उद्देश्य से होम करते हैं। हे रुद्र हम आपके क्रोध तथा बाणो को नमस्कार करते हैं।[1]

वेदो के बाद आरण्यको और उपनिषदो मे भी स्तोत्रो का अभाव नही। आदि काव्य बाल्मीकि रामायण और महाभारत मे एक से एक सुन्दर श्लोक हैं। रामायण के इन स्तोत्रो मे ये प्रमुख हैं।[2]

---

१ यजुर्वेद

२ बाल्मीकि रामायण—१, १५, १०-२६ (विष्णु के प्रति देवताओ)
१, ३६, ६ ११ (देवताओ का शिव के प्रति)
७, ६, १-८ (देवताओ और ऋषियो का शिव के प्रति)

ब्रह्मा के द्वारा राम-स्तुति का थोड़ा-सा अंश इस प्रकार है—

त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परन्तप
प्रभवं निधनं वा ते न विदुः को भवानिति।
दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च
सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक्
त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम्
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः
त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान्
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती
देवा गात्रेषु रोमाणि निर्मिता ब्रह्मणः प्रभो
निमेषस्ते भवेद्रात्रिरुन्मेषस्ते भवेद्दिवा
संस्कारास्ते भवन् वेदा न तदस्ति त्वया विना
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षण।[1]

अर्थात् तुम्हीं तीनों लोकों के आदिकर्ता और स्वयं प्रभु हो। तुम्हीं सिद्धों और साध्यों के आश्रयदाता और पूर्वज हो।

तुम्हीं यज्ञ, तुम्हीं वषट्कार, तुम्हीं ओंकार और तुम्हीं उत्कृष्ट तप हो। तुम्हारी उत्पत्ति और लय का ज्ञान किसी को नहीं मालूम। यह भी कोई नहीं जानता कि आप हैं क्या?

तुम्हीं समस्त प्राणियों में, समस्त ब्राह्मणों में, समस्त गौओं में, समस्त दिशाओं में, आकाश में, पवनों में और वनों में दिखलाई देते हो।

तुम सहस्रचरण, तुम श्रीमान् शतशीर्ष, और सहस्रदृग् हो। तुम समस्त पर्वतों सहित इस पृथ्वी को तथा समस्त प्राणियों को धारण करने वाले हो।

पृथ्वी के विनाशकाल में जल में तुम शेषनागरूप धारण करते हो। हे राम! तुम देवता, गन्धर्व और दानवों सहित तीनों लोकों को धारण करने वाले हो।

हे राम! मैं तुम्हारा हृदय और सरस्वती देवी तुम्हारी जिह्वा है। हे प्रभो! मेरे रचे हुए समस्त देवता तुम्हारे शरीर के रोम हैं।

तुम्हारे पलक मारकाने से रात और पलक खोलने से दिन होता है। तुम्हारे संस्कार ही से संसार की प्रवृत्ति और निवृत्ति व्यवहार जताने वाले वेदों की उत्पत्ति

[1] वाल्मीकि रामायण ६।१२०।१३-२८

हुए हैं। अतः संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसमे अन्तर्यामी रूप से तुम वर्तमान न हो।

यह सारा जगत तुम्हारा शरीर है और पृथ्वी में समस्त प्राणियों को धारण करने की जो शक्ति है, वह शक्ति भी तुम्हारी ही है। हे श्रीवत्सलक्षण! अग्नि मे जो ताप है, वह तुम्हारा कोप है और चन्द्रमा मे जो शीतलता है वह तुम्हारी प्रसन्नता है।

महाभारत मे छोटे-बड़े अनेकानेक स्तोत्र हैं। दुर्गा स्तुति विराट् तथा भीष्मपर्व मे[1] कृष्ण स्तुति द्रोणपर्व मे, सौप्तिक पर्व तथा अनुशासन पर्व में[2] तथा शिवस्तुति सौप्तिक तथा अनुशासन पर्व मे[3] देखी जा सकती हैं।

इन स्तुतियो मे से एक स्तुति उदाहरण के लिए उपस्थित की जाती है। सौप्तिक पर्व मे अश्वत्थामा द्वारा शिव की स्तुति का यह अश है—

उग्रं स्थाणुं शिवं रुद्रं शर्वमीशानमीश्वरम्
गिरिशं वरदं देवं भवभावनमीश्वरम्
शितिकण्ठं भजं शुक्रं दक्षक्रतुहरं हरम्
विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम्
श्मशान वासिनं हप्तं महागणपतिं विभुम्
खट्वाङ्गधारिणं रुद्रं जटिलं ब्रह्मचारिणम्
मनसा सुविशुद्धेन दुष्करेणाल्पचेतसा
सो हमात्मोपहारेण यक्ष्ये त्रिपुर घातिनम्
स्तुतं स्तुत्यं स्तूयमानममोघं कृत्तिवाससम्
विलोहितं नीलकण्ठमसह्यं दुर्निवारणम्
शुक्रं ब्रह्मसृजं ब्रह्मचारिणमेव च
व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्ततपतां गतिम्
बहुरूपं गणाध्यक्षं पारिषद प्रियम्
हिरण्यकवच देवं चन्द्रमौलि विभूषणम्
प्रपद्ये शरणं देवं परमेण समाधिना।

अर्थात्—प्रभो आप उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, ईशान, ईश्वर और गिरीश आदि नामो से प्रसिद्ध वरदायक तथा सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर हैं। आपके कण्ठ में नील चिन्ह है। आप अजन्मा एवं शुद्धात्मा हैं। आप ही सहारकारी हर, विश्वरूप भयानक नेत्रों वाले, अनेक रूपधारी तथा उमादेवी के प्राणनाथ हैं। आप श्मशान में निवास करते हैं। आपको अपनी शक्ति पर गर्व है। आप अपने

---

1 १८७३-२४६६ पृ०, गोरखप्रेस

2. २७०८, २८१५, ३६६६, ४५२६, ५३३२, ४६१४ पृ०

3 ४३३८, ५५१३ पृ०

गुणो के अधिपति, सर्वव्यापी तथा खट्वाङ्गधारी हैं, उपासको का दुःख दूर करने वाले रुद्र हैं मस्तक पर जटा धारण करने वाले ब्रह्मचारी हैं। आपने त्रिपुरासुर का विनाश किया है। मैं विशुद्ध हृदय से अपने आपकी बलि देकर, जो मन्दगति मानवो के लिए अति दुष्कर है, यजन करूँगा। पूर्वकाल मे आपकी स्तुति की गई है, भविष्य मे भी आपकी स्तुति की जाती रहेगी और वर्तमान काल मे भी आपकी स्तुति की जाती है। आपका कोई भी सकल्प या प्रयत्न व्यर्थ नही होता। आप व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करते हैं लोहित वर्ण और नीलकण्ठ हैं। आपके वेग को सहन करना असम्भव है और आपको रोकना सर्वथा कठिन है। आप शुद्धस्वरूप ब्रह्म है। आपने ही ब्रह्मा की सृष्टि की है। आप ब्रह्मचारी, व्रतधारी और तपोनिष्ठ हैं। आपका कही अन्त नही है। आप तपस्वी जनो के आश्रय, बहुत से रूप धारण करने वाले तथा गणपति हैं। आपके तीन नेत्र हैं। अपने पार्षदो को आप बहुत प्रिय हैं। आपके अगो मे सुवर्णमय कवच शोभा पाता है। आपका स्वरूप दिव्य है तथा आप चन्द्रमय मुकुट से विभूषित होते हैं। मैं अपने चित्तको पूर्णत एकाग्र करके आप परमेश्वर की शरण मे आता हूँ।

महाभारत के पश्चात् पुराणो पर विचार करें। ये पुराण भक्ति विह्वल महर्षियो द्वारा लिखे गये हैं इसलिए इनमे स्तुतियो की प्रचुरता है। मार्कण्डेय पुराण मे सम्पूर्ण दुर्गासप्तशती स्तोत्र ही हैं। विष्णु पुराण मे भी अनेकानेक स्तोत्र हैं। भागवत पुराण तो स्तोत्रो की रत्न मजूषा ही है। इन स्तोत्रो मे गर्भ स्तुति, ब्रह्मस्तुति और वेदस्तुति सर्वाधिक प्रसिद्ध है। भागवत् के तृतीय स्कन्ध की ब्रह्म स्तुति का कुछ अश इस प्रकार है—

> स्वतत्त्वरूप महसेन निर्धौतभेद
> मोहाय बोधधिषणाय नम परस्मै।
> विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्त लीला
> रासाय ते नम इद चकमेश्वराय।
> यो वा अह च गिरिशश्च विभु स्वयच
> स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलकम्।
> भित्वा त्रिपाद्ववृध एक उरु प्ररोह
> स्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय।

अर्थात् आप सर्वदा अपने स्वरूप के प्रकाश से ही प्राणियो के भेद स्वरूप अधकार का नाश करते रहते हैं तथा ज्ञान के अधिष्ठान साक्षात् परम पुरुष हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। ससार की उत्पत्ति, स्थिति और सहार के निमित्त से जो माया की लीला होती है, वह आपका ही खेल है, अत आप परमेश्वर को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

भगवन् ! इस विश्ववृक्ष के रूप मे आप ही विराजमान हैं। आप ही अपनी मूल प्रकृति को स्वीकार करके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए मेरे अपने और महादेव जी के रूप मे तीन प्रधान शाखाओ मे विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एव मनु आदि शाखा-प्रशाखाओ के रूप मे फैलकर बहुत विस्तृत हो गए हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।[1]

अध्यात्म रामायण के युद्धकाड के त्रयोदश सर्ग मे देवताओ ने भगवान् राम की स्तुति की है जो अति उत्तम है।[2]

कर्ता त्व सर्वलोकाना साक्षी विज्ञानविग्रह ।
वसूनामष्टमोसि त्व रुद्राणा शकरो भवान् ॥
आदिकर्तासि लोकाना ब्रह्मा त्व चतुरानन ।
अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्र भास्करौ ॥
लोकानामादिरन्तो सि नित्य एक सदोदित ।
सदा शुद्ध सदा बुद्ध सदा मुक्तो गुणोद्वय ॥
त्वन्मयासवृताना त्व भासि मानुषविग्रह ।
त्वन्नाम स्मरता राम सदा भासि चिदात्मक ॥
रावणेन हृत स्थानमस्माक तेजसा सह ।
त्वयाद्य निहतो दुष्ट पुन प्राप्त पद स्वकम् ॥
एव स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात्पितामह ।
अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा राम सत्यपथे स्थितम् ॥

ब्रह्मोवाच

वन्दे देव विष्णुमशेषस्थितिहेतु
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीन परमेक
सत्तामात्र सर्वहृदिस्थ स्वं दृशिरूपम् ॥
प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्वा सर्वं सशयबन्ध विषयौघान् ।
पश्यन्तीश य गतमोहा यतयस्त
वन्दे राम रत्नकिरीट रविभासम् ॥
मायातीत माधवमाद्यं जगदादि
मानातीत मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रंजितलोक रमणियम् ॥

---

१ स्कंध ३, अध्याय ६, प्रथम मता, गीताप्रेस, पृ० २३८

२ गीताप्रेस, पृ० ३१७

भावाभावप्रत्ययहीन भयमुख्यं
योगासक्तं र्चितपादाम्बुजयुग्मम् ॥
नित्य शुद्ध बुद्धमनन्त प्रणवाख्य
वन्दे राम वीरमशेषासुरदावम् ॥
त्व मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपो खिलधारी।
भक्त्यां गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेत सहचारी ॥
त्वामाद्यन्त लोकततीनां परमीश
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम्।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतं भंजनीय
वन्दे राम सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥
को वा ज्ञात् त्वामतिमान गतमान
मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम्।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्द
वन्दे राम भवमुखवन्द्य सुखकन्दम् ॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बं प्रतिपाद्य
नित्यानन्द निर्विषयज्ञानमनादिम्।
मत्सेवार्थं मानुषभाव प्रतिपन्न
वन्दे राम मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥
श्रद्धायुक्तो य पठतीम स्तवमाद्य
ब्राह्म ब्रह्मज्ञानविधान भुवि मत्य।
राम श्याम कामितकामप्रदमीश
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगत स्यात् ॥

पौराणिक काल से नीचे उतरने पर आगमकाल में शैव और शाक्त स्तोत्र विशेष उल्लेखनीय हैं शाक्त स्तोत्रों में कर्पूर स्तोत्र तथा शैव स्तोत्रों में पुष्पदंत विरचित महिम्न स्तोत्र अति प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त जैन स्तोत्रों में वाजिराव का एकीभाव स्तोत्र, जम्बुगुरु का जिनशतक, सोम प्रभाचार्य की सूक्ति मुक्तावलि, हेमचंद्र का अन्ययोग व्यवच्छेद द्वेपिका स्तोत्र मुख्य हैं तथा बौद्ध सम्प्रदाय के स्तोत्रों में नागार्जुन के "निरौपम्यस्तव" और "अचिन्त्यस्तव" विख्यात हैं।

शुद्ध साहित्यिक स्तोत्रों में ६वीं शताब्दी में काश्मीर के उत्पलदेव और उसके पश्चात् जगद्धर भट्ट के स्तोत्र आते हैं वैसे तो शंकराचार्य के स्तोत्रों में आध्यात्मिकता कम नहीं लेकिन इन स्तोत्रों में आदि शंकराचार्य के स्तोत्र कौन हैं, कहा नहीं जा

सकता। इसीलिए किसी भी शकराचार्य के स्तोत्र की चर्चा का तुलसी के ऊपर प्रभाव दिखलाना या परम्परा मे गृहीत करना उचित नही जचता।

स्तोत्रो की परम्परा मे जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमाजलि सर्वाधिक सरस और काव्य गुण मडित है। ये भगवान् शकर के अनन्य उपासक थे। ३९ स्तोत्रो के २४०० श्लोको मे भक्तिपूरित हृदय से कवि ने शकर भगवान् की स्तुति की है। इसमे स्तुति की बहिर्गतता कम है, कवि का अनुभूति गाभीर्य ही अधिक है। इसके बारे मे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "कुछ विद्वानो का विचार है कि महिम्न स्तोत्र से बढकर कोई स्तोत्र नही। स्तोत्र रत्नाकर आदि मे प्रकाशित अन्य कितने ही स्तोत्रो के सुन्दर भावो और सरस उक्तियो पर कुछ लोग मुग्ध हो जाते हैं। शकराचार्य की सौंदर्य-लहरी और जगन्नाथ की गगा लहरी की भी प्रशसा अनेक रसिको के मुख से सुनी जाती है। परन्तु हमारी सम्मति तो यह है कि स्तुति साहित्य मे इस कुसुमाजलि से बढकर कोई ग्रथ नही। इसमे जगद्धर ने अपनी कवित्व शक्ति की पराकाष्ठा दिखा दी है। उसकी कविता इतनी सरस है, उसके स्तवनो के अधिकाश भाव इतने कारुणिक हैं और उसने अपने आत्मनिवेदन को ऐसे प्रभावोत्पादक और हृदय-द्रावक ढग से किया है कि पढते-पढते हृदय पसीज उठता है, आँखो मे अश्रुधारा बह निकलती है और मन बे-तरह विकल हो उठता है। उसकी नई-नई उक्तियाँ उसके विचित्र विचित्र उपालम्भ, उसके करुणा-क्रन्दन के अनूठे-अनूठे ढग पढ़ने वाले के हृदय पर बहुत ही आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।"[1]

वास्तव मे यह पुस्तक स्तोत्रो की परम्परा की सुमेरुमणि है। इसी के पश्चात् तुलसीदास की विनयपत्रिका के स्तोत्रो की रचना होती है। अब यह विचार करना है कि तुलसीदास के स्तोत्रो पर वेदो, महाभारत,बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, शैव-स्तोत्रो, पौराणिक स्तोत्रो का प्रभाव किस मात्रा मे पडा है अथवा नही।

विनयपत्रिका के स्तोत्रो पर विचार करते हुए विद्वानो ने इन प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख न कर जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमाजलि के प्रभाव का उल्लेख किया है। डा० सरनामसिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध "हिन्दी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव" मे लिखा है—

"सम्भवत विनयपत्रिका के लिखने की प्रेरणा गोस्वामी तुलसीदास जी को जगद्धर भट्ट की "स्तुति कुसुमाँजलि" से मिली है। दोनों ग्रथो का तुलनात्मक अध्ययन इस उक्ति का बहुत समर्थन करता है। इस सत्य की बहुश सस्थिति शैली के अनुकरण में है। भट्ट जी के कुछ भावो को भी गोस्वामी जी ने अपना लिया है। सेवाभिनन्दन, शरणाश्रयण, कृपण क्रदन, करुणा, क्रदन, दीना क्रदन, तम शयन, प्रभु प्रसादन, करुणाराधन, उपदेशन, सिद्धि और भगवद् वर्णन के स्तोत्रो से विनय

१ साहित्य सदर्भ, पृ० १३२-१३३

भावाभावप्रत्ययहीन भवमुख्यं
　　　　योगासक्तै र्चितपादाम्बुजयुग्मम् ॥
नित्य शुद्ध बुद्धमनन्त प्रणवाख्य
　　　　वन्दे राम वीरमशेषासुरदावम् ॥
त्व मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
　　　　मानातीतो माधवरूपो खिलधारी।
भक्त्यां गम्यो भावितरूपो भवहारी
　　　　योगाभ्यासैर्भावितचेत सहचारी ॥
त्वामाद्यन्त लोकततीनां परमीशं
　　　　लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम्।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैं भंजनीय
　　　　वन्दे राम सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥
को वा ज्ञात् त्वामतिमान गतमान
　　　　मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम्।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
　　　　वन्दे राम भवमुखवन्द्य सुखकन्दम् ॥
नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बै प्रतिपाद्य
　　　　नित्यानन्द निर्विषयज्ञानमनादिम्।
मत्सेवार्थ मानुषभाव प्रतिपन्न
　　　　वन्दे राम मरकतवर्ण मथुरेशम् ॥
श्रद्धायुक्तो य पठतीम स्तवमाद्य
　　　　ब्राह्म ब्रह्मज्ञानविधान भुवि मर्त्य ।
राम श्याम कामितकामप्रदमीश
　　　　ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगत स्यात् ॥

पौराणिक काल से नीचे उतरने पर आगमकाल मे शैव और शाक्त स्तोत्र विशेष उल्लेखनीय हैं शाक्त स्तोत्रो मे कर्पूर स्तोत्र तथा शैव स्तोत्रो में पुष्पदत विरचित महिम्न स्तोत्र अति प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त जैन स्तोत्रो में वाजिराव का एकीभाव स्तोत्र, जम्बुगुरु का जिनशतक, सोम प्रभाचार्य की सूक्ति मुक्तावलि, हेमचद्र का अन्ययोग व्यवयव छेदिका स्तोत्र मुख्य हैं तथा बौद्ध सम्प्रदाय के स्तोत्रो मे नागार्जुन के "निरौपम्यस्तव" और "अचिन्त्यस्तव" विख्यात हैं।

शुद्ध साहित्यिक स्तोत्रो मे ६वी शताब्दी मे काश्मीर के उत्पलदेव और उसके पश्चात् जगद्धर भट्ट के स्तोत्र आते हैं वैसे तो शकराचार्य के स्तोत्रो में काव्यात्मकता कम नहीं लेकिन इन स्तोत्रों मे आदि शकराचार्य के स्तोत्र कौन हैं, कहा नही जा

सकता। इसीलिए किसी भी शंकराचार्य के स्तोत्र की चर्चा का तुलसी के ऊपर प्रभाव दिखलाना या परम्परा में गृहीत करना उचित नहीं जचता।

स्तोत्रो की परम्परा में जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि सर्वाधिक सरस और काव्य गुण मंडित है। ये भगवान् शंकर के अनन्य उपासक थे। ३६ स्तोत्रो के २४०० श्लोको में भक्तिपूरित हृदय से कवि ने शंकर भगवान् की स्तुति की है। इसमें स्तुति की बहिर्गतता कम है, कवि का अनुभूति गाम्भीर्य ही अधिक है। इसके बारे में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "कुछ विद्वानो का विचार है कि महिम्न स्तोत्र से बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं। स्तोत्र रत्नाकर आदि में प्रकाशित अन्य कितने ही स्तोत्रो के सुन्दर भावो और सरस उक्तियो पर कुछ लोग मुग्ध हो जाते हैं। शंकराचार्य की सौंदर्य-लहरी और जगन्नाथ की गंगा लहरी की भी प्रशंसा अनेक रसिकों के मुख से सुनी जाती है। परन्तु हमारी सम्मति तो यह है कि स्तुति साहित्य में इस कुसुमांजलि से बढ़कर कोई ग्रंथ नहीं। इसमें जगद्धर ने अपनी कवित्व शक्ति की पराकाष्ठा दिखा दी है। उसकी कविता इतनी सरस है, उसके स्तवनो के अधिकांश भाव इतने कारुणिक हैं और उसने अपने आत्मनिवेदन को ऐसे प्रभावोत्पादक और हृदय-द्रावक ढंग से किया है कि पढ़ते-पढ़ते हृदय पसीज उठता है, आंखो में अश्रुधारा बह निकलती है और मन बे-तरह विकल हो उठता है। उसकी नई-नई उक्तियाँ उसके विचित्र विचित्र उपालम्भ, उसके करुणा-क्रन्दन के अनूठे-अनूठे ढंग पढ़ने वाले के हृदय पर बहुत ही आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।"[1]

वास्तव में यह पुस्तक स्तोत्रो की परम्परा की सुमेरमणि है। इसी के पश्चात् तुलसीदास की विनयपत्रिका के स्तोत्रो की रचना होती है। अब यह विचार करना है कि तुलसीदास के स्तोत्रो पर वेदो, महाभारत,वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, शैव-स्तोत्रों, पौराणिक स्तोत्रो का प्रभाव किस मात्रा में पड़ा है अथवा नहीं।

विनयपत्रिका के स्तोत्रो पर विचार करते हुए विद्वानो ने इन प्राचीन ग्रन्थो का उल्लेख न कर जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि के प्रभाव का उल्लेख किया है। डा० सरनामसिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध "हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव" में लिखा है—

"सम्भवतः विनयपत्रिका के लिखने की प्रेरणा गोस्वामी तुलसीदास जी को जगद्धर भट्ट की "स्तुति कुसुमांजलि" से मिली है। दोनो ग्रंथो का तुलनात्मक अध्ययन इस उक्ति का बहुत समर्थन करता है। इस सत्य की बहुश: मस्थिति शैली के अनुकरण में है। भट्ट जी के कुछ भावों को भी गोस्वामी जी ने अपना लिया है। सेवाभिनन्दन, शरणाश्रयण, कृपण क्रंदन, करुणा, क्रंदन, दीना क्रंदन, तम: शमन, प्रभु प्रसादन, करुणाराधन, उपदेशन, सिद्धि और भगवद् वर्णन के स्तोत्रो से विनय

---

१. साहित्य सदर्भ, पृ० १३२-१३३

पत्रिका के अनेक छन्दों के भाव मिल जाते हैं, परन्तु विनयक्रम और व्यक्तिकरण के अतिरिक्त तुलसी की अनेक उद्भावनाओं में मौलिक सौंदर्य है।'[1]

किशोरीदास बाजपेयी ने भी अनुमानत लिखा है—"काशी मे रहते हुए ही उन्होंने श्री जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि पढी यह निश्चय है।' "स्तुति कुसुमांजलि" के कर्त्ता कश्मीरी ब्राह्मण थे। यह "स्तुति कुसुमांजलि" भगवान् शंकर-विषयक बहुत ऊँचे दर्जे का काव्य है। ऐसा काव्य जिसकी तुलना में "किरातार्जुनीयम्" और "शिशुपालवध" आदि महाकाव्य हीन लगने लगते हैं। भगवान् शंकर की अनन्य उपासना है। तुलसी से डेढ सौ वर्ष पहले जगद्धर भट्ट हुए हैं। इतने दिन में काशी जैसे शैव गढ मे "स्तुति कुसुमांजलि" का पहुचना और प्रतिष्ठित हो जाना बहुत समीचीन है। इस शिव-काव्य का प्रभाव तुलसी पर पड़ा। 'स्तुति कुसुमांजलि" के प्रारम्भ मे कवि और काव्य के बारे में जो कुछ कहा गया है, "रामचरितमानस" के प्रारम्भ मे भी वही सब है। "स्तुति कुसुमांजलि" का उपसंहार जिस तरह पार्वती और गणेश आदि से प्रार्थना करते हुए है कि "मेरी यह कुसुमांजलि" नाथ के चरणों तक आप पहुचा दें, ठीक उसी तरह तुलसी ने सीता, हनुमान, भरत लक्ष्मण आदि से प्रार्थना की है कि आप मेरी यह "विनयपत्रिका" (प्रार्थना-पत्र) महाराज के पास उचित अवसर देखकर और अपनी सिफारिश के साथ पहुचा दें—

"कबहुक अम्ब अवसर पाइ ·

इतना साम्य यों ही न आएगा। तुलसी पर अब तक कितने-कितने बड़े पोथे निकल चुके हैं। परन्तु उनकी शिव भक्ति की प्रेरणा कहाँ से वैसी मिली और उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति की प्रेरणा कहाँ से मिली यानी तुलसी का मूल प्रेरक शक्ति की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। इसमें सन्देह नहीं कि तुलसीदास साहित्यिक प्रवृत्ति में जगद्धर भट्ट के "एकलव्य" हैं। इस विषय पर अध्ययन अपेक्षित है।[2]

अभी हमने देखा कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "स्तुति कुसुमांजलि" के काव्य सौंदर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा डा० सत्यार्मसिंह तथा पंडित किशोरी दास बाजपेयी ने यह रहस्योद्घाटित किया है कि तुलसीदास को विनयपत्रिका लिखने की परम्परा जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि से ही मिली थी। जगद्धर भट्ट ने अपने स्तुति कुसुमों की अंजलि अपने आराध्य शिव को समर्पित की है तथा तुलसी दास विनयपत्रिका की पत्रिका अपने प्रभु राम को भेज रहे हैं। दोनों रचनाओं का विषय एक है। आत्मनिवेदन यह नहीं हुये। इसलिए समानता स्वाभाविक है। बस रही प्रेरणा और प्रभाव की उसकी मात्रा मे जो विवाद हो।

---

१ हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव डा० सत्यार्मसिंह, पृ० ८४
प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ० ४, ६, ९ अगस्त, १९५९

नवितनया

स्तोत्रों की परम्परा मे तुलसीदास की विनयपत्रिका के स्तोत्रों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। कहीं-कहीं भाषा बड़ी क्लिष्ट हो गई है। जहा सस्कृतनो को भी कठिनाई मालूम पड सकती है जैसे यह स्तोत्र देखें। एक ओर यदि इन स्तोत्रों में तुलसी के भिन्न देवी-देवता विषयक प्रेम की स्पष्ट झाकी मिलती है तो दूसरी ओर उनके प्रभु का उदात्त महिमावान रूप हमारी आंखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

दनुजवनदहन गुनगहन गोविंद नदादि आनददाता विनासी।
सभु शिव रुद्र सकर भयकर भीम घोर तेजायतन क्रोधरासी॥
अनत भगवत जगदत अतकत्रासशमन श्रीरमन भुवनाभिराम।
भूधराधीशजगदीश ईसान विज्ञानघन ज्ञानकल्यान धाम॥

वामनाव्यक्त पावन परावर विभो प्रगट परमातमा प्रकृतिस्वामी।
चद्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेसगामी॥

नीलजलदाभतनु स्याम बहु काम छवि राम राजीवलोचन कृपाला।
कबुकर्पूर्रवपधवल निर्मल मौलि जटा सुरतटिनि सितसुमनमाला॥
वसनकिजल्कधर चक्रसारगदरकजकौमोदकी अति विसाला।
मार करिमत्तमृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरनससारज्वाला॥

कृष्णकरुनाभवन दवनकालीयखल विपुलकसादि निर्वंसकारी।
त्रिपुरमदभगकर मत्तगजचर्मधर अघकोरगग्रसन पन्नगारी॥

ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर परमहित ज्ञानगोतीतगुनवृत्ति हर्त्ता।
सिधुसुतपर्वगिरिवज गौरीस भव दक्षमखअखिल विध्वसकर्त्ता॥

भक्तिप्रिय भक्तजनकामधुकधेनु हरि हरन दुर्घटविकट विपतिभारी।
सुखदनर्मदवरदविरजअनवद्य खिलविपिनआनंदवीथिनविहारी॥

रुचिर हरिसकरी नामम त्रावली द्वंदुखहरनि आनदखानी।
विष्नुसिवलोकसोपानसमसर्वदा वदतितुलसीदासविसदबानी॥

शुद्ध आध्यात्मिक गीतों की परम्परा

द्वितीय अध्याय मे हम भक्त्यात्मक गीतों की परम्परा प्रदर्शित कर आये हैं। यहाँ विशुद्ध आध्यात्मिक पदों के विकास की सक्षिप्त चर्चा कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। विशुद्ध आध्यात्मिक गीतों का विकास ऋग्वेद से ही होता है। यों तो अनेक सूक्तों में कुछ न कुछ अश विशुद्ध आध्यात्मिक हैं किन्तु कुछ सूक्त ऐसे हैं जो आध्यात्मिकता से सराबोर भरे हैं। उनमें कथा और स्तोत्र गौण बन जाते हैं। गम्भीर आध्यात्मिक एव दार्शनिक चिंतन ही उनका प्रधान विषय बन जाता है। ऋग्वेद के ऐसे सूक्तों में पुरुष सूक्त (दशम मडल सूक्त स० ९०) तथा नासदीय सूक्त (१०/१२९) सर्वश्रेष्ठ हैं। वैदिक धर्म की परम्परा में ऐसे गीत उपनिषदों में तथा

गीता का ग्यारहवा अध्याय आध्यात्मिकता इस प्रकार के अधिकाश पद है।[1]
का मे ऐसे पदो की प्रधानता है इसलिए उनका उन्नायक है। तुलसी का महत्त्व इसी बात मे है कि जगत् के आदर्श इस ढग से उपस्थित करते है कि स प्रादुर्भूत हो जाता है।

विनयपत्रिका की कथावस्तु

विन... की पत्रशैली मे लिखित गीतात्मक प्रबन्ध काव्य मानें तो अनुचित-सगत नही होगा। इसका बाह्य-विधान मुगल-दरबार मे प्रचलित आवेदनपत्र का है तो आन्तरिक पक्ष भक्तो मे अनुभूति बोझिल दैन्य-विगलित उद्गारो से स्नात है। किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए राज्य सभा के कर्मचारियो, पुन उस दरबार के मुख्य सदस्य अर्थात् भाइयो, रानी या बेगम साहिबा को साधकर तब आवेदन पत्र दिया जाता था। बादशाह-नवाब या राजा अपने सबल सभासदो से उन सब से उस विषय पर राय पूछते थे और जब सब एक स्वर से अनुमति दे देते थे तब उस पर राजा का हस्ताक्षर हो जाता था तथा उस पर मुहर दे दी जाती थी। इस आवेदन पत्र के दो खड होते थे। प्रथम खड मे राजा की प्रशस्ति, उसके पराक्रम एव यश का विशद वर्णन कर, दूसरे खण्ड मे आवेदन पत्र देनेवाला अपनी विपत्ति, दुर्दैन्य तथा उससे निवारण के लिए प्रभु की एकमात्र समर्थता का वर्णन कर, उसकी स्वीकृति के लिए अनुनय करता था। तुलसी की विनयपत्रिका की ठीक यही पद्धति है। उनका एक मात्र लक्ष्य है प्रभु उनके दोषो का ख्याल न करके उसे शरण मे ले लेने की जो अर्जी दी है उस पर हस्ताक्षर कर दें। इसलिए अगर ठिकाने से देखा जाता है तो विनयपत्रिका मे कथा का एक सूक्ष्म भावात्मक सूत्र स्थापित हो जाता है।

पत्र लिखने की प्राचीन भारतीय पद्धति है कि पहले श्रीगणेशायनम लिखकर पत्र का आरम्भ किया जाय। श्रीगणेश करना का अर्थ आरम्भ करना इसी तथ्य की ओर इगित करता है।

तुलसी ने भी अपने २७९ पदों वाली विनयपत्रिका का श्रीगणेश स्तुति से किया है। वे कहते हैं—

गाइये गनपति जगवदन। शकर सुवन भवानीनंदन॥
सिद्धिसदन गजवदन विनायक। कृपासिंधु सुदर सब लायक॥
मोदक प्रिय मुद मगल-दाता। विद्या बारिधि बुद्धि-विधाता॥

और उनसे करबद्ध प्रार्थना बस एक कार्य के लिए कर रहे हैं कि "रामसिय उनके मानस मे सदा निवास करें। इसके पश्चात् सूर्य देव, प्रभु के अनन्य उपासक

1. पद १११, ११२, १२४, १३५, १३६ इत्यादि

शिव, उनकी सहारिणी शक्ति देवी, प्रभु के नखविन्दु से निःसृत गंगा, रवितनया यमुना शिव के त्रिशूल पर बसी मुक्तिदायिनी काशी, प्रभु के पादारविंद से सुवासित अतिपूत चित्रकूट, प्रभु के अनन्य सेवक हनूमान, प्रभु के प्रिय अनुज लक्ष्मण, उनके अन्य दो भाई भरत और शत्रुघ्न और प्रभु की आदिशक्ति जगत्जननी महारानी सीता की स्तुतियाँ की जाती हैं। ये सब के सब राम दरबार से पूर्णतया सम्बन्धित हैं अत इनकी स्तुति अत्यावश्यक है। अगर पहले पहले वे प्रभु की वन्दना आरम्भ करते, प्रभु अगर खुश भी हो जाते किन्तु ये सब के सब तुलसी के विरोध मे कहते तो उनका आवेदन निष्फल हो जाता। इसलिए बडी चातुरी और सोच-समझ से भक्त तुलसीदास ने इन सब की स्तुतिया की। लेकिन सब से एक ही याचना है उन्हे राम-भक्ति मिल जाय। सूर्यदेव से भी "रामभगति धर मागे"[1] शिव से "देहु काम रिपुरामचरन रति"[2], गंगा से—

"तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुवसवीर
बिचरत, मति देहि, मोह महिषकालिका।"[3]

चित्रकूट से—

"तुलसी जो राम पद चहिए प्रेम।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम॥"[4]

हनूमान से—

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे।
तह तुलसी के कौन को काको तकिया रे॥

सब से राममक्ति की ही याचना है। तुलसीदास इस कला के भी पंडित हैं कि मालिक से और किस-किस तरह काम लिया जाता है। अगर प्रभु की पत्नी को प्रसन्न कर लिया जाय तो काम बिगडने को नहो। लेकिन अगर श्रीमती जी ने अपने पति की मन स्थिति का विचार न कर झुँझलाहट की स्थिति में कुछ सिफारिश की तो काम बनने की अपेक्षा बिगड ही जायगा। इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं—

कबहुक अब, अवसर पाइ,
मेरिऔ सुधि द्यावी कछु करुण-कथा चलाई।[5]

इसके बाद ४३ वें पद मे राम की स्तुति का आरम्भ है। ४४वें पद में पत्रिका का मूल स्वरूप सुरक्षित है।

---

१ विनयपत्रिका, २
२ वही, ३
३ वही, १७
४ वही, २३
५ वही, ४१

जयति वैराग्यविज्ञानवारानिधे,
नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता।
दास तुलसी चरण शरण संशय हरण
देहि अवलंब वैदेहिभर्त्ता ॥

इसके पश्चात् गोस्वामी जी ने फिर प्रभु की स्तुति की। कहीं ऐसा वे न समझें कि स्वार्थ की बात कहकर फिर मौन हो गया या अपनी बातें ही कहता चला जा रहा है। इसी उद्देश्य से ४५ से लेकर ६३ वें पद तक उनके विभिन्न रूपों, उनके ऐश्वर्य-विभव की प्रशस्ति गाई गई है। उस प्रभु की जब अनुकम्पा नहीं होती तब तक भव-त्रास मिट सकता है, न अनपायिनी भक्ति उपलब्ध हो सकती है।

६४वें पद से २७६वें पद यानी २०१ पदों में तुलसी ने आत्म-कैंकर्य, अपनी असहायता, अपनी फरियाद प्रभु के समक्ष उपस्थित की है और वही आवेदन-पत्र देने वाले की वास्तविक स्थिति के परिचायक पद हैं। इन पदों में तुलसीदास ने अपने हृदय का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। इन पक्षों का साराश इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है।

विनयपत्रिका में कवि आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उत्कंठित दीखता है। लेकिन जीवात्मा पर जबतक माया का आवरण पड़ा है तब तक आत्मज्ञान सम्भव नहीं है। इस माया से मुक्ति प्रभुकृपा के बिना सम्भव नहीं। इसलिए ६४ वें पद में कवि कहता है कि आपकी वन्दना इसलिए करता हूं कि भेदज्ञान से छुटकारा मिल जाय। आप मोहरूपी तम के नाश के लिए सूर्य के सदृश हैं तथा अज्ञान रूपी वन को अनल की तरह भस्म कर सकते हैं। अभिमान रूपी सिंधु को सोखने के लिए आप अगस्त्य के समान हैं तथा भक्तों के लिए कामधेनु की तरह सर्व मनोरथों की पूर्ति करने वाले हैं।

प्रभु को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम साधन है उनके गुण का बार-बार कथन तथा नाम का अमित बार उच्चारण। इसलिए ६५ से ७० पदों में सामान्य सकल ज्वरों के लिए अग्निवत् माना गया है। ७१ वें पद में कवि अपने को धिक्कारता है कि ऐसे समर्थ स्वामी की सेवा से भी ए मूर्ख तू क्यों भागता है। वे तो प्रेम से स्मरण करते ही सकोच में पड़ जाते हैं और सोचने लगते हैं कि ऐसे सेवक को क्या दिया जाय? ७२ वें पद में राम की महानता और अपनी लघुता का चित्रण है। ७३ वें पद में सुषुप्त जीवों को जगाने की चेष्टा की गई है और आगे के पद में वह कहता है कि

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव,
जागित्यागि मूढ़तानुराग श्री रहे।

इसके बाद कवि के कहने का साराश है कि हे करुनाकर! मैं पापों की खान हूँ। ममता, मोह, विषय, आदि के वन से उसका अन्तिम गदला हो गया है। उसका

प्रत्येक पल परिदा, द्रोह, ईर्ष्या आदि प्रपंचों में बीतता है। उसके पापों का लेखा जोखा चित्रगुप्त भी उपस्थित नहीं कर सकते। उसे षड्रिपु बराबर घेरते रहते हैं जिसे वह अपना जानकर पकड़ने की चेष्टा करता है वे ही उसे अकिंचित्र कर मारते हैं। लेकिन वह किसी प्रकार का हठ नहीं छोड़ता। वह अपनी दीनता और नीचता अच्छी तरह जान गया है। एक तरफ वह पतित और दूसरी ओर पतितपावन! लेकिन फिर भी बड़ी ढील दी जा रही है। आपने अजामिल, वेश्या, विटप, प्रह्लाद, अहल्या, शबरी, न मालूम कितने पातक में लिप्त प्राणियों को तार दिया है लेकिन वही अब तक बचा हुआ है जिसपर आपकी कृपादृष्टि नहीं पड़ती। उन पतितों से तुलसी के पापों को गिना कर देखें तो वह किसी से उन्नीस नहीं पड़ेगा।

पुनः वह कहता है कि तुम्हें ऐसा लगता है कि मैं हजार उपास्यों के द्वार-द्वार दौड़ता फिरता हूँ, ऐसी बात एक दम नहीं है। मुझे एकमात्र तुम्हारी कृपा का ही भरोसा है। उसने अन्य देवी-देवताओं को भी आजमा कर देखा है परन्तु सभी स्वार्थी हैं। वे निष्काम भलाई करना नहीं चाहते। अब तो तुमको छोड़कर किसी देवी-देवता के सामने जीभ खुल जाय तो उस जीभ को धिक्कार है। उसका गल जाना ही अच्छा है। इसलिए तुम बस एक बार एक अनन्य सर्वोपेक्षित तुलसी की ओर अपनी कृपा का स्वाभिमान बरसा दो, यह तुम्हारा दास कृत्य-कृत्य हो जायगा।

इसी प्रकार की दीनोक्तियों से इन दो सौ एक पदों की काया गढ़ी गयी है। लगता है कि भक्त ने इन पदों में अपने भगवान् के समीप अपने अन्तर् की सारी उत्कटता, तल्लीनता को दलित द्राक्ष की तरह बहा दिया है। लगता है कि यह पत्रिका एक निष्पाप के अनाविल आत्म-समर्पण की उज्ज्वल कथा है। इसके बाद २७७ वें पद में कवि अपने प्रभु से पत्रिका के लिए स्वयं कहता है—

राम राय! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो?

× × ×

"विनयपत्रिका" दीन की बापु आपु ही बाँचो।

२७८ वें पद में कवि पवनकुमार, शत्रुघ्न जी, भरतलाल जी तथा लक्ष्मण से एक ही साथ अपने अवसर में प्रभु के समक्ष इस महादीन की चर्चा चला देने के लिए प्रार्थना करता है। राजसभा में सबके लोगों के बारे में तो सभी कहते हैं लेकिन इनमें क्या विशेषता है? लेकिन अगर आप लोग इस अशरण दीन की सिफारिश कर दें तो आपका यश संसार में फैल जायगा कि आपने एक असहाय को प्रभु की शरण तक पहुँचा दिया। प्रभु आप पर प्रसन्न ही होंगे क्योंकि वे दीनों पर सहज कृपा करने वाले हैं। इसलिए आप सब कृपया अवसर पाकर मुझ पराधीन के एकान्त प्रेम की रीति को समझा देना।

इसी समय बड़े संयोग से प्रभु का दरबार लगा। जाज्वल्यमान सेना के मध्य प्रभु रत्नजटित राज्य सिंहासन पर विराजमान हैं। पार्श्व तथा पादपीठ में हनुमान तथा

धन्य भ्रातागण सेवा मे तल्लीन हैं। उसी समय हनुमान और भरत की रुचि देखकर प्यारे लक्ष्मण जी ने भगवान् से कहा कि कलियुग मे एक भक्त ने आपके नाम और आपसे सच्ची प्रीति निभायी है। जिसकी विनयपत्रिका आज उपस्थित भी हुई है। इस बात को सुनते ही सारे सभासद एक स्वर से चिल्ला उठे कि हम लोग भी उसकी इस प्रेम रीति की जानकारी रखते हैं। इतना कहना ही था कि बस स्वामी ने सबके देखते-देखते उसकी बाँह पकड ली और मुस्करा कर कहा कि मैं भी इस दास की कई बार सुन चुका हूँ। (आप लोगो ने तो आज कहा। इसके पूर्व जानकी जो ने उसकी चर्चा कई बार की थी) और चट से उसके आवेदन पर हस्ताक्षर कर दिया।

पक्ति इस प्रकार है—

मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की

परी $\frac{\text{रघुनाथ}}{\text{रघुनाथ हाथ}}$ सही है।

बस अब क्या था रघुनाथ के हाथ का हस्ताक्षर पडते ही वह निहाल हो गया। उसने इतन पृष्ठों मे जो कुछ याचना की थी, सभी कुछ उसे उपलब्ध हो गया।

इस प्रकार तुलसी की विनयपत्रिका कलियुग के सताये गए एक आर्त्त की वह पत्रिका है जो लोक-लोकों के पति स्वय भगवान् की सेवा मे उपस्थित की गई है। ऐसे उन्नत-उदात्त ध्येय से लिखी पुस्तक ससार मे अनन्वित है।

गीतावली की कथावस्तु

गीतावली, जैसा विदित है कोई प्रबन्ध काव्य नही है जिसमे कथासूत्रो की सुनिश्चित योजना हो। यह तो कवि के आराध्य के जीवन के कोमलतम अशो पर आधारित मनोरागो की गीतात्मक अभिव्यक्ति है। फिर भी कथासूत्रो के बिखरे धागो को सग्रहीत कर देने पर कथा की एक रूपरेखा निर्मित हो जाती है।

विभिन्न भूमिकाओं में न उलझ कर कवि राम जन्म से अपना काव्य आरम्भ कर देता है। शुभ दिन, शुभ घडी मे रूप-शील गुण के धाम बालक राम राजा दशरथ के घर प्रकट हो जाते हैं।

आज सुदिन सुभ घरी सुहाई।
रूप सील गुनधाम राम नृप भवन प्रगट भए आई।

यो लौकिक घटना के अलौकिक वर्णन या अलौकिक घटना के लौकिक वर्णन से कथा का महीन सूत्र आगे बढ़ता है। राम के प्रकटीकरण के अवसर पर समग्र लोक मे आनन्द का पारावार उमड चला है। दशरथ के द्वार पर मगन मन-

चाहे पदार्थ पा-पाकर निहाल हो रहे हैं। बालकांड के प्रारंभिक छै पदों में इसी बधाई और आनन्द-उछाह का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुनः ७ वें पद से माताओं के प्रति दुलार का वर्णन किया गया है। बच्चा कभी दूध नहीं पीता और इसलिए माता को बड़ी चिन्ता सता रही है। लेकिन जब वसिष्ठ ऋषि ने नृसिंहमंत्र पढ़कर बालक के मस्तक को स्पर्श कर दिया तो वे किलकने लग गए। १७ वें पद में शंकर नामक एक ज्योतिषी का आगमन कहा गया है जिसने बालकों के परमोज्ज्वल भविष्य के बारे में कहा है। १८ वें पद से ४४ वें पद तक बालक्रीडा का बड़ा ही सुन्दर रूपक-गर्भ उत्प्रेक्षात्मक वर्णन है। कभी किलकने का वर्णन है, कभी हँसने का वर्णन है, कभी रूप माधुरी का वर्णन है। फिर बालक कुछ बड़े हो गए हैं और उन्होंने चौगान खेलना प्रारम्भ किया है या मृगया के कारण वन विहार। इस चौगान खेल के वर्णन के बाद ४५ वें पद से ५४ वें पद तक विश्वामित्र-आगमन, उनके मनोरथ, दशरथ के साथ वार्तालाप तथा दोनों भाइयों के द्वारा यज्ञरक्षा का वर्णन है। पुनः उनके सौंदर्य पर खग, मृग, मुनि, ऋषि तथा वनवासी मोहित दिखलाए गये हैं। ५५ से ५७ वें तीन पदों में अहिल्योद्धार की चर्चा है। भगवान् के चरण स्पर्श से शिला नारी का रूप धारण कर गई। अगर ऐसी स्थिति रही यानी रघुनाथ पैदल चलते रहेंगे तो पृथ्वीतल पर एक भी शिला नहीं रहने पायगी। ५८ वें पद में पुनः पथिकों की उक्ति का वर्णन है। उनकी शोभा ऐसी मालूम पड़ती है जैसे कामदेव ने स्वयं गढ़ी हो। उनके अहल्योद्धार तथा सुबाहुवध की चर्चा सर्वत्र चल रही है। ५६ से ६६ वें तक जनकपुर में राम-लक्ष्मण और विश्वामित्र के आगमन से राजा जनक को अपार हर्ष हो रहा है। अपने गुरु तथा ब्राह्मणों के साथ जनक जाकर उनसे मिले और सुख पाए। फिर मनमोहन राम की रूपमाधुरी के कारण उत्प्रेक्षाएँ और सन्देह का क्या कहना ?

> ए कौन कहाँ ते आए ?
> नील-पीत पथोज बरन, मनहरन, सुभाय सुहाए।
> मुनिसुत किधौं भूप बालक, किधौं ब्रह्म जीव जग जाए।
> रूप जलधि के रतन, सुछबि तिय लोचन ललित ललाए।
> किधौं रबि सुवन, मदन ऋतुपति, किधौं हरि हरवेष बनाए।
> किधौं आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए।
> भये बिदेह बिदेह नेहबस देहदसा बिसराए।
> पुलकगात, न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए।
> जनक बचन मृदु मंजु मधु भरे भगति कौसिकहि भाए।
> तुलसी अति आनंद उमगि उर राम लखन गुन गाए।

६६वें पद में पुष्पवाटिका में सीता के प्रथम दर्शन का वर्णन किया है। फिर

जिसके फलस्वरूप सीता के वियोग रूपी सागर मे राम जी जैसा चतुर तैराक भी डूब गया। २२वें पद मे वन्दर सेना की लका यात्रा का वीरतापूर्ण वर्णन है। रावण के दूत, मन्दोदरी, महोदर, माल्यवान तथा विभीषण ने रावण को बहुत समझाया कि वे सादर सीता को पहुचाकर निश्चिन्त हो जाय किन्तु वह हठी रावण तैयार नही हुआ। और उल्टे उसने विभीषण का निरादर किया। २६वें पद से ४६वें पद तक विभीषण की शरणागति का मार्मिक रूप उपस्थित किया गया है। इसके उपरात अशोक-वाटिका में जानकी-त्रिजटा सवाद से यह काड समाप्त हो जाता है।

लकाकाड मे पुन मदोदरी रावण को प्रबोध देती हुई दिखाई पडती है। वह कहती है कि हे कान्त! सीता को आदर सहित साथ ले रघुनाथ से मिलिए, इसी मे आपकी कुशल है। २ से ४वें पद तक अगद रावण वार्तालाप वर्णित है। इसके बाद तीन पदो मे लक्ष्मण मूर्च्छा के कारण प्रभु के अपार कष्ट और पश्चाताप का वर्णन है। ८वें पद मे हनूमान का कथन बडा उत्साहपूर्ण और वीररसात्मक है। इसके बाद सजीवनी बूटी लाने के लिए हनूमान का प्रस्थान, भरत से उनकी भेंट तथा भरत की दशा का कथन है। इधर १५ वें पद मे लक्ष्मण की मूर्च्छा भग होती है, उधर १६ वें पद मे राम के विजयी रूप का चित्रण है।

> राजत राम काम सम सु दर।
> रिपु रन जीति अनुज सग सोभित, फेरत चाप विसिख बहुनवर।
> स्याम सरीर रुचिर श्रम सीकर, सोनित कन बीच मनोहर।
> जनु खद्योत निकर हरिहित गन, भ्राजत मरकत सैल सिखर पर।

१७वें पद से २१वें पद से अयोध्या मे उनकी प्रतीक्षा हो रही है। माताए शकुन मना रही हैं। २२-२३वें और पद मे राज्याभिषेक की धूम और आनन्द बधावन है और इसी के साथ गीतावली के लकाकाड की कथा समाप्त हो जाती है।

गीतावली का उत्तरकाड रामराज्य की विशिष्टता-वर्णन से आरम्भ होता है। इसके उपरात कवि रामरूप वर्णन करते अघाता नही। २रे मे १७वें पद इसी रूप की विश्व विमोहक झाँकी प्रस्तुत की गई है। १८वें पद मे राजा राम हिंडोला पर झूलने दिखलाए गए हैं। फिर अयोध्या की शोभा दीपोत्सव, वसतबहार, होली का वर्णन करके कवि ने २५वें से ३६वें पद सीता वनवास की कथा कही गई है। किस प्रकार प्रभु ने सीता परित्याग के बारे मे सोचा। उनकी बारह हजार पाँच सौ बरस की आयु बीत चली अब पिता की आयु ही शेष है, इसीलिए सीता का परित्याग करना आवश्यक हो गया। लक्ष्मण ने उन्हे वाल्मीकि आश्रम मे पहुचा दिया। वही लव कुश का जन्म हुआ और वहीं उनकी क्रीडा होती है। इसके बाद की घटनाओं का उल्लेख यहाँ भी नही है। इसके बाद फिर कवि कैकेयी की ग्लानि का वर्णन

एक पद में करता है जिसके लिए यह कोई उपयुक्त अवसर नहीं था। इसके बाद रामचरित का पुन सक्षिप्त वर्णन कर, प्रभु से भक्तिदान मांगकर कवि इस कांड को भी समाप्त कर देना है।

श्रीकृष्ण गीतावली की कथावस्तु

प्रस्तुत पुस्तक श्रीकृष्ण पर आधारित एकसठ पदो का सग्रह है। पुस्तक का प्रारम्भ बाल लीला से होता है। यशोदा मैया बालक कृष्ण को गोद मे लेकर उनके मुख को बार-बार निरखती हैं। उसे कृष्ण के मुख देखने मे इतना सुख मिलता है कि इसके कारण ही वह जगत् मे अपने को बडा पुण्यात्मा समझती है। दूसरे पद मे श्रीकृष्ण मीठी रोटी माँग रहे हैं और अपने भाई बलराम को उसका लघु अश भी देना नहीं चाहते। श्रीकृष्ण बालकों को बुला-बुलाकर रोटी दिखाकर चिढ़ाते हैं। इस लीला का अवलोकन कर गोपियाँ और यशोदा मैया आनन्द-गदगद हो जाती हैं। तीसरे पद मे गोपी-उपालभ हैं। इस निपट अन्यायी श्यामसुन्दर ने घर की हालत खराब कर रखी है। दूध-दही मक्खन की हानि तो गोपियाँ मन-मसोस कर किसी तरह सह लेती हैं लेकिन दिन प्रतिदिन बर्तन खरीदना तो उनके लिए कतई सम्भव नहीं। अनुनय विनय पर बालक कृष्ण हँस देता है और डांटने पर आँखें तरेरता है। इसी कम उम्र मे न मालूम उसने कैसे इतनी लीलाएँ सीख ली हैं? उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐ माँ इन्हे दूसरे के घर मे भटकने की आदत पड गई है, इसलिए ये तरह तरह की युक्ति रचा करती हैं। इनके लिए तो हमने खेलना तक छोड दिया है लेकिन तो भी इनसे उबरना मुश्किल हो गया है। ये स्वय ही बर्तनों को फोड कर दही दूध में हाथ डुबोकर उलाहना देने पहुँच जाती हैं। कभी बालकों को रुला देती हैं और उनके हाथ पकडकर बहाना बनाती चली आती हैं। करती हैं सब कुछ स्वय और दोष दूसरे के मत्थे मढती हैं। ये तो बातचीत में ब्रह्मा को भी पराजित करती हैं। कृष्ण कहते हैं कि जो बालक अन्याय करता है, वह मुझे स्वय अच्छा नहीं लगता। बालक श्रीकृष्ण की इन मधुर बातो को सुनकर यशोदा मैया भी श्रीकृष्ण का पक्ष लेकर कह उठती हैं कि मेरे घर मे किस वस्तु का अभाव है जो यह तुम्हारे घर जाएगा। यह तो अपने घर मे ही बलराम के साथ खेलता रहता है। पाँचवें पद मे ग्वालिनी व्यग्य भरे शब्दों मे कहती हैं कि हे कन्हैया तुम्हारी सारी बातें सत्य हैं। जब हमने तुम्हें छोड दिया तो मौका पाकर तुम गाली देते हुए घर भाग आए। यशोदा ने भी तुम्हें निर्दोष समझकर छाती से लगा लिया। अब तो मेरी हजार युक्तियाँ भी निरर्थक हैं। (६) हार खाकर गोपियाँ फिर भी उलाहना देने मे बाज नहीं आतीं। (७) इसलिए आज माता यशोदा को ग्वालिनी की बातो पर थोडा विश्वास हो सा गया। इसलिए श्रीकृष्ण रोते हुए कहने लगे कि मैया तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ कि इन ग्वालिन को लडने की आदत-सी हो गयी है। क्या सम्पूर्ण

ब्रज में मैं ही एक अन्यायी हूँ जो ऐसा कांड करता रहता हूँ। लेकिन फिर ग्वालिन जब आ गई तो माता यशोदा बरस पडी। हूँ मेरे बच्चे पर ऐसा दोष लगाती हैं यह ठीक नही। यशोदा की बातें सुनकर बेचारी ग्वालिन कुछ झेंप गई तो कृष्ण को भी चिढाने का मौका मिल गया। इस तरह कृष्ण की माखन-चोरी चलती रहती है—ग्वालिनों की नालिश भी जारी रहती है। कभी माँ का डाँटना—कभी समझाना और कभी दुलार-पुचकार की बातें चलती रहती हैं। इधर फिर श्यामसुन्दर ने दधि की मटकी फोड दी, माखन बन्दरो को लुटा दिया। यशोदा मैया पकडने चली वे भाग गये लेकिन पुन पकडे गए। माता ने छडी हाथ मे लेकर डाँटना प्रारम्भ किया। कृष्ण भी रोने लग गए। इस स्थिति को देखकर गोपियो का झुड वहाँ पहुच गया और उनमे एक यशोदा को समझाने लगी—कि इस सुन्दर मुखडे वाले के साथ ऐसा कठोर व्यवहार ठीक नहीं। दूसरी सखी कहती है कि इस कोमल गात को रस्सी से बाँधकर तुमने कष्ट दिया है। जरा विचार कर! तीसरी सखी भी कुछ-न कुछ कहती ही है। जब से कन्हैया का जन्म हुआ है तब से दूध दही की कौन-सी कमी रही है कि इस छोटी-सी हानि के लिए तुमने ऐसी कठोरता अपनाई है। इतने मे नन्द के पुरोहित शांडिल्य मुनि की पत्नी भी पहुच गई—अरी भली औरत अपने हाथ से छडी फेंक। बडे सौभाग्य से ब्रह्मा-विष्णु-महेश की कृपा से तो यह पुत्र उत्पन्न हुआ है और उसी को तुम बाँधने दौडती हो। अरी पगली! क्या तुम्हारा मतिभ्रम तो नही हो गया।

अठारहवें पद मे इन्द्रकोप के कारण गोवर्धन धारण का वर्णन है। आकाश में जब भयकर घटा प्रलय-जल बरसाने लगी तो दुखात्त गायें ग्वाले और गोपियाँ कृष्ण को पुकारने लगी। गोपियो के इस दुःसह दुःख को दूर करने के लिये श्रीकृष्ण ने हँसकर गोवर्द्धन पर्वत को उठा लिया। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण को गोचारण और छाछलीला का वर्णन है। विनोदी बाल-स्वभाव वश श्रीकृष्ण ने पानी मथकर क्षुधा शान्त करने को सोचा था लेकिन जब भूख नही मिटी तो बलराम के परामर्श पर वे बाँसुरी टेर कर गायो को बुलाकर दूध किलक किलक कर पीने लगे। यमुना तट पर वे नट राग मे वशीवादन करते तो देवताओ का मन भी मुग्ध हो जाता। पशु-पक्षी शिथिल और व्रजगोपियाँ रिक्तघट मस्तक पर धरे चित्रवत् खडी रह जाती। २१वें से २३वें तीन पदो मे श्रीकृष्ण का रूप वर्णन कवि ने बडी चतुरता से किया है। सुन्दर उत्प्रेक्षाओ का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण का रूप मानस-गोचर हो जाता है। जब मुखचद्र पर काले घुघराले बाल-भुजग सुधारस का पान कर रहे हो। जब अलसाये मुरारी एक पल आँखें मूदते हैं और दूसरे पल खोल देते हैं तो लगता है जैसे ब्रह्माजी ने चन्द्रमण्डल पर दो अरुणिम खजनों को बैठा दिया हो। त्रिवलक वसन वाले उस किशोर को देखकर भला अनेक कामदेव पराभूत हो न जायें तं क्या कहना?

२४वें पद से ५६वें पद तक यानी ३६ पदो मे गोस्वामी जी ने विरह-विदग्ध

गोपियो के हृदयोच्छवासो को गीतवद्ध करने का प्रयास किया है। कृष्णगीतावली के अधिकाश पदो मे कवि वियोग-व्यथा को ही उपस्थित करता दीख पडता है। बाल-लीला गोचारण-रूपवर्णन तथा सयोग के मधुर वर्णन के बाद जब नटराज मुरली मनोहर गोपियो के बाह्य नेत्रो से दूर हटकर मथुरा चले जाते हैं तो उनकी दशा बडी नाजुक हो गई है। आज तो उन्हे अपनी आँखो पर से भी विश्वास उठ गया है। या तो इन्हें श्यामसुन्दर के साथ चला जाना चाहिए था या फिर श्याम को ही अपने अदर बसाकर श्याममय हो जाना चाहिए था। यद्यपि ये आँखें सौन्दर्य लोलुप कही जाती हैं लेकिन फिर भी इनका काय तो उनके विपरीत ही हुआ। लेकिन एक सखी कहती है कि मन तो उनके रूप-सागर मे नमक की तरह मिल गया। शरीर नमक की तरह मिलकर नीर-क्षीर की तरह मिला और इसलिए तो अक्रूर रूपी हस ने दोनो को विलग कर दिया। श्रीकृष्ण का स्वभाव ही कुछ विचित्र था। जिस प्रीति-भवन को बनाया उसी को सहर्ष उजाडने मे भी उन्हे विषाद नही हुआ। लेकिन इधर गोपियो की यह दशा है कि जब से कन्हैया व्रज छोडकर गए हैं तभी से उनके वियोग रूपी विषराशि को पाकर विरह रूपी सूर्य एकरस उदित हो रहा है। वियोग के कारण उन्हें सूर्य ही अधिक शीतल लगता है। विरहिणियो का शत्रु चन्द्रमा तो सदा दुख-दायी ही प्रतीत होता है। अब तो सारे व्रज मे एक नई खबर फैल गई है। सारी व्रजभूमि पर कामदेव का आधिपत्य हो गया है। बादल उस कामदेव के सदेशवाहक दूत हैं, बकपक्ति उसका सिरोवेष्ठन है, दामिनि सैनिको की पताका है कोकिलो का कूजन भाटो का यशोगान है और मेघगर्जन के बहाने उसकी दुहाई फिर रही है। जब तक श्यामसुन्दर वृन्दावन मे थे तब तक इधर किसी के आने का साहस नही होता था लेकिन उनके बिछुडते ही जिस-तिसका आधिपत्य हो गया है।

३३वें पद से भ्रमर-गीत प्रारम्भ हो जाता है। जिस भ्रमरगीत के पदो को महाकवि सूरदास ने अपार रस-माधुर्य से परिपूरित किया है, उसी प्रसग पर गोस्वामी तुलसीदास पदों की रचना कर रहे हैं। गोपियाँ कहती हैं कि ए उधो ! जरा व्रज की दशा तो देखो, फिर पीछे भोग-सिद्धि की कथा का विस्तार करना। तुम तो परम चतुर श्याम के सतत निकट रहने वाले सेवक हो। भला यह तो बताओ कि विरह-सागर मे डूब रहा हो वह परमार्थरूपी फेन के सहारे कैसे बचेगा ? सारा योग, ज्ञान-विराग सब कुछ उस मुरली-धुन पर न्योछावर कर सकती हूँ। भला उधो क्या जाने कि किस प्रकार नन्दनन्दन ने व्रज मे बसकर बालविनोद किया है तथा उस रसिक शिरोमणि ने किस प्रकार रास-रचाया था। जिन गोपियों ने उस रस का आनन्द लिया है उसके लिये नीरस योग भला किस काम का ? कृष्ण के विरह के कारण गोपी-गोप गाएँ-बछडे सभी ऐसे क्षीणकाय हो गए हैं जैसे भाँजा रोग से मछलियाँ हो जाती हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण ने कुब्जा को वरणकर अपनी प्रीति का परिचय दिया है, लेकिन हम सब अपना कर्तव्य निभा कर ही रहेंगी। अगर श्रीकृष्ण को हमें छोड

देना था तो फिर इस तरह से प्रीति बढ़ाने की क्या आवश्यकता थी ? कुब्जारमण की शिक्षा तुम अपने ही पास रहने दो यहा पर छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐ ऊधो तुम जो निर्गुण की सीख दे रहे हो यह कान्ह का उपदेश नहीं हो सकता वरन् यह तो निष्ठुरता कुब्जा की है जिन्होंने श्रीकृष्ण पर जादू चलाकर मोह लिया है। ऐ भ्रमर ! तुम्हारी सीख वही मानेगा जो यह स्वीकारता हो कि जल को मथने से घी निकलता है। जिसने भला सगुण ब्रह्मरूपी दुग्ध की उपासना की है वह जल रूपी निर्गुण की ऊहापोह क्यों करेगा ? ब्रजवल्लभ हमारे हाथों से निकलकर कुब्जा के चगुल मे भले फस गए। घर से भले ही चले गये, आँगन और ब्रज से भले ही चले गए लेकिन हमारे मन से तो कहीं जा ही नहीं सकते क्योंकि वह तो हमारे हाथ में है। भ्रमर ! तुम्हारी सीख कोई नहीं मानेगा क्योंकि तुम्हारी कथनी और करनी मे कोई समानता है ही नहीं। तुम तो सर्वदा कमल-मकरन्द के सुधा सागर में अपने को डुबोये रहते हैं और हमसे आकाश खोदकर जल ग्रहण कर पिपासा शांत करने को कहते हैं। अर्थात् तुम तो स्वय सगुण लीला वपुधारी श्रीकृष्ण के साथ रहते हो और मुझे निर्गुण श्याम की आराधना करने को कहते हो। फिर गोपियों को अपने पर क्षोभ होता है कि उन्होंने प्रेम-व्रत का निर्वाह नहीं किया। प्रेमी के वियोग में चातक, मृग, मीन, पतग और कमल अपना प्राणत्याग देते हैं परन्तु ये गोपियाँ ऐसा नहीं कर सकी हैं। इसमें तो प्रेम की मर्यादा खडित होती है न। प्रेम की मर्यादा को समझकर ऊधो को प्रत्युत्तर नहीं देना चाहिए। माता-पिता को वृद्ध जानकर तथा बन्धु-बान्धवों को विरह मे क्षीण जानकर, माधव ने अपनी प्रथम कमाई का यह धन ब्रज में भेजा है, इसे आदरपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। उनके सुन्दर यश का स्मरण कर सुखी होना ही श्रेयस्कर है। गाढ स्मृति मे डूबकर दुःखी होने से क्या लाभ ?

लेकिन फिर गोपियो ने व्यग करना प्रारम्भ कर दिया। बेचारी कुब्जा तो सौतिन की तरह बार-बार इनके सामने चली आती है। क्या ही अच्छा हो कि कुब्जा और कान्ह दोनो को मनाकर ब्रज मे ले आया जाय। क्योंकि कुब्जा से विरोध कैसा ? पूँछ से प्रेम और सींग से विरोध कैसा ? प्रीति की तो यही रीति है कि प्रिय के समान ही उसका स्नेह-भाजन प्रिय होता है। अगर कृष्ण हमे प्रिय हैं तो कुब्जा भी प्रिय हैं। इसलिये मथुरा चलने का शुभ दिन निश्चित करना चाहिये।

५०वें पद मे फिर ताना। ऐ मधुकर ! तुम तो रसिक शिरोमणि हो। लेकिन बिना अक्षरों के गीत गाने मे कौन-सा रस है—यह तो जरा बतलाओ। जिसमें रूप नहीं उसकी उपासना कैसी ? मोम के दांतो से वज्र का लड्डू खाया नहीं जा सकता। इसलिये जो ब्रज सगुण श्यामसुन्दर रूपी क्षीरसागर के तट पर बसा है, उसको छोड़कर विष विटप आक दुहना कैसी बुद्धिमानी है ? ए मधुप ! गोरस में

नित नवीन प्रेम की छटा छाई रहती है—इसलिये कही दूसरी जगह जाकर अपने ज्ञान की पुरानी गाथा सुनाओ। वस्तुत यहाँ पर ज्ञान का कोई ग्राहक है ही नही। ऐ ऊधो! एकाकी प्रीति करके किसी ने सुख नही पाया है, यह हमे भली भाँति विदित है। उस श्यामसुन्दर घन के प्रति जिसका गुण ही जल है, रूपमाधुरी मणि हैं तथा जिसने मुरली की मधुर तान के द्वारा सुन्दर सगीत उपस्थित किया है उसमे मेरा मन चातक, मत्स्य, सर्प और हिरण की तरह लग गया है। उसको छोड देना अब सभव नही। निर्मोहियो से प्रीति करके सबने तो दुख पाया ही है परन्तु ऐसा कौन अज्ञ है जो इस पर अपने प्रेमास्पद को छोड देता है ? तुम्हारे ज्ञान के कृपाण से मेरा हृदय क्षण-क्षण मे टुकडे-टुकडे हो जाता है लेकिन यह अवधि रूपी राक्षसी उसे जोड-जोड कर बचाए रख रही हैं। व्रजनाथ के बिना नेत्रो की जलन कभी शान्त हो ही नहीं सकती। बादल शत कल्पो तक स्वर्ण कलशो मे अमृत जल भर-भरकर बरसाता रह जाय लेकिन केले, सीप और चातक का काम स्वाती जल के बिना चल ही नही सकता। अमृत रूपी श्रीकृष्णचद्र को छोडकर भला ज्ञान-सूर्य से कैसे प्रेम मिल सकता है ? यद्यपि प्रियतम ने ज्ञान-परशु देकर आपको विरह-बेलि काटने भेजा लेकिन आँखो के अविरल जल-प्रवाह ने उसकी रक्षा कर ही दी। प्राण कब से गये होते लेकिन उन्ही के दर्शन के लिये अब तक अटके हुए हैं।

६०-६१वें पद मे भक्त मर्यादा रक्षण का वर्णन है। जब दुर्योधन दुःशासन की सभा मे द्रौपदी का वस्त्र खीचा जा रहा था—उसमे धर्म-धुरीन भीष्म पितामह—आचार्य द्रोण जैसे व्यक्ति बैठे हुए थे तो उस समय कृपाकर मुरारी ने वस्त्र का रूप धारण कर उसकी लज्जा बचायी थी यह कीर्ति सारे लोकों मे फैल गई। आकाश मे नगाडे बजने लगे। देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। मुनि एव ऋषिगण हर्षातिरेक से नाचने लगे। लाज के मारे दुर्योधन छिप गया। द्रौपदी प्रेम के कारण शिथिल हो गई। ऐसी कीर्त्ति सुनकर भला ससार मे कौन होगा जो उनके भक्ति-पथ पर नहीं चलेगा।

इस प्रकार गोस्वामी ने ६१ पदो मे ही सम्पूर्ण कृष्ण चरित के मार्मिक अशों को आयत किया है।

: २ :

गीत कृतियों की विभिन्न टीकाएँ

तुलसी साहित्य विशेषत रामचरितमानस पर जितनी टीकाए लिखी गई हैं उतनी हिन्दी के किसी ग्रंथ पर नहीं। उनके गीत ग्रंथो पर भी कम टीकाएं उपलब्ध नहीं होती लेकिन सब महत्वपूर्ण नही। उन टीकाओ के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कहीं शाब्दिक अर्थ मे उलट-फेर हुआ है, कही वाक्यो के अर्थ ही भ्रामक हैं और कही का पूरा पद ही दोषयुक्त है। इन अर्थ सम्बन्धी असगतियो को उपस्थित करना ही हमारा इस अध्याय मे उद्देश्य है। हम क्रम-क्रम से उनके तीनो गीतकाव्यों की टीकाओ पर विचार कर रहे हैं।

शब्द सम्बन्धी

कृष्ण गीतावली के १७वें पद मे "घर बसी" शब्द आया है। जिसका अर्थ रामायन सरन ने घर में रहने वाली[1] तथा गीताप्रेस ने "भली औरत"[2] अर्थ किया है। लेकिन इस प्रसग में यह अर्थ ठीक नही मालूम पडता। व्यंग्य से इसका अर्थ घर उजारने वाली होना चाहिए। पुन इसी पद मे "गौरसहाई" का अर्थ रसायन सरन ने "गौरस के सहाय हेतु"[3] किया है लेकिन यह अर्थ बैठता नही। इसका अर्थ गोरस के लिए हाय हाय करने वाली ही उपयुक्त जँचता है।

१८वें पद मे "आपनो सो"[4] का अर्थ शरन जी ने "अपनी करतब सो" किया है। गीताप्रेस ने "अपनी सी करके' लिखा है।[5] अगर इसका अर्थ अपनी शक्ति भर उपद्रव करके लिया जाय तो अर्थ अधिक स्पष्ट होता है।

१९वें पद मे "छैया" शब्द का अर्थ रामायन सरन ने मट्ठा दूध किया है। "दूध मट्ठा घिव सहित जो हो सो छैया कहावतु है।"[6] किन्तु छैया शब्द का अर्थ

१ कृष्णगीतावली—रामायन सरन, पृ० १९
२ ,, —गीताप्रेस, पृ० २०
३ ,, —रामायन सरन, पृ० १६
४ ,, —रामायन सरन, पृ० १८
५ ,, —गीताप्रेस, पृ० २२
६ ,, —रामायन सरन, पृ० १८

पन से दूध पीना होता है। इसका समर्थन तुलसी शब्द-सागर[1] और हिन्दी शब्द सागर[2] से हो जाता है।

२४वें पद में 'ह्वै न गए सखि स्याममई" में "स्याममई" का अर्थ रामायन सरन ने फूट जाना किया है। "स्याम वियोग फुटि जात"।[3] स्याममई का अर्थ तो सरल है स्याम मय हो जाना।

३४वें पद में "कहा करम सो चारो" का अर्थ रामायन सरन ने "करम सो लाचार किया है।"[4] गीताप्रेस ने इसका अर्थ "भाग्य के आगे क्या उपाय है?"[5] चारो का अर्थ वश होना चाहिए जिसकी पुष्टि श्रीकान्त शरण जी की टीका से हो जाती है।[6]

४२वें पद में 'चरेरी" शब्द का अर्थ रामायनसरन ने चालाकी चतुराई" माना है। किन्तु गीताप्रेस[7] तथा सिद्धान्त तिलककार[8] ने इसका अर्थ कठोर और खुरदरी माना है जो अधिक सगत है।

४७वें पद में "अरगानी" शब्द का अर्थ रामायनसरन ने पृथक् होना" लिखा है। लेकिन "अरगनी" शब्द अलगानम् से निसृत है जिसका अर्थ चुप रहना है। तुलसी शब्द सागर से भी इसकी पुष्टि हो जाती है।"

ऊपर हमने कृष्णगीतावली के शब्दार्थ में पर्याप्त अन्तर देखा है लेकिन ऐसे भी पर्याप्त स्थल हैं जहां पर टीकाकारो ने पूरे वाक्यों या लगातार कई चरणो के अर्थ का अनर्थ किया है।

काव्यगत

२७वें पद मे—

"सत्य सनेह सील सोभा सुख सब गुन उदधि अपारि।
देख्यो सुन्यो न कबहुं काहु कहु मीन वियोगी बारि॥"

---

१ तुलसी शब्द सागर—पृ० १३७
२ सक्षिप्त
३ कृष्णगीतावली—रामायन सरन, पृ० २३
४ ,, —,, ,, पृ० ३४
५. ,, —गीताप्रेस, पृ० ४२
६. ,, —सिद्धान्त तिलक, पृ० ८२
७ ,, —रामायन सरन, पृ० ४३
८ ,, —गीताप्रेस, पृ० ५०
९ ,, —सिद्धान्त तिलक, पृ० १०२
१० ,, —रामायन सरन, पृ० ४६
११ ,, —तुलसी शब्द सागर, पृ० २६

चरण है जिसका अर्थ हनुमान प्रसाद पोद्दार ने किया है 'हमारे प्रियतम सत्य, स्नेह, शील, शोभा सुख आदि सभी गुणों के समुद्र हैं। परन्तु आज तक कभी किसी ने कहीं यह नहीं देखा सुना कि जल (समुद्र) कभी मछली का वियोगी बना हो (मछली जैसे जल के वियोग में तड़प-तड़प कर मर जाती है, वैसे समुद्र भी मछली के विछोह में कभी दुःखी हुआ हो)। इसी प्रकार श्यामसुन्दर भी समुद्र की भाँति सद्गुणनिधि होने पर भी हमारे वियोग का अनुभव क्यों करने लगे ?'"[1]

रामायन सरन ने इन चरणों की टीका करते लिखा है कि "हम लोग श्याम *वियोग करि जीवतु हो कैसो श्याम हैं सत्य औ सनेह सील सोभा सुष सब गुन के* अपार उदधि हैं सो ऐसो आचरज कहीं देषि वे औ सुनिए भी नहीं आई की आली की मीन वियोगीना ही रहतु हम लोग हू ऐसो की काहू जल समझो हम लोग मीन *सम बिछुरत मर नहीं गए मीन वियोगी वारि बने हो सो झूठा हम लोगों का प्रेम* है।"[2]

टीकाकारों के इस अर्थ में स्पष्ट रूप से असंगति दीख पड़ती है। प्रथमतः जिन विशेषणों का प्रयोग गोपियों के लिए गोस्वामी जी ने किया है उसका सम्बन्ध कृष्ण के साथ स्थापित कर देना भारी भूल है। दूसरी बात यह कि अपारि जो स्त्रीलिंग है उसका सम्बन्ध श्रीकृष्ण के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है? पुनः अर्थचमत्कार *एवं ऊपर कथित प्रसंग की संगति के लिए सारे विशेषणों का सम्बन्ध मीन के साथ* जोड़ना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। जब एक सखी ने यह कहा कि श्रीकृष्ण ने बालकों की सी क्रीडा करके हम लोगों का परित्याग किया है इसी के उत्तर *स्वरूप दूसरी गोपिका कहती है कि कन्हाई को दोष देना कतई ठीक नहीं।* पहले अपना प्रेम तो देखो। मीन सत्य, शील, स्नेह सबका उदधि इसलिए है कि वह जल के वियोग में जी नहीं पाता। अगर गोपियों को श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम होता *तो कब न प्राण त्याग किए होती।* इस अर्थ के साथ श्रीकान्त जी का अर्थ मेल रखता है। "मछली सत्य, स्नेह शील, शोभा, सुख और समस्त गुणों में समुद्र के समान अपार है। किसी ने उसे जल से वियोगी होकर (जीवन धारण करती हुई) न देखा है, और न सुना है?"[3]

३८वें पद की अन्तिम पंक्ति में 'तुलसीदास इहे अधिक कान्ह पहिं नीकेई सागर मन रहत समानै" का अर्थ रामायन सरन ने लिखा है, "कान्हई मो मेरो मन *लगोई रहतु है सामने नाम का ह के रूप में समाइ गयो है*"[4] जो गलत है। कान्ह में

१ श्रीकृष्ण गीतावली—गीताप्रेस, पृ० २५
२. ,, —रामायन सरन, पृ० २६
३ ,, —सिद्धान्त तिलक, पृ० ५५
४ ,, —रामायन सरन, पृ० ३८

मन क्या समायेगा। हाँ मन मे कान्ह भले समा गये हो। इसलिए पोद्दार जी ने ठीक ही लिखा है कि "कन्हैया मे यह विशेषता है। वे सदा अच्छे ही लगते हैं (इसी से) मन मे समाये रहते हैं।"[1]

३६वें पद मे "हमहुँ निठुर निरुपाधि नेहनिधि निज भुजबल तरिबे हों" का अर्थ रामायन सरन ने किया है "प्रभु ठकुराई मों भूल्यो औ हम लोगन के पवरा इस समुद्र पार करतु हे कहते हैं कि तुम लोग पवरि कें समुद्र पार जाते जाव सोरे अलि हमहूँ निठुर होय निरुपाधि सब उपाधि त्यागी नेह निधि मो श्यामसुन्दर पर जो स्नेह सोई जलनिधि है जो निज भुजबल नाम पवराइ के तरिबे हो निठुरता सुरति बिसारि जोग ज्ञान को आचरन करनो प्रेमाभक्ति त्यागि सोई पवरि पार जानो है।"[2]

सरन ने इतना विस्तार किया और अर्थ को बेढंगा बना दिया। भला गोपियाँ अपने मुँह से कैसे कह सकती है कि (अपने भुजबल से तरना का अर्थ) प्रेमाभक्ति त्यागकर उस श्यामसुन्दर की सुधि को चित्त से उतार दे। पोद्दार जी ने भी इसका अर्थ अस्पष्ट ही छोड दिया। "हम लोगों को तो कठोर उपाधि रहित (निर्गुण रूप) जल सागर को अपनी भुजाओ के बल से पार करना है।[3] परन्तु इसका अर्थ यह है कि यद्यपि स्वामी ने अपनी प्रेम प्रतीति का निर्वाह नही किया तो क्या हुआ हमे तो निष्ठुर निरुपाधि (प्रेम धर्म निर्वाह की चिन्ता से रहित) स्नेह समुद्र का अपने ही भुजाओ के बल से (उपास्य देव की प्रतिक्रियाओ को न देखकर एकागी स्नेह करके) स्नेह रूपी अपार सागर को पार करना है, अर्थात् आजन्म इस एकागी प्रेम का निर्वाह करना है।[4]

४० वॉ पद—

ऊधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे हो।
ज्ञानगिरा कुबरीरवन की सुनि विचारि गहिबे ही॥
पाइ रजाइ नाइ सिर गृह ह्वै गति परमिति लहिबे ही।
मति मटुकी मृगजल भरि घृतहित मनहीं मन महिबे ही॥

इसका अर्थ पोद्दार जी ने किया है "उद्धव जी हमे यहाँ कुछ नही कहना है। कुब्जा रमण की ये ज्ञान की बातें सुनकर एव विचार करके उन्हे ग्रहण (धारण) करना है। उनकी आज्ञा पाकर उसे सिर चढाकर घर मे रहकर की परमगति (ब्रह्म) को प्राप्त करना है। (अब तो हमे) बुद्धिरूपी मटकी मे (ब्रह्मज्ञान रूप) मृगतृष्णा का जल भरकर घृत (आनन्द) के लिए उसको मन ही मन मथना है (उसमे कही आनन्द तो है नही—केवल मन की कल्पना है)[5]। रामायन सरन कहते

---

१ श्री कृष्णगीतावली, गीताप्रेस, पृष्ट ४६
२ ,, रामायन सरन, ,, ३६ ६०
३ ,, गीताप्रेस, ,, ४७
४ ,, सिद्धान्त तिलक, ,, ६६
५ ,, गीताप्रेस, ,, ४८

है "ऊधो प्रति वचन गोपी‍ह के ह ऊधो हम नाहो कछु न कहब कुबरीरवन के जो ज्ञान विराग करने को सिपावन है सोई मुनि के भ्रो विचारि के गहिवे ही नाम गहब तुम ऐसो गुर कहाँ पावेंगे पाई रजाइ भ्रापका भ्राज्ञा पाइभ्रो भ्राप ऐसो गुरु को सिर नाइ भ्रो गति गृह भो जाइ जोग धरे मो जाइ भ्रो परमिति लहि वे हो नाम मर्जादा पाइ एते दिन हम लोग के मरजाद की रही है। गवारिन के गनती मो भ्रव महात्मन के गनती मो होहिंगे गति परामिति लहिवे ही भ्रो हम लोगो का मति सोइ मटु को है तामो मृगजल भरिके घृतसित ते वदे मन हो मन महिवे हो नाम से महल करव भाव इहाँ जोग ज्ञानमृग जलबुद्धि मो स्थिर करना सोइ भरब मन सो मनन कर नासो ई मन रूपी मथानी सो महना भ्रानन्द घृत निकासने के वास्तव।[1] पोद्दार जी तथा रामायन सरन जी न ऊपर की दो पक्तियो का भ्रर्थ गलत किया हो, साथ ही साथ मति मटकि वाले सांग रूपक का ग्रहण ऊधो के पक्ष मे होना चाहिए लेकिन यहाँ गोपियो के पक्ष मे किया गया है। गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! यह (ज्ञान, योग-साधन) की बातें यहाँ (व्रज मे) कुछ नही कहना था। कुबरीरमण कान्ह के ज्ञान की बातें सुनकर भ्रौर विचार कर वही पर ग्रहण करने की वस्तु थी। (योगगुरु की) भ्राज्ञा प्राप्त कर उन्ह प्रणाम कर (साधन) गृह (कन्दरा भ्रादि) मे रहकर योग की गति मर्यादा प्राप्त करनी थी। फिर वही पर बैठे बैठे बुद्धि रूपी मटुकी मे मृगजल रूपी ज्ञानगिरा को भरकर ज्ञानानद रूपी घृत के लिए मन रूपी मथानी से मनन रूपी मथन करना था"।[2] इसीलिए तो दूसरी सखी कहती है भ्राखिर इन बातो को दबा देना ही भ्रच्छा है। बेचारे ऊधो को फटकारने से भ्राखिर क्या मिलेगा? भ्रथ सौन्दय के लिए नीचे वाला भ्रथ भ्रधिक ग्राह्य प्रतीत होता है।

४१ व पद में—

मधुकर कान्ह कहा ते न होही।
के ये नई सिखई हरि निज भ्रनुराग बिछोही।

का भ्रथ इस प्रकार किया गया है। "जो मधुकर कहत है सो कान्ह की कही ना ही है के ए नई सीप ई है के छो नई सीप हरि ने सीपी निज भ्रनुराग बिछोही जो ज्ञान वैराग है नई सिप सीपी है सो सपी कान्ह की नई सिप सीपी है।"[3] भ्रौर बिलकुल ऊटपटाग है। भ्रर्थ सीधा है कि हे भ्रमर तुम जो बात कहते हो वह श्रीकृष्णचन्द्र की कही हुई नही हो सकती। भ्रथवा श्रीकृष्ण ने जो ये बातें भ्रपनी प्रेम विरहिणी गोपियों के लिए कहला भेजी हैं वे कुब्जा से नई-नई सीखी हुई मालूम पडती हैं। हनुमान प्रसाद पोद्दार[4] तथा श्रीकान्तशरण जी[5] ने इसी प्रकार के भ्रर्थ किए हैं।

---

१ श्री कृष्णगीतावली, रामायन सरन पृ० ...
२ ,, श्रीकान्तशरण ,, ६७
३ ,, रामायन सरन ,, ४१
४ ,, गीताप्रेस , ४१
५ ,, सिद्धान्त तिलक , ६६

४२वें पद की अन्तिम पंक्ति है 'तुलसी परमेस्वर न सहेगो, हम अबलनि सब सही है" का अर्थ रामायन सरन ने लिखा है "हम लोगो को उन्ह को कहनो सिर धरि करनो उचित है रे मधुप ऐसी बचन जो हम लोग अबला होइ के सब सहती हैं। तापर तुम उपदेसत हो भो ऐसो विरह परमेस्वर बडे सामर्थ्य हैं परन्तु उन्ह की नही सहा जायगो।"[1] पोद्दार जी ने इसी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार लिखा है तुलसीदास के शब्दो मे गोपियाँ कहती हैं कि हम अबलाओं ने सब कुछ कहा है, परन्तु परमेस्वर इसे नही सहेगा।"[2] सिद्धान्त तिलककार ने इसका अर्थ और कुछ विचित्र ही किया है "श्री तुलसीदास कहते हैं कि (वह गोपी कहती हैं— परमेस्वर भी (ऐसे प्रतिकूल बर्ताव का) सहन नहीं करेगा, किन्तु हम अबलाएँ सब सह रही हैं।[3] पुन व्याख्या मे उन्होंने "सहन नहीं करेगा' की व्याख्या इस प्रकार की है कि कुब्जा के अन्याय का दण्ड परमात्मा भी उसे देगा।[4] परमेस्वर के दण्ड देने की सगति बैठती नहीं। व्यर्थ की यह खीचतान ठीक नही मालूम पडती।

४४वें पद मे "धान को गाँव पयार तें जानिय ग्यान विषय मन मारे" का अर्थ सरन जी ने इस प्रकार किया है। 'धान को गावु पयार सो जानि परतु है सो या बातें सो ज्ञान की सकल जानि परो की काह बडे ज्ञानी हैं ज्ञान विषय मन मोरे अब विषय सो मन मोरि लिये अवज्ञानी बने वा मोरे मन ज्ञान भो अपने मन विषय ऐसो कान्ह को चाही सो सपी अधिक हेर सनाही रहत है।"[5] यह अर्थ बिलकुल गलत है। इस लोकोक्ति का प्रयोग उद्धव-भ्रमर के लिये हुआ है न कि कृष्ण के लिये। स्वय तो भ्रमर रस मे आलिप्त रहता है और दूसरे को शुष्क ज्ञान की मरुभूमि मे चक्कर काटने को कहता है। किस गाव मे कितना धान हुआ है इसका अदाज उस गाँव मे पुआल के ढेर से हो जाता है। उसी प्रकार वैराग्य की चतुरता से ज्ञान का अदाज हो जाता है। इसी तरह का अर्थ पोद्दार जी ने किया है "जिस गाँव में धान होता है उसका पता पुआल देखने से ही लग जाता है। इसी प्रकार अमुक व्यक्ति मे ज्ञान कितना है इसका पता इसी बात से लगता है कि उसका मन विषयों से कितना मुडा हुआ है (भ्रमर के ज्ञान की थाह उसकी रसलोलुपता से ही लग जाती है।")[6] इसीलिये उस ढोंगी उद्धव की बात भला व्रज मे कौन सुने? जिसकी कथनी और करनी मे किसी प्रकार का साम्य है ही नहीं। सिद्धान्त तिलककार भी इससे सहमत दीख पडते हैं।[7]

---

१ श्री कृष्णगीतावली, रामायन सरन, पृष्ठ ४३
२ ,, गीताप्रेस, ,, ५०
३ ,, सिद्धान्त तिलक, ,, १०२
४ ,, सिद्धान्त तिलक, ,, १०४
५ ,, रामायन सरन, ,, ४५
६ ,, गीताप्रेस, पृ० ५२
७ ,, सिद्धान्त तिलक, पृ० १०७

४६वें पद मे अन्तिम पक्ति है—

> "कस मारि जदुबस सुखी कियो, स्तवन सुजस सुनि भीजें।
> तुलसी त्यों त्यो होइगी गरई ज्यों ज्यों कामरि भीजें।"

के नीचे की पक्ति का अर्थ रामायन सरन ने किया है "कमरी ज्यो ज्यो भीजति है त्यो-त्यो गरुई होति है भाव जैसे जैसे हम लोगो के वियोग तैसे तैसे तुम्हारे गरे परेगी बहुत मत समझाबो।"[3] हनुमान प्रसाद पोद्दार ने लिखा "तुलसीदास कहते है—कम्बल जितनी भीगेगी, उतनी ही भारी होती जायगी। उनके प्रेम की सरस स्मृति में जितना ही मन को डुबोओगी उतना ही वह भारी (दुखी) हो जायगी।[4] ये दोनों अर्थ गोपियो के प्रमोत्कर्ष के अनुकूल नही। कम्बल ज्यो-ज्यो भीगती है— वैसे-वैसे अधिक वजनदार भारी होती चलती है। तात्पर्य यह कि प्रियतम जितना अधिक वियोग का कष्ट देते हैं, वैसे ही हमारी सहनशीलता बढती जाती है हमारी दृढ निष्ठा का वजन बढता जाता है, हमारी प्रेम प्रतीति का गौरव बढता जाता है। इस अर्थ सौष्ठव पर ध्यान न देकर टीकाकारो ने ऊटपटाँग अर्थ किया है।

५६वाँ पद—

> ए दृढ़ निरत दरस लालचबस परे जहां बुद्धिबल न बसाई।
> तुलसीदास इह पर जो द्रवहिं हरि तो पुनि मिलो बैर बिसराई॥

अन्तिम पक्ति का अर्थ रामायन सरन ने लिखा है "बैर बिसरावनो की गोपी लोग हमारे उपदेश को खडन किया तो हमने ऊधो के साथ भेजा सो नही अगीकार किया तातें मेरो वैरी हसो नयन के नाते हरि हम लोगो के मिलहिंगे वैर बिसराइगो।" हरि के विरोध की बात न मालूम कहाँ से सरन ने जोड दी है। गोपियो ने तो ऊद्धव के द्वारा उनकी आज्ञा की अस्वीकृति तो भेजी नही। पोद्दार ने ऐसा ही गडबड अर्थ किया है "तुलसीदास कहते हैं कि यदि श्रीहरि इन पर (अपनी ओर से हो) द्रवित हो तो विरोध भुलाकर पुन आकर मिल लें (इन्हें दर्शन दे दें)[4]। गोपियो के साथ नेत्रो ने बडा वैर किया है। हरि के वियोग मे अत्यधिक जलन के कारण प्राण त्याग करना चाहिए था लेकिन नेत्रो ने जल बरसा कर बचा लिया। इससे बडा नेत्रो का वैर और क्या हो सकता है? अगर आज हरि दर्शन दें तो फिर उनसे (नेत्रो से) वैर भुला दूँ। क्योकि अगर नेत्र न होते तो फिर हरि के उपस्थित होने पर मन को कैसे उनके दर्शन का आनन्द मिलता।

६१वाँ पद—जिसका आरम्भ होता है "गहगह गगन दुदभी बाजी" है मे एक पक्ति है "सानुज सगन ससचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल साजी" है।

---

१ श्रीकृष्ण गीतावली, रामायन सरन, पृ० ८८
२ ,, गीतावलि ? पृ० ?४
३ ,, रामायन सरन, पृ० ६५
४ ,, गीताप्रेस, पृ० ७०

खाइ खल खाजी एक प्रचलित मुहावरा है जिसका अर्थ होता है "मुँह की खाना—पराजित होना।" लेकिन रामायन सरन ने इसका अर्थ किया है—

"खाइ पल पाजी का नाम त्रोघ पाइ मुख मलिन भयो"—बिलकुल बेतुका है।

उक्त पद की अन्तिम पक्ति है "तुलसी को न होइ सुनि कीरति कृष्ण कृपालु भगति पथ राजी' के भगति पथ राजी का अर्थ रामायन सरन ने लिखा है 'कृष्ण कृपालु भक्तिपथ राजी पथ मो कृष्ण कृपाल राजी हैं ऐसो सु।" यहाँ पर रामायन सरन ने पक्ति के अन्वय पर ध्यान नहीं दिया है। भक्ति पथ पर चलने के कर्ता हरि नहीं वरन् भक्तगण हैं। पोद्दार जी ने इसका अर्थ ठीक किया है "कृपामय श्रीकृष्ण की कीर्ति सुनकर ऐसा कौन है जो उनके भक्ति के पथ पर प्रसन्नता से नहीं चलेगा।"[1]

इस छोटी-सी पुस्तक में अर्थ सम्बन्धी पर्याप्त असगतियां हैं। बहुत सारी टीकाओं का उल्लेख इसलिए नहीं किया है कि लेखन स्फीत न हो। लेकिन निष्कर्ष तो एक ही है।

गीतावली की विभिन्न टीकाएँ

कृष्ण गीतावली की तरह गीतावली के शब्दार्थ एवं वाक्यार्थ में भी पर्याप्त मतभेद है। लेकिन इससे भी पर्याप्त असगति इन पदो के गूढार्थ मे दीख पडती है। प्रथम हमने अपने को शब्दार्थ और वाक्यार्थ तक को सीमित किया है।

शब्दगत

बालकांड के ८४वें पद की प्रथम पक्ति है "जयमाल जानकी जलजकर लई है" में जलजकर का अर्थ मुनिलाल ने करकमल किया है।[2] बैजनाथ जी ने जलजकर का अर्थ महुआ की माला किया है। हरिहर प्रसाद ने रघुवश ६।२५ के आधार पर जलज कर का अर्थ महुआ और दूब की माला किया है।[3] महुआ न तो सुगंधि के लिये विख्यात है और न जिस वसत ऋतु में विवाह हुआ है उसमें मजरित ही होता है। जलज कर का अर्थ *कमल की माला से ही* लेना चाहिए।[4] तुलसी शब्द सागर और सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर[5] मे जलज का अर्थ महुआ नहीं माना गया है।

अयोध्या कांड के ६६ वें पद मे "गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो" मे गारो के शब्दार्थ मे बडा मतभेद है। गीताप्रेस ने "गारो" का

१ श्री कृष्णगीतावली, पृ० ७३
२ गीतावली (बालकांड), गीताप्रेस, पृ० १५६
३ गीतावली हरिहर प्रसाद, पृ० १०५
४ तुलसी शब्द सागर पृ० १६८
५. सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ० ४११

अर्थ निन्दा करत ही रखा है।[1] बैजनाथ जी ने भी "गारी कहत" या निन्दा करत अर्थ ही रखा है।[2] हरिहर प्रसाद ने भी निन्दा करत ही रखा है।[3] संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में "गारो" को स० गौरव से व्युत्पन्न मानकर गर्व, घमंड, अहंकार, बड़प्पन, मानकर अर्थ लिखा गया है।[4] लेकिन तुलसी शब्द सागर में "गारो" को संस्कृत के तीन रूपों गर्व, गालन और गालि से व्युत्पन्न मानकर तीन प्रकार के अर्थ किए हैं। गर्व से व्युत्पन्न मानकर घमंड, अहंकार, मान गौरव, गुरु, बड़ा अर्थ। गालन से व्युत्पन्न मानकर—गलाया, गार दिया तथा गाली देना अर्थ और गालि से व्युत्पन्न मानकर निन्दी, बुराई, गाली देना अर्थ किया है और इसके उदाहरणस्वरूप गीतावली के अयोध्याकांड की इसी पंक्ति को उपस्थित किया है।[5] श्रीकान्तशरण जी ने "गारो" का अर्थ गौरव मानकर इस प्रकार लिखा है—"जो उनके साथ गये थे, वे प्रभु को वन में पहुँचाकर लौट आए, अब कर्म के गुणों का गौरव सिद्ध कर रहे हैं, अर्थात् कह रहे हैं कि कर्म के अधीन ही जीवन है, अन्यथा हम लोग विरह में न जीते।"[6] लेकिन यहाँ पर यह अर्थ बहुत ठीक नहीं मालूम पड़ता।

अरण्यकाण्ड के पद ७ में 'तुलसीदास रघुनाथ—नाम धुनि अकिनि गीध धुकि धायो।" में धुकि का शब्दार्थ बैजनाथ जी ने क्रोध किया है।[7] लेकिन अन्य किसी टीकाकार ने ऐसा अर्थ नहीं किया है। हरिहर प्रसाद ने धुकि का अर्थ वेग माना है।[8] तुलसी शब्द सागर ने भी धुकि का अर्थ—झपटकर या जल्दी से ही माना है और उदाहरण स्वरूप कृष्णगीतावली के १६ वें पद की 'बाँधि लकुट पट फेरि बोलाई सुनि कल बेनु धेनु धकि ऐंया" उपस्थित किया है।[9]

इस प्रकार के अनेक शब्द उपस्थित किये जा सकते हैं जिनके शब्दार्थ मात्र में ही त्रुटि है। सुन्दर कांड के ७ वें पद में "आरज सुवन के तौ दया दुवनहूँपर" में आरज सुवन का अर्थ आर्यपुत्र है। सीता भगवान् के लिए आर्यसुवन व्यवहृत कर रही हैं। पहले यह पद्धति ही थी कि स्त्रियाँ अपने पति के लिए "आर्यसुवन" का व्यवहार करती थी। लेकिन बैजनाथ जी ने "आरज कहो बड़े को ऐसे बड़े राजा दशरथ के पुत्र।"[10] तथा हरिहर प्रसाद ने "अज जो श्रेष्ठ दशरथ महाराज तिनके

१ गीतावली, गीताप्रेस, पृ० २८७
२ ,, बैजनाथ जी, पृ० २४७
३ ,, हरिहर प्रसाद, अयोध्या कांड पृ० ४३
४ संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ० ३१५
५ तुलसी शब्द सागर, पृ० १२४
६ गीतावली, सिद्धान्त तिलक, पृ० ५४७
७ ,, बैजनाथ, पृ० ३०५
८ ,, (अरण्य कांड) हरिहरप्रसाद पृ० ४
९ तुलसी शब्द सागर पृ० २४८
१० गीतावली—बैजनाथ, पृ० ३१८-१९

पुत्र"[1] लिखा है।

चरणगत

गीतावली मे ऐसी बहुत पक्तियाँ हैं जिनके अर्थ विभिन्न टीकाओ मे विभिन्न प्रकार से किये गये हैं। उन सारे अर्थों को देखकर सामान्य पाठक का भ्रमित हो जाना स्वाभाविक है। उदाहरण स्वरूप थोडी पक्तियाँ उपस्थित कर रहा हूँ।

बालकांड के ५१ वें पद मे "गुरु वसिष्ठ समुभाय कह्यो तब हिय हरषाने, जाने सेष सयन' का अर्थ है गुरु वशिष्ठ ने जब रामचन्द्र की महत्ता समझाकर कही तो राजा दशरथ ने भगवान् राम को शेषशायी जाना तथा हर्ष माना। इसमे 'शेष-शयन" का अर्थ बैजनाथ जी ने किया है "वशिष्ठ समुझायो कि विश्वामित्र द्वारा विवाह होनहार यज्ञ की रक्षा इनही करि होई अरु इनको मनुष्य न मानिये गो द्विज सुर साधु के रक्षक हैं इतनी बात प्रकट कहे साकेत विहारी परात्पर रूप को प्रसिद्ध नही कहे यह शेष कहे बाकी राखे ताको सैन बुझाइ समुझाइ हिये तब जानि रघुनाथ जी कि ये तो पररूप हैं ताते हर्षाने हृदय मे।" यह कष्ट कल्पना ही मालूम पडती है।[2] हरिहर प्रसाद ने इस पक्ति का अर्थ सरल जानकर छोड दिया है। श्रीकान्त शरण जी ने तथा मुन्नीलाल जी ने शेषशयन का प्रचलित अर्थ ही लिया तथा राम को नर सरक्षक परमात्मा माना है।

८३ वें पद मे "नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढाव चाप, देतो पै देखाइबल, फल पापमई है" मे फल पापमई है का तात्पर्य इतना ही है योग्य बडे भाई के ब्याह हुए बिना छोटे भाई का ब्याह होना पापमय है।[4] किन्तु बैजनाथ जी ने इसका विस्तार कर धार्मिक प्रवृत्ति वाले के लिए अनुचित अर्थ किया है "जो धनुष तोरे सो श्री जानकी जी को विवाहे याको अभिप्राय जानकी जो की माता की जगह पर हैं ताते अनुचित है जो यह पन न होतो तो प्रभु के प्रताप ते धनुष चढाय कै मैं उतरु जनक जी को देतो परन्तु बल को देखाइबे फल ताकी पापमयी है जगज्जननी जानकी विवाह हमको पापमयी है।"[5]

१०१ वें पद मे "तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई" पक्ति है। इसका अर्थ श्रीकान्त शरण जी ने इस प्रकार किया है कि उस राज समाज में रघुवशी राज-वश के पुत्र श्री रामरूपी सिंह को जगा दिया।"[6] गीताप्रेस से प्रकाशित टीका में

---

१ गीतावली, (सुन्दरकाड)—हरिहर प्रसाद, पृ० २३
२ " बैजनाथ जी, पृ० ९८
३ " सिद्धान्त तिलक, पृ० १६८
४ वही, पृ० २८२
५ , बैजनाथ, पृ० १३८
६ " सिद्धात तिलक, पृ० ३४२

लिखा है उस राज समाज मे रामरूप मृगराज को जगा दिया।[1] हरिहर प्रसाद ने "तेहि समाज मे रघुराज के मृगराज को श्रीराम तिनको जगावत भए अर्थात् उत्साह बढ़ावत भए" लिखकर उपयुक्त पंक्ति का अर्थ स्पष्ट किया है।[2] बैजनाथ जी ने "रघुनाथ" को ज्यो का त्यो छोड़कर "रघुराज को मृगराज सिंहस्थ श्री रघुनाथ जी तिनको जगावत भए" लिखा है।[3]

अयोध्या कांड के ५६ वें पद मे 'तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हों न्याय नाथ बिसरायो" का सरल अर्थ है कि 'प्रभु ने मुझे निष्ठुर जानकर मेरा परित्याग किया, वह उचित नही है।'[4] किन्तु इसका अन्वय ठीक नही करके बैजनाथ जी ने गलत अर्थ किया है "गोसाईं जी कहत कि श्री दशरथ जी प्रभु को निठुर जान्यो कहत न्याव बिसराय कैकेयी को अपराध हम को फल भोग।'[5] प्रभु को निठुर सिद्ध कर देने से तो महाराज की प्रेम-निष्ठा समाप्त होती दीखती है।

अरण्यकांड के ११ वें पद मे—

"फले फूलत बन बेलि विटप खग मृग अलि अवलि सुहाई।
प्रभु की दसा सो समै कहिबे को कवि उर आह न आई।"

नीचे की पंक्ति का अर्थ गीताप्रेस की प्रति मे इस प्रकार है "उस समय की प्रभु की दशा का वर्णन करने की कवि के हृदय मे हिम्मत नही रही।"[6] बैजनाथ जी ने लिखा है "ता समय की प्रभु की जो दशा है सो समुझि कवि के उर मे आह की पीर है ताते सो दशा नही कहि आई प्रभु विरह की दशा कहन नही बनी।"[7] श्रीकान्त शरण जी ने कवि से वाल्मीकि ग्रहण कर लिखा कि प्रभु की उस समय की वह दशा कहने के लिए (आदि) कवि (वाल्मीकि जी) के हृदय मे "आह" (कराहना, दुख या क्लेश सूचक शब्द) भी नही आई। पुन उन्होंने स्पष्ट किया है कि उनसे यह कैसे कहा गया। आश्चर्य की बात है मुझसे तो कहा नही जाता।[8] महर्षि वाल्मीकि ने छह सर्गों मे भगवान् राम के करुण विलाप विविध प्रकार से वर्णित किया है। प्रभु के विरह के कारण व्याकुल हो और उनका भक्त कैसे इसे सह सकता है, कैसे वर्णन कर सकता है ? हरिहर प्रसाद ने इस अर्थ मे और नमक मिर्च मिलाकर लिखा है "ता समय मे प्रभु की दशा कहिबे को कवि के उर मे आहन

---

१ गीतावली गीताप्रेस, पृ० १६४
२ " हरिहर प्रसाद, पृ० १०६
३ " बैजनाथ, पृ० १६०-१६१
४ " गीताप्रेस, पृ० २३८
५ " बैजनाथ, पृ० २३७
६ " गीताप्रेस, पृ० २७१
७ " बैजनाथ, पृ० २७८
८ " श्रीकान्त शरण, पृ० १३८

आई। भाव हिवे मे कवि जो समथ भए है सो बडी आश्चय की बात है। वा सो दशा कहिवे को कवि के उर मे आह कह समथता न आई।"[1]

अरण्यकाण्ड के ही १३वें पद मे "राघो गोद करि लीन्हो" वाले पद में "नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हो" मे अरघजल का अर्थ अर्घ्य जल मानकर मुनिलाल न नयन कमल द्वारा सनेह रूप पवित्रजल से मानो अर्घ्यदान किया है।[2] किन्तु हरिहर प्रसाद वैजनाथ जी तथा श्रीकान्तशरण जी ने अर्घ्यजल मानकर अर्थ किया है। वैजनाथ जी ने लिखा है "प्रभु के नेत्र कमलन ते सनेह सलिल आँसू गिरे मानो आधी तिलाजलि दे चुके।"[3] सिद्धान्त तिलककार ने अघ्यजल की व्याख्या करते हुए लिखा है "मरणासन्न मनुष्य का आधा शरीर गगा आदि की धारा मे रखकर आधा बाहर रखने की क्रिया को अघ्यजल देना कहा जाता है। उस समय उस मनुष्य से हरि नाम कहलाते हुए कुछ पवित्र जल उसके मुख मे दिया जाता है। इसका भाव यह है कि वह उत्तम स्थल मे एव गगाजल मे तथा हरिनाम लेता हुआ शरीर-त्याग करे, जिससे उसकी बहुत उत्तम गति हो।

यहाँ गृध्रराज मरणासन्न हैं और करुणामय, श्री रामजी उनकी दशा पर अत्यन्त करुण भाव से रो रहे हैं, इससे इतने आँसू चल रहे हैं कि मानो वे गृध्रराज को अघ्यजल दे रहे है। "सनेह सलिल सुचि यह स्नेह जल परम पवित्र है। अत, गगाजल से कहीं बढकर है, क्योंकि वह तो चरणामृत ही है और यह नयनामृत है।"[4]

इस प्रकार अगर "अघजल" या "अघ्यजल" कोई पाठ माने अर्थ में बहुत अतर नही पडता। भले अर्थ सौष्ठव मे ईषत् अन्तर आ जाता है।

अरण्यकांड के ही १७ वें पद मे—

> मजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र बरबानी भली।
> ज्यों कल्पबेलि सकेलि सुकृत सुफूल फूली सुख-फली॥

के अर्थ मे मतभेद है टीकाकारो जब पूर्णोपमा की सगति बैठायी जाती है। हरिहर प्रसाद ने लिखा "बलत मे सुन्दर मनोरथ करति है औ विप्रवर जो मतग ऋषि तिन की जो भली बानी ताको सुमिरति है। जो बानी रूप कल्पबेलि सुकृत बटोरि के सुन्दर फूल फूली रही सो अब सुख रूप फल फली।"[5] श्रीकान्त शरण जी ने इसी प्रकार का अथ किया है। उन्होने लिखा है "उसके मन मे सुन्दर मनोरथ हो रहे हैं, इस पर वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मतग ऋषि की श्रेष्ठ वाणी का स्मरण करती है। जैसे कोई कल्पना सुन्दर फूलो से फूलकर फिर फलती है, वैसे ही वह वाणी पहले एकत्रित

---

१ गीतावली, हरिहर प्रसाद, पृ० ७
२ " गीता प्रेस, पृ० २८०
३ " बैजनाथ पृ० २७६
४ " सिद्धान्त तिलक, पृ० ६३३
५ " हरिहर प्रसाद, अरण्यकांड, पृ० १२

सुकृत रूपी सुन्दर फूलों से फूली है, अब सुख रूपी फल से फल रही है।"[1] लेकिन वैजनाथ जी ने कुछ दूसरे प्रकार का अर्थ किया है। विप्र मतग ऋषि की वाणी को स्मरण करि मन मे उज्ज्वल मनोरथ करत है यथा कल्पलता नव सुकृतिन को वाटोरि सुन्दर फूलन सहित सुखरूपी फलन को फली हैं शवरी कल्पलता सुन्दर मनोरथ फूल प्रभुदर्शन फल।[2] वैजनाथ जी ने उपमा-निर्वाह पर ध्यान नहीं देकर ऐसी सगति बैठायी है। जब ऊपर मे विप्रवर वानी कह दिया गया तो कल्पलता शबरी को मानना युक्तिसगत नहीं। पुन जब प्रभु के दर्शन हुए ही नहीं तो फल भी कैसे प्राप्त हो गए। दर्शन होने वाले हैं, हुए नहीं हैं, ऐसा वैजनाथ को स्मरण रखना चाहिए। इसलिए वैजनाथ जी का अर्थ गलत मालूम पड़ता है।

इसी पद के सातवें चरण मे "सिर नाई आयसु पाइ गवने परम निधि पाले परी" का अर्थ वैजनाथ जी ने इस प्रकार किया है 'प्रभु आज्ञा पाई माथ नवाइ गवनी कही परमधाम् को जाती भई।[3] यहाँ कोल-किरात तो जीवित हैं इसलिए वे अपने घर ही गए होंगे, परमधाम जाने की बात प्रसग विरुद्ध है। गीताप्रेस की टीका[4] और श्रीकातशरण[5] की टीका मे धाम का अर्थ घर ही लिया गया है।

सुन्दरकाड के ४वें पद मे "सोध बिनु, अनुरोध ऋतु के, बोध विहित उपाउ" का सरलार्थ है कि ऋतु के अनुरोध से अर्थात् वर्षा ऋतु के कारण तुम्हारी शोध के लिए उचित उपायों का अवलबन नहीं किया जा सका था लेकिन इसमें "व्यवहृत" "रितु को रिपु" मानकर वैजनाथ जी और हरिहर प्रसाद ने बड़ा ऊटपटाग अर्थ किया है। वैजनाथ जी लिखते हैं 'रिपु को बोधक ही युद्ध करि जीति लेना सो कही खबरि बिना पाये रिपु के बोध को अवरोध कही रोक रहा विहित कही वर्तमान मे रिपु के बोध को जो उपाय है ताही समय के साधन की कर्तव्यता तेहि को सोई जो वानर रीछ है त करते हैं तिनका बनाव बनत ही कही खबरि तुम्हारी पावते हो फलत कही रिपु को बोध हो तही है यामें बानर सो विहित पद ते वर्तमान काल भयो त हेतु फलतकहा ताको अर्थ रिपु को बोध होत है लका भस्मेति निश्चय।'[6] हरिहर प्रसाद ने लिखा है "रिपु की खबर पाए बिना अनुरोध कह रोक रहत है अर्थात् कुछ बनत नाही तब रिपु के बोध मे जो विहित उपाय ताको सोक कस हैं।'[7] ये दोनो अर्थ ठीक नहीं हैं।

---

[1] गीतावली—सिद्धान्त तिलक, पृ० ६४।
[2] ,, —वैजनाथ, पृ० २८३
[3] ,, —वैजनाथ, पृ० २८७
[4] ,, —गीताप्रेस, पृ० २८८
[5] ,, —श्रीकांतशरण, पृ० ६५।
[6] ,, —वैजनाथ, पृ० २१४
[7] ,, —हरिहर प्रसाद, सुंदरकांड, पृ० ६७।

सुन्दरकाड के पांचवें पद—

बुद्धि बल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ।
सकल साज समाज साधक समउ, कहै सब कोउ॥

का अर्थ "इन्होंने बुद्धिबल, साहस और पराक्रम आदि उपयुक्त गुणों के रहते हुए भी इन्होंने छिपा रखा था क्योंकि समस्त साज-समाज का सिद्ध करने वाला समय है, ऐसा सब कोई कहा करते हैं।"[1] किन्तु बैजनाथ जी ने लिखा है "बुद्धि निश्शकता पराक्रम सब वर्तमान हैं परन्तु इनको हनुमान जी छिपाई राखे काहे ते सब कोऊ यह कहत हैं कि जैसी समय की समाज होइ तैसे साधक होवै को चाही यह विचार हनुमान जी बुद्धि के बल ते साहस पराक्रम को छिपाए राखे।"[2] बैजनाथ इस अर्थ मे बिलकुल भ्रमित दीख पडते हैं कि समाज के अनुकूल साधक को होना चाहिए तथा बुद्धि के बल से साहस को छिपा रखा है जो अभिप्रेत अर्थ नही है। हरिहर प्रसाद ने ऊपर कथित अर्थ किया है जो ठीक है।[3]

सुन्दर काड के ही ६ठे पद मे—

चित्रकूट कथा सुसल कहि सीस नायो कीस।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस॥

इसके अर्थ मे मुनिलाल,[4] बैजनाथ जी[5] तथा हरिहर प्रसाद[6] ने लिखा है कि चित्रकूट की कथा हनुमान जी ने सीता से सुनायी। लेकिन श्रीकान्तशरण जी ने चित्रकूट की कथा सीता द्वारा वर्णित बतायी है। प्रमाण स्वरूप उन्होंने वाल्मीकि रामायण ५।३८ तथा मानस सु० २६वें दोहे से सीता द्वारा ऐसे कथन उद्धृत किये हैं। लेकिन जहा तक अर्थ-सौष्ठव का प्रश्न है उपर्युक्त अर्थ अधिक सुन्दर मालूम पड़ता है। जब जरा सा चोंच मारने पर प्रभु जयन्त का ऐसा हाल कर सकते हैं तो फिर लका मे ले जाने पर ऐसा अन्याय करने पर रावण के साथ कैसा बर्ताव करेंगे— यह सहज अनुमेय है।

सुन्दर काड के ही २१वें पद मे—

सिय वियोग सागर नागर, मन बूडन लग्यो सहित चित चैन।
लही नाव पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यौ गुन मैन॥

के अर्थ कई प्रकार से किए गये हैं।

---

१ गीतावली—सिद्धान्त तिलक, पृ० ६७१
२ ,, —बैजनाथ, पृ० २१६
३ ,, —हरिहर प्रसाद, सुन्दरकाड पृ० २०
४ ,, —गीताप्रेस, पृ० २६६
५ —बैजनाथ पृ० २१७
६ ,, —हरिहर प्रसाद सुन्दरकाड पृ० २२

श्रीजानकी जी के वियोग रूपी समुद्र मे श्री रामजी का रूप चतुर तैराक अपने चित्त के आनन्द के साथ डूबने लगा, उसी समय श्री हनुमान जी की प्रसन्नता रूप नाव का सहारा प्राप्त हो गया, वहा पर (उस तैराक मन ने) कामदेव रूप रस्सी को हठात् पकड लिया (इससे डूबने से बच गया।)[1] इसका अर्थ बैजनाथ जी ने इस प्रकार किया है "श्री जानकी जी के वियोग रूपी समुद्र मे प्रभु को मननागर कहे चतुर तेहि सहित चित्त को आनन्द बूड़न लग्यो तेहि अवसर मे पवनज जो हनुमान जी तिनकी जानकी जी के देखि आइबे की प्रसन्नता रूप जहाज पाये तहाँ सयोग सुख रूपी वायना रूपगुण कहे डोरी ताको कन्दर्प ने बरबस अवरई गहिरास्यो मेन मन को खैंच ताने बहिवे नही पायो।"[2] हरिहर प्रसाद ने इस प्रकार इसकी व्याख्या की "जानकी जू के वियोग रूपी समुद्र मे श्री राम जू के मन मे जो नागर सो अपने चित्त के आनन्द सहित बूड़न लग्यो तहाँ पवनसुत की प्रसन्नता रूप नौका लही पर तहाऊँ तरबस ते काम ने गुन गह्यो। भाव मन को खीच्यो पवनजप्रसन्नता को नउका कहिवे को यह भाव कि इन की प्रसन्नता ते जानि परत है रावण सीअजीत्यो जायगो।"[3]

बैजनाथ और हरिहर प्रसाद के ग्रथ मे पर्याप्त भ्रान्तियाँ हैं। अतएव पहले अर्थ का ग्रहण ही ठीक है।

लकाकाड के १०वें पद—

देख्यो जात जानि निसिचर, बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि, पुर तेहि तेज पियो है॥

मे "पुर" शब्द को लेकर नीचे की पंक्ति का अर्थ उलट-पुलट हो गया है। गीता प्रेस ने लिखा है "पवन ने पर्वत को रोक लिया मानो नगर ने उनका तेज पी लिया हो।"[4] बैजनाथ जी ने लिखा है "भरत जी निशाचर जानि बिना गासी को बाण हृदय मे हयो कही मारे ताके लागत राम राम कहि हनुमान जी गिरि परे अरु पवत को पवनदेव न रोकि राख्यो जामे अवधपुर दवि जाइ ताही पवन के सहायता ते पवत गिरिवे को जो वेग तेहि तेज को पणपयो कही पान करि गयो भाव यथा कोऊ चोट मारे ताको कछू न माने सोई पी जायो है यथा घोडा को कोडा मारो सो पी गयो।"[5] अयोध्या नगरी हनुमान के तेज को कैसे पी जायगी—समझ में बात नहीं आती। हरिहरि प्रसाद ने लिखा है 'भरत जू हनुमान जी को जात देखे निश्चर जानि कै बिनु फर को बान हृदय मे मार्यो, तेहि बान ने पुर कहे सम्पूर्ण हनुमान जी

[1] गीतावली—सिद्धान्त तिलक, पृ० ७१७
[2] ,, बैजनाथ, पृ० ३१५
[3] ,, हरिहर प्रसाद, अ.दरकाड, पृ० ३४
[4] ,, गीताप्रेस, पृ० ३६४
[5] ,, बैजनाथ, पृ० ३३८-३६६

के तेज को पी लियो।''[१] इसी प्रकार का अर्थ श्रीकान्त शरण जी ने किया है "उस चौथे बाण ने ही श्री हनुमान जी के पूर्ण तेज को पी लिया।''[२] "पुर" को पूर्ण अर्थ तुलसी शब्द सागर[३] और संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर[४] से भी समर्थित है। पुर का नगर अर्थ मान लेने से असंगत सा लगता है।

उत्तरकांड के २३ वें पद में "नगर रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधिबन्द" का अर्थ है श्री अवध की रचना सीखने के लिये ब्रह्मा जी बहुत से रचना के भेद ताका करते हैं।[५] हरिहर प्रसाद ने "बन्द" पाठ रखकर लिखा है "नगर रचना सीखने को बन्द कहे प्रकार बहु विधि ते विधाता तकत हैं।[६] किन्तु गीताप्रेस की टीका और बैंजनाथ ने 'बन्द'' को "वृंद' मानकर कुछ अजब अर्थ किया है। गीताप्रेस का अर्थ तो ऊपर जसा ही खींचकर रख दिया है[७] लेकिन बैंजनाथ जी ने थोड़ा कमाल दिखलाया है। श्रीअवधनगर की दिव्य विचित्र रचना सीकवे हेत विधाता नगर को बहुत प्रकार तें वृन्द-वृन्द देखते हैं' [८] लिखा है।

२५वें पद—

जन कोउ न जानकी बिनु अलख लखाउ
राम जोगवत सीय मन, प्रिय मनहिं प्रान प्रियाउ,
परम पावन प्रेम परमिति समुझि तुलसी गाउ।

का अर्थ बैंजनाथ जी ने इस प्रकार किया है "अनुज भरतादि सेवक हनुमानादि सचिव सुमन्त्रादि अपरभरा के ते सुन्दर बुद्धि हैं पर प्रभु को अगम अलखत लखाउ चरित्र ताको दूसरा नहीं जान सकत। परस्पर सम प्रति के पवित्र के पवित्र परम प्रेम को मर्यादा सुमझि तुलसी गावत है भाव परस्पर प्रीतिकरि प्रेम तो अगम है पर यह नर नाट्य लीला है ताको कौन जाननहार है"—यह अर्थ बिलकुल स्पष्ट नहीं हो पाया है। इसका अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—भगवान् की अलख गीत को जानकी जी के सिवा कोई नहीं जानता था। क्योंकि भगवान् राम सीता जी के मन को सुरक्षित रखने वाले हैं और सीता जी भगवान् राम के। दोनों में परम प्रेम पराकाष्ठा पर पहुँच गया था—ऐसा समझकर तुलसीदास उसका गान करते हैं।

१ गीतावली—हरिहर प्रसाद, लंकाकांड, पृ० ६१
२ ,, सिद्धान्त तिलक, पृ० ८३२
३ ,, तुलसी शब्द सागर, पृ० ३०२
४ ,, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ० ७५१
५ ,, सिद्धान्त तिलक, पृ० ६६
६ ,, हरिहर प्रसाद, उत्तरकांड, पृ० ३३
७ ,, गीताप्रेस, पृ० ४२६
८ ,, बैजनाथ, पृ० ४४०

उत्तरकांड के २६ वें पद—

तापसी कहि कहा पठवति नृपति को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहि है साधु कोउ हितकारि॥

का अर्थ बैजनाथ जी ने लिखा है "काहे ते नृपति को मनहरणहारी ताको तपसी कहि तापसी बनाय कहा पठवत हो तेहि विधिपूर्वक वामागी आदि नाम करि कोऊ साधु हितकारी करेगो।"[1] मुनिलाल ने लिखा है' मैं तपस्विनी होकर भला राजाओं के अनुकूल वचन क्या कहला भेजूँ। मुझे विश्वास है कि (जिस प्रकार मेरे विरुद्ध बातें अयोध्या मे कही गई हैं) उसी प्रकार इस बार कोई सज्जन पुरुष आकर मेरे अनुकूल बातें भी कहेगा।[2]

श्रीकान्त शरण जी ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है 'यह सुनकर महर्षि के द्वारा सेवाय नियुक्त एक तपस्विनी ने कहा कि आप राजाओं को प्रार्थना क्यों कहकर भेजती हैं। फिर उसी तपस्विनी की भाँति कोई एक हितकारी साधु भी वहाँ आकर आश्वासन के वचन कहे हैं।[3]

गूढार्थ

गीतावली मे ऐसे स्थलों का अभाव नही जिनका स्पष्टीकरण साधारण अर्थ से नही हो पाता। टीकाकारों ने उन गूढ स्थलों की व्याख्या नही करके सामान्य पाठक को बड़ी उलझन मे डाल दिया है। और भी यह बात स्मरण रखनी चाहिये काव्य जितना अपने वाह्य शब्दार्थ मे है उससे कहीं बढ़कर अपने आन्तरिक अर्थ (Internal-meaning) मे। इस छोटे प्रबन्ध मे उन सारे स्थलों पर विचार करना सम्भव नहीं जिनकी व्याख्या अपेक्षित है लेकिन उदाहरणार्थ, एक स्थल की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाह रहा हूँ।

अयोध्याकांड पद १ मे "महाराज भलो काज विचारयो वेगि बिलम्ब न कीजै" पंक्ति आई है। इस चरण के तीन खंड हैं। (१) महाराज, (२) भलो काज विचारयो तथा (३) वेगि बिलम्ब न कीजै। इन तीनों खंडों की व्याख्या से अर्थ की कैसी छायायें निकलती हैं इन पर टीकाकारों ने ध्यान नही दिया है। टीकाकार का कार्य शब्दार्थमात्र लिख देना नहीं वरन् अर्थ की अपरिमित छायाओं (Immeasurable shades of meaning) का उद्घाटन करना है। महाराज पद मे राजा दशरथ का शासन गौरव ध्वनित होता है किन्तु जिस चक्रवर्ती सम्राट् के शासन मे किसी व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट हुआ ही नहीं उस शासन को छोड़कर राम के राज्य की आकांक्षा क्यों? राजा दशरथ का शासन तो परीक्षित हो चुका है किन्तु राम का नहीं। वाल्मीकि रामायण मे राजा ने अपने इस प्रस्ताव को अपने सभासदों

[1] गीतावली—बैजनाथ, पृ० ४४६
[2] ,, गीताप्रेस, पृ० ४३८
[3] ,, सिद्धान्त तिलक पृ० ११८०

के समक्ष रखकर पूछा है कि आखिर आप क्यों किसी दूसरे व्यक्ति का शासन चाहते हैं। तब लोगों ने उत्तर दिया कि आप तो धर्मनिष्ठ शासक थे किन्तु आपके पुत्र में और भी लोकोत्तर गुण हैं और उनके शासन में हम लोगों को आनन्द ही मिलेगा। आपके पुत्र विष्णु के समान हैं और हम लोगों के कल्याण के लिए उन्हें शीघ्र राज्याभिषिक्त करें।[1] अत जब राजा ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा तब यह कार्य बड़ा उत्तम रहा। यही भाव इस चरण के दूसरे खंड "भजो काज विचारयो" से व्यक्त हो रहा है।

जब राम को राजा बनाना ही है तो इतनी शीघ्रता क्यों ? और जब वशिष्ठ ने तुरत तैयार करने को कहा तो फिर नीचे के चरण मे "विधि दाहिनो होइ" क्यों कहा। इसका अर्थ स्पष्ट है कि वशिष्ठ जी स्वयं इस राज्याभिषेक के बारे में संदिग्ध हैं। यद्यपि वशिष्ठ जी को सर्वज्ञ कहा गया है फिर भी वे जीव ही हैं। जीव का अणु स्वरूप है अत उसकी सर्वज्ञता भी सीमित है। अगर ध्यानमग्न होकर वे देखते तो उन्हें यथार्थ का ज्ञान हो जाता। किन्तु शीघ्रता में उन्होंने तैयारी करने को कह दिया लेकिन ईश्वर की लीला कुछ विचित्र थी इसलिए मृषा-दोष से मुक्त करने के लिए उनसे 'विधि दाहिनो' कहला दिया गया।

इस तरह तुलसी की गीतावली में ही नहीं, श्री कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका के गूढार्थ पर टीकाकारों ने ध्यान नहीं दिया है। ऐसे अध्ययन के लिए किसी विशाल ग्रंथ की आवश्यकता है।

विनयपत्रिका की टीकाएँ

तुलसी साहित्य में सर्वातिशय निगूढ़ रचना विनयपत्रिका ही है। इसलिए इसके अर्थ में टीकाकारों को भ्रम हो जाना स्वाभाविक है और भी एक बात स्मरणीय यह है कि यह पत्रिका है। पत्रिका की भाषा चाहे कितनी भी सरल क्यों न हो लेकिन अभिप्रेत तात्पर्य पत्राचार करने वाला ही जान सकता है। लेकिन कभी-कभी पत्र के *कथ्य का अनुमान उसका अभिन्नतम मित्र कर सकता है।* इसलिए जो व्यक्ति महाकवि भक्तशिरोमणि तुलसी की तरह तपोनिष्ठ साधनारत हो वे इस पत्रिका काव्य के मर्म का हृदयंगम कर सकते हैं।

विनयपत्रिका की टीकाएँ बहुत हैं। कुछ प्रमुख टीकाओं में पायी जाने वाली असंगतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करना मेरा उद्देश्य है।

शब्दगत

विनयपत्रिका के १८७ वें पद में—

बसत हिये हित जानि मैं सब की रुचि पाली।
कियो कथित कोदंड हौं जड कर्म कुचाली॥

---

[1] त देवदेवोपमनात्मज ते सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम्।
हिताय न क्षिप्रमुदारजुष्ट मुदाभिषेक्तु वरद त्वमर्हसि॥
—वाल्मीकि रामायण २।२।५४

ही है, जैसे मछली सुख से जल में रहती हुई कभी कभी उछलकर फिर उसी में घबराकर गोता लगा जाती है। साराश, उसे जैसे क्षण भर का जल वियोग सहन नहीं होता, वैसे ही मेरा चित्त चातक तरह प्रेमजाल से अलग होने पर घबरा जाता है और फिर उसी के लिए चेष्टा करता है।'[1] यह अर्थ बड़ा विचित्र मालूम पड़ता है कि तुलसी जैसा भक्त स्वयं कहे कि मेरे मन में कुमनोरथ कभी-कभी उठते हैं जो भक्त अपने को सभी कल्मषों, दुराचारों की खान मानता है वही कैसे कहेगा कि मुझमें बुरी वासनाएँ कभी कभी उठती हैं। वस्तुतः इस गड़बड़ी का कारण मनोरथ के साथ 'कु' जोड़ देना ही है। हरिहर प्रसाद,[2] बैजनाथ जी,[3] पं० रामेश्वर भट्ट,[4] देवनारायण द्विवेदी,[5] महावीर प्रसाद मालवीय[6] तथा लाला भगवानदीन[7] ने वैसा ही अर्थ किया है। श्रीकान्त शरण जी ने "मनो मनोरथ" पाठकर अर्थ किया है। भगवानदास जी के प्रति भी ऐसा पाठ है जो प्राचीनतम प्रति है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है 'जैसे मछली किसी डर से पानी से उछलकर जल से पृथक एवं ऊपर होकर फिर तुरन्त उसी जल में लीन हो जाती है। वैसे ही मेरा चित्त कभी भव-भय का स्मरण कर क्षण भर के लिए विषय से पृथक् हो आपके स्नेहसुख के लिए आपकी कृपा का अभिलाषी होता है फिर उसी विषयानंद में निमग्न हो जाता है तो इससे कल्याण की कौन आशा की जाय ? यह काल कर्म की परतन्त्रता में ऐसा जकड़ा हुआ है जैसे जल में मछली।'"[8]

१८३ वाँ पद—

> राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है
> बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूरि करै,
> ऐसी विरदावलि बलि बेद मनियत है।"

में "बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई" में बड़ा मतभेद है। वियोगी हरि ने इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है "आप बड़ों का बड़प्पन (अर्थात्) अभिमानियों का गर्व एवं छोटे की छोटाई अर्थात् अकिंचन दीन जनों की दीनावस्था दूर कर देते हैं।[9]

---

१ विनयपत्रिका वियोगी हरि, पृ० ३१२
२ ,, हरिहर प्रसाद, पृ० २५०
३ ,, बैजनाथ पृ० २६६
४ ,, पं० रामेश्वर भट्ट, पृ० २३०
५ ,, देवनारायण द्विवेदी, पृ० २३३
६ ,, महावीर प्रसाद मालवीय पृ० ११२
७ ,, लाला भगवानदीन, पृ० १८०
८ ,, श्रीकान्त शरण, पृ० १०६७
९ ,, वियोगी हरि, पृ० ५५८

ऐसा ही अर्थ हरिहर प्रसाद जी,[1] लाला भगवान दीन,[2] प० रामेश्वर भट्ट,[3] हनुमान प्रसाद पोद्दार[4] तथा देवनारायण द्विवेदी[5] ने किया है। बैजनाथ जी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है "ईश्वर के लग कोऊ छोटा बडा नही है जीव मात्र पर एक दृष्टि है तथा माधुर्य मे वेदविधिने विदित है कि आपके प्रताप ते गाय बाघ एके घाट पर पानी पियत।"[6] श्रीकान्त शरण जी न इसका अर्थ दूसरे प्रकार से किया है—"आप बडे हैं, इस अपने बडप्पन को और छोटो के छोटेपन को दूर कर देते हैं। अर्थात् प्रीतिवश उनके साथ तुल्य भाव से व्यवहार करते हैं।"[7]

श्रीकान्त शरण जी ने बडे बडप्पन से तात्पर्य ईश्वर के बडप्पन से लिया है। वह भक्तो के निकट इतने छोटे बन जाते हैं कि क्या कहना। किन्तु पडित महावीर प्रसाद मालवीय ने ऐसा लिखा "आप प्रीति की रीति को भली भाँति जानते हैं। बडे की बडाई करना और छोटाई की छोटाई दूर करना ऐसी आपकी अच्छी नामवरी वेद मानते हैं।[8] तात्पर्य यह कि भगवान् प्रीति की रीति अच्छी तरह जानते हैं। उनकी शरण में जो बडा आया तो उसे और बडप्पन प्रदान करते हैं। शिव उनकी उपासना करने से और भी बडे हो गए। शबरी जैसी नीच भी उनकी भक्ति पा महान् बन गयी। यह अर्थ अधिक संगत मालूम पडता।[9]

वाक्यगत अर्थ में अन्तर

२२९वॉं पद मे "कहा भयउ मन मिलि कलिकालाई, कियेउ भोंजवा भौंर को हौं" का अर्थ लिखते हुए प० महावीर प्रसाद मालवीय ने लिखा 'क्या हुआ जो मन कलिकाल से मिलकर मुझे भवर का चक्कर खाने वाला बना रखा है।'[10] इसकी व्याख्या करते हुए उन्होने लिखा "पद मे भोंतुवा" शब्द का अर्थ न जानने के कारण प्रायः लोगो ने पाठ बदल दिया है। किसी ने भूरुट भुरुटुआ और किसी ने भुरुट, भूरुहा बनाकर तदनुसारटी का भी कर डाली है। बाबू हरिहर प्रसाद ने 'भोंतुवा' पाठ माना है और हस्तलिखित प्रतियों मे भोंतुवा ही है। यह युक्तप्रान्त के अधिकाश किसानो का व्यावहारिक शब्द है। रस्सी बनाने के लिये लकडी का एक यन्त्र बनाते हैं।[11] प० रामेश्वर भट्ट तथा बैजनाथ

१ विनयपत्रिका हरिहर प्रसाद, पृ० २६३
२. ,, भगवानदीन, पृ० ३१४
३ ,, प० रामेश्वर भट्ट, पृ० २५५
४ ,, हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ० २८५
५ ,, देवनारायण द्विवेदी, पृ० २५६
६ ,, बैजनाथ, पृ० ३३५
७ ,, श्रीकान्त शरण जी, पृ० ११७३
८ ,, महावीर प्रसाद मालवीय, पृ० २४२
९. ,, महावीर प्रसाद मालवीय, पृ० २६३
१० ,, ,, ,, पृ० २६३
११. ,, रामेश्वर भट्ट, पृ० ३१४

जी[1] ने "मुरट" पाठ मानकर काला कीड़ा अर्थ किया है इसके अतिरिक्त वियोगी हरि[2], हरिहर प्रसाद[3], श्री कान्तशरण जी[4], हनुमान प्रसाद पोद्दार[5], देवनारायण द्विवेदी[6], लाला भगवानदीन तथा प० विश्वनाथ चौबे[7] तथा नागरी प्रचारिणी से प्रकाशित तुलसी ग्रथावली के सपादकों[8] ने "भौंतुना" पाठ मानकर जो के बराबर काला कीड़ा ही अर्थ किया जो नाव के पास चक्कर काटता है। तुलसी शब्द सागर मे भी यही अर्थ है तथा उदाहरणस्वरूप विनयपत्रिका का यही पद उद्धृत किया गया है।[9] इसमे अधिकाश टीकाकार युक्तप्रदेश के वासी हैं। पता नहीं मालवीय जी को युक्तप्रान्त के कौन से गाँव इस प्रकार का अर्थ मिल गया। भौंर मकर के साथ कीड़ा का सम्बन्ध ही उचित जान पड़ता है।

२४७वें पद मे—

> रोप्यों विंध, सोख्यो सिंधु घटज हू नाम बल,
>
> हारयोहिय, खारो भयो भूसुर डरनि।

विनयपत्रिका के सभी टीकाकारो ने खारो भयो भूसुर डरनि का अर्थ अगस्त्य से सम्बन्धित माना है। उनके विचार से अर्थ होता है कि नाम की शक्ति स घटयोनि अगस्त्य ऋषि ने भी विन्ध्य को रोक दिया तथा समुद्र को सोख गये। पुन उन्ही ब्राह्मण के डर से समुद्र का जल खारा हो गया। अब प्रश्न यह उठता है कि जब अगस्त्य ऋषि समुद्र सोख ही गए तब जल कहाँ बचा जो नमकीन हो जाए। ऐसा कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता कि अगस्त्य जी ने समुद्र सोखकर स्वय भर दिया हो। जब भागीरथ द्वारा लाई गई गगा के जल ने समुद्र को भर दिया तब से शायद डर से समुद्र जल ने अपने को खारा बना लिया हो ताकि अपय जल को कोई सोख न पाए। लेकिन समुद्र खारा होने की कथा महाभारत शान्तिपर्व ३४२।६० ६१ मे है बडवामुख नामक महर्षि न सुमेरु पवत पर तपस्या करते हुए समुद्र का आह्वान किया। परन्तु समुद्र नहीं आया, तब उन्होंने क्रुद्ध होकर अपने शरीर की ताप से समुद्र को भिगाया। उनका पसीना भरने स समुद्र का जल खारा हो गया। उन्होंने समुद्र से कहा कि तुम अपेय होगे। बडवामुख ऋषि के रोमकूप से नि सरित स्वेद लवण युक्त इसलिए

---

१. विनयपत्रिका बैजनाथ, पृ० ४१८
२ " वियोगी हरि, पृ० ४५१
३ " हरिहर प्रसाद, पृ० ३१३
४ " श्रीकान्त शरण, पृ० १३८६
५ " गीताप्रेस, पृ० ३६६
६ " देवनारायण द्विवेदी, पृ० ३१६
७ " लाला भगवानदीन तथा प० विश्वनाथ चौबे, पृ० ३६१
८ " काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ४७३
९ " तुलसी शब्द सागर, पृ० ३७३-३७४

हो पाए कि उन्होंने नाम जप किया था। इसलिए इस मनकथा को स्वीकार करके ही अर्थ करना उचित है।

२४८ वें पद में—

जब जब जगजाल व्याकुल करम काल,
सब खल भूप भये भूतल भरन।

इन पंक्तियों का अर्थ वियोगी हरि जी ने इस प्रकार किया है 'जब-जब आपके भक्त जगज्जाल में फँसकर दुखी हुए, काल और कर्म के वश में जा पड़े और पृथ्वी पर दुष्ट राजे भारस्वरूप हुए।'[1] हनुमान प्रसाद पोद्दार,[2] पं० रामेश्वर भट्ट,[3] महावीर प्रसाद मालवीय[4] लाला भगवानदीन तथा पं० विश्वनाथ चौबे[5] ने इसी प्रकार अर्थ किया है। देवनारायण द्विवेदी ने लिखा "जब-जब संसार जाल से तथा कर्म और काल से व्याकुल होकर सब राजा दुष्ट हो गए और उनसे पृथ्वी भर गई[6]" श्रीकान्त शरण जी ने इसका अर्थ लिखा "जब-जब जगत् समूह कर्म और काल के व्याकुल हुआ है और सारे दुष्ट राजा पृथ्वी के भार हुए हैं।"[7] बैजनाथ जी ने भी इसकी व्याख्या इस प्रकार की है 'जगजाल जामे सुर, नर, नागादि चराचर देहन में जीवन जग में फंसे हैं अर्थात् आकाश पवन, अग्नि जल, पृथ्वी स्थूल रूप तथा सूक्ष्म रूप ते शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि में पच्च यावत् चराचर जीव हैं सो जब कराल काल माया तब कर्म भी असत् होने लगे अरु सब भूप ताते सब दुष्टन करिके पृथ्वी भरि गई तब चराचर को महादुःख होने लगा ताते सब व्याकुल भए इति जब-जब जगजाल व्याकुल भया धर्म, कर्म लोप भया था ते पृथ्वी गए भाई गई।'[8]

२७५ वां पद में ये पंक्तियां हैं—

तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिना हू
नाम की महिमा सील नाथ को मेरो भलो,
बिलोकि जब ते सकुचहु सिहाहु।

इसका अर्थ वियोगी हरि ने इस प्रकार किया है। 'हे नाथ आपके नाम की महिमा तथा शील ने मेरा भला किया, यह देखकर अब मैं मन ही मन लज्जित होता हूँ और प्रशंसा करता हूँ।'[9] इसके अतिरिक्त लाला भगवानदीन तथा पं० विश्वनाथ

१. विनयपत्रिका, वियोगी हरि पृ० ४८८
२ ,, पोद्दार, पृ० २८६
३ ,, पं० रामेश्वर भट्ट, पृ० ३३५
४ ,, महावीर प्रसाद मालवीय, पृ० ३१०
५. ,, लाला भगवानदीन, पृ० ४१७
६ ,, देवनारायण द्विवेदी, २४८
७ ,, श्रीकान्त शरण, पृ० १४७५
८. ,, बैजनाथ, पृ० ४४६
९. ,, वियोगी हरि, पृ० ४५६

दुबे, हनुमान प्रसाद पोद्दार, महावीर प्रसाद मालवीय, देवनारायण द्विवेदी तथा हरिहर प्रसाद ने इसी प्रकार का अर्थ किया है। उन लोगो 'ते" मतलब भलाई से ले रहे हैं जो तुलसी की हो रही है। वैजनाथजी ने लिखा "ऐसी राम नाम की महिमा है कि कलियुग मे म्वाहि ऐसे अधम आलसी जो पेट हेतु रामनाम लिहेउ ताहू को नाम प्रभु के सम्मुख करि दिया पुन रघुनाथ जी को शील अर्थात् मोहि ऐसे नीच को सम्मान करि बडाई दीन्ह इत्यादि मेरो भलो विलोकि देखिके जे पूर्व मेरा अनादर किहे रहे ते अब प्रणाम करते हैं सो पूर्व बात सुधि करि सकुचाते हैं पुन ऐसी बडाई हमको न फिर भी इति सिहाते अर्थात् ललचाते हैं इत्यादि विचारि हे रघुनाथ जी। मेरे दृढ़-करि एक आप ही को शरण रहने की टेक है।"[1] श्रीमान शरण जी ने भी ऐसा ही अर्थ किया है।[2] नीचे वाला अर्थ अधिक युक्ति सगत मालूम पडता है। तुलसी ने पहले अपने कष्टो और उपेक्षा का वर्ण किया है इसलिए राम की महिमा के कारण ही लोग जो पहले उनके भाग्य पर तरस खाते थे, अब सिहाते हैं।

२७६ वें पद मे—

राम! रावरे बिनु भये जन जनमि जनमि जग दुख दसहु दिसि पायो,
आस बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुहु जनायो।

नीचे की पक्ति मे टीकाकारो मे मतभेद है। वियोगी हरि ने लिखा "आशा के मारे खास दास होकर भी अपने को क्षुद्र प्रभुओ के आगे जताता फिरा (यद्यपि जन्म से ही मैं आपका दास हूँ, तत्वत जीवपरमात्मा का अशत्वम्प है, किन्तु झूठी आशा के वश होकर ससार के नीच मनुष्यो को अपना प्रभु मान उनसे अपनी राम कहानी कहता फिरा।")[3] लेकिन यह अर्थ ठीक नही। तुलसी अपनी उस स्थिति का वर्णन कर रहे हैं जब तक वे भगवान् श्री राम की शरण मे नही आये। वैजनाथजी, हनुमानप्रसाद पोद्दार, प० रामेश्वर भट्ट, हरिहर प्रसाद तथा देवनारायण द्विवेदी, लाला भगवानदीन ने ऐसा ही अर्थ किया। लेकिन श्रीकान्तशरण जी[4] तथा महावीर प्रसाद मालवीय ने इससे भिन्न अर्थ किया है। मालवीय जी ने लिखा है—"आशा के अधीन नीच स्वामियो का विशेष दास होकर जनाया,"[5]

२७८ वें पद मे—

प्रीति रीति समुझाई प्रीनतपाल।
कृपालुहि परमिति पराधीन की॥

का अर्थ वियोगी हरि जी ने इस प्रकार किया है—"भक्त वत्सल दयालु

१ विनयपत्रिका वैजनाथ, पृ० ४१७
२ ,, श्रीकान्तशरण, पृ० १५१४
३ ,, वियोगी हरि, पृ० ५४८
४ ,, श्रीकान्तशरण, पृ० १५१७
५ ,, महावीर प्रसाद मालवीय, पृ० ३३६

रघुनाथ जी ने मुझे परतन्त्र जीव की प्रेम पद्धति की हद को समझाकर कह देना।" लेकिन इस अर्थ मे एक व्याघात है कि गोस्वामी जैसा दीनभक्त स्वय अपने मुँह से कैसे कहेगा कि भगवान का मेरी पद्धति की पराकाष्ठा समझा कर कह देंगे। इससे बढकर धृष्टता हो ही नहीं सकती है। बैजनाथ जी हरिहर प्रसाद, प० रामेश्वर भट्ट, महावीर प्रसाद मालवीय हनुमान प्रसाद पोद्दार, देवनारायण द्विवेदी लाला भगवान दीन तथा प० विश्वनाथ प्रसाद चौबे ने ऐसा ही अर्थ किया है। श्री कान्त शरण जी ने इसमे थोडा परिवर्तन किया है। उनका कहना शरणागत पालक और कृपालु श्रीराम जी को मुझ पराकाष्ठा के पराधीन की प्रीति रीति समझाइयेग (कि कलिकाल एव उसके अनुचर काल, कर्म, गुण, स्वभाव एव कामादि की अत्यन्त पराधीनता से जकड़ा हुआ भी तुलसीदास ने आप मे इस प्रकार की प्रीति की रीति का निर्वाह किया है।")[1]

पाठभेद के कारण अर्थ मे अन्तर

कहीं-कहीं पाठभेद के कारण भी अर्थ मे उलट फेर देखने को मिलता है।

१३५वें पद मे—

हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई[2]

पाठ प्राय विनय-पत्रिका की सारी प्रतियो म मिलता है। इसी पाठ को हनुमान प्रसाद पोद्दार, वियोगी हरि, लाला भगवान दीन तथा प० विश्वनाथ प्रसाद चौबे महावीर प्रसाद मालवीय तथा बैजनाथ जी ने स्वीकार किया है। सिवहि सिवता की जगह पर हरिहर प्रसाद, प० रामेश्वर भट्ट तथा श्रीकान्त शरण जी ने 'श्रियहि श्रियता' पाठ माना है। लेकिन सिवहि सिवता माने या 'श्रियहि श्रियता" अर्थ मे विशेष अन्तर नही पडता। विष्णु, ब्रह्मा के साथ शिव की चर्चा अधिक युक्ति समत मालूम पडती है।

२४१वें पद की अन्तिम पंक्ति है—

अब तुलसी पूतरो बाधि है सहि न जात मोपै परिहास एते[3]

वियोगी हरि हनुमान प्रसाद पोद्दार, लाला भगवानदीन, महावीर प्रसाद मालवीय तथा प० विश्वनाथ प्रसाद चौबे देवनारायण द्विवेदी हरिहर प्रसाद ने 'परिहास' ही मानकर अर्थ किया है। प० रामेश्वर भट्ट ने परिहान" कर दिया है। तुलसी शब्द सागर मे भी परिहास शब्द ही है और जिसके उदाहरण के लिए विनयपत्रिका का यही पद स्वीकार किया है।[4] हरिहर प्रसाद ने परिहास तथा

१ विनयपत्रिका श्रीकान्त शरण, पृ० १६०६-१६०७

२ तुलसी ग्रन्थावली—दूसरा खड, पृ० ५२३

३ " " " पृ० ५७७

४. विनयपत्रिका—प० रामेश्वर भट्ट, पृ० ३२६

५ तुलसी शब्द सागर, पृ० २८१

श्रीकान्त शरण ने "परिहास" पाठ माना है। सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में "परिहस" शब्द को परिहास (स) से व्युत्पन्न मानकर "परिहास", देसी, दिल्लगी, ईर्ष्या तथा डाह अर्थ दिया गया है।[1] परिहास और परिहस रख देने से अर्थ में थोडा तो अन्तर पडता है लेकिन अर्थ सौष्ठव मे कोई विशेष अन्तर नही दीखता। वियोगी हरि का अर्थ लिया जाय—"अब तक मैं आपके, करतब की ओर टक लगाये देख रहा था (कि अब आप मुझे शरण में लेते हैं), पर आपने इधर आँख भी नहीं उठाई। (अब तक कृपा ही नही की)। बस, अब तुलसीदास आपके नाम का पुतला बाँधेगा, क्योंकि मुझसे अब इतना उपहास सहन नही हो सकता। (लोग खूब तालियाँ पीट पीटकर कहते हैं, कि देखो यह कैसा पाखण्डी है। बनने चला रामदास! जो यह रामदास होता तो क्यो मारा मारा फिरता[2]। श्रीकान्त शरण जी ने इसका अर्थ इस प्रकार किया "अब तो पुतला बाँधेगा।" क्योंकि मुझसे इतनी ईर्ष्या एव दुख की परिस्थितियाँ नही सही जाती (कि असख्य पतितों को तो आपने पवित्र कर दिया और मेरी ओर तनिक भी दृष्टि नही देते तो मुझसे कैसे सहा जाय)[3]।

२७५वें पद में—

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हू[4]

वियोगी हरि तथा लाला भगवानदीन ने यही पाठ माना है। हरिहर प्रसाद[5] ने "त्वचा तजत" तथा बैजनाथ जी और प्रसाद मालवीय[6] ने "त्वचा तजत" पाठ माना है। प० रामेश्वर भट्ट[7] तथा श्रीकान्त शरण जी ने "तनुज तऊ"[8] पाठ माना है। "तनुज तऊ" की पुन व्याख्या इस प्रकार की है कि शरीर से पैदा हुए सन्तान पर अत्यन्त प्रेम होता है। ऐसे प्रीतिपात्र सन्तान को भी माता पिता ने इस प्रकार त्याग दिया जैसे सर्पिणी के अण्डे से बच्चे होते ही वह स्वय उन्हे खा जाती है, भाग्य से कोई कोई भागकर बच जाते हैं। वह ऐसी निदय होती है। मेरे माता पिता ने निर्दयी भाव से मेरा त्याग कर दिया, फिर खोज खबर नही ली।"[9]

इसमे "त्वचा तजत" से "तनुज तऊ" वाला पाठ अधिक उपयुक्त मालूम पडता है।

---

१ सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ० ७१३
२ विनयपत्रिका—वियोगी हरि, पृ० ४७८
३ ,, श्रीकान्त शरण, पृ० १४४०
४ तुलसी ग्रन्थावली—काशी नागरी प्रचारिणी सभा—दूसरा खड, पृ० ५१४
५ विनयपत्रिका—हरिहर प्रसाद, पृ० ३५७
६ ,, बैजनाथ, पृ० ४३६
७ ,, प० रामेश्वर भट्ट, पृ० ३६८
८ ,, श्रीकान्त शरण, पृ० १५११
९ ,, श्रीकान्त शरण, पृ० १५१५

सम्पूर्ण पद के अर्थ मे असगति

विनयपत्रिका मे एक पद ऐसा है जिसके अर्थ मे असगति दीख पडती है । विनयपत्रिका का चौदहवाँ पद इस प्रकार है—

देखो देखो वन बन्यो आजु उमाकत ।
मनो देखन तुमहिं आई ऋतु बसत ॥
जनु तनुदुति चपक-कुसुममाल ।
वर बसन नील नूतन तमाल ॥
कल कदलि जघ पद कमल लाल ।
सूचति कटि केहरि गति मराल ॥
भूषन प्रसून बहु विविध रग ।
नूपुर किंकिन कलरव विहंग ॥
कर नवल बकुल पल्लव रसाल ।
श्रीफल कुच कचुकि लता जाल ॥
आनन सरोज कच मधुप पु ज ।
लोचन विसाल नव नील कज ॥
पिक बचन चरित्र बर बरहिकीर ।
सित सु मन हास लीला समीर ॥
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान ।
उर बसि प्रपंच रचे पचबान ॥
करि कृपा हरिय भ्रम फद काम ।
जेहि हृदय बसहि सुखरासि राम ॥"[1]

इस पद मे शिव के अर्द्धांग रूप पर वसत ऋतु का रूपक घटाया गया है ।[2] वियोगी हरि ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है । "हे शिवजी, देखिए, आज आप वन बने हैं । आपके अर्द्धांग मे जो पार्वती विराज रही हैं, वे मानो वसत रूप मे आपको देखने आई हैं । उनके शरीर की कान्ति मानो चम्पा के फूलों की माला है और सुन्दर नीले वस्त्र नवीन तमाल पत्र हैं । सुन्दर जघाएँ, केले के वृक्ष और पैर लाल-लाल कमल हैं । कमर सिंह की तथा चाल हस की सूचना दे रही है, अर्थात् पतली कमर सिंह की कमर के समान और गति हस की गति के समान है ।" अलकार मानो नाना प्रकार के फूल हैं । पायजेब और करधनी का शब्द मानो पक्षियों का मधुर चहचहाना है । हाथ मौलसिरी है और आम की कोपलें कोमल हथेलियाँ । स्तन

१ तुलसी ग्रन्थावली—दूसरा खड, पृ० ४६१
२ " " पृ ४६१

बेल के फल और चोली लताओं का जाल है। मुख मानो कमल है और बाल गुंजारते हुए भौंरे। बड़े बड़े नेत्र मानो नवीन नीले कमल की पखुड़ियाँ हैं। मधुर बोल मानो कोयल और चरित्र सुन्दर मोर और तोते हैं हास्य सफेद फूल और लीला त्रिविध समीर। तुलसीदास कहते हैं हे परम चतुर शिवजी! सुनिए! यह कामदेव मेरे हृदय में बसकर बड़ा छलछन्द करता है। कृपा कर इस मायावी का मोह जाल काट दीजिए, जिससे आनन्द घन श्रीराम निष्कंटक मेरे हृदय में निवास करें।'[1] इसी प्रकार का अर्थ महावीर प्रसाद मालवीय[2], प० रामेश्वर भट्ट[3], देवनारायण द्विवेदी[4], हनुमान प्रसाद पोद्दार[5], बैजनाथ जी[6] तथा लाला भगवानदीन और प० शिवनाथ प्रसाद चौबे[7] ने ऐसा ही अर्थ किया है।

किन्तु जिस तुलसीदास ने यह लिखा है—

जगत मातु रामु भवानी! तेहि सिंगार न कहहुँ बखानी।

वही तुलसीदास जी जगदम्बा पार्वती का नख शिख वर्णन कर रहे हैं ठीक नहीं मालूम पड़ता है। कोई व्यक्ति अपनी माता के जघा स्तन आदि अंगों का वर्णन नहीं कर सकता। इसी असंगति का ध्यान रखते हुए हरिहर प्रसाद ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है —

'देखो देखो उक्ति कवि का जगदम्बा की यते। वीप्सा द्रुत में। बन्यो बन आजु असमाकान्त सम्बोधन वा आपके रिझावे के रूप। मानो देखन तुमहि रितु वसन्त। उत्प्रेक्षा अलंकार। वसन्तु पुनि न आई जैस वनै औ चौपाई रामायण में "जहू बसन्त रितु रही लोभाई" तापे सामाधान यह कि काम सखा अनंग करै के भयने वा ध्वनि कि अनंगा किये अब कृपा दृष्टि गह औ बसन्त रागिनीहि गनी 'नर वेष वसन्त हिंडोल तिया" औ "इनो राह चलाय मगन मन मापी रति रितुराज" कुसुममाल समूह केसर कर चरन हृदयादि जो उपमान सोई अंग प्रयग। वर श्रेष्ठ, नील जगदम्बा सा वा दिगम्बर सोई आकाश वरन्। भाव यह कि दिसि है अबर आकाश के श्याम सो तमाल नूतन भले हरा श्याम। कल सुन्दर, कदलि केरो जघ लाल कमल चरन, केहरि सिंह कटि कमर सूचित सूचना करे है औ खाल हस।

सो फूल फूले अंग अंग के माई भूषण बहुअनेक भाँति रंग के। नूपुर औ छुद्र घंटिका आदि शब्द अनुकरण जो पच्छी बोलन जलथल के। कर नवल बकुल

---

१ विनयपत्रिका—वियोगी हरि, प० ७१
२ ,, महावीर प्रसाद मालवीय, पृ० १८-१८
३ ,, प० रामेश्वर भट्ट, पृ० १८-१९
४. ,, देवनारायण द्विवेदी, पृ० १५-१६
५ ,, गीताप्रेस, प० ३०
६ ,, बैजनाथ, पृ० २२-२३
७. ,, लाला भगवान दीन तथा प० विश्वनाथ चौबे, पृ० २८

पल्लव रसाल कर नवल नए पत्र पल्लव लाल फूल फूलादि कोमलता बरन से बकुल मासरी रसाल आम आदि बरन कोमलता से। श्रीफल कुच उपमान, कुचकिलना जाल कुचिकिलता बेलि लात फल पत्ता।

मो आनन मुख सरोज कमल वच अनंग मधुपपुंज भमरावली डीं कजरारी आँखें नील कमल नव विकसित पिक पपीहा आ वरहि मोर मो कर शुक बोलत सोई वचन, वर श्रेष्ठ वा इनके नटविशेष मित सुमन हासमित सेत हास विकस मो सोई जस चाँदनी सा फैलत मुख चन्द विकास लीला समीर त्रिविध।

तुलसीदास कहे है, हे शिव सुजान ! सुसुन्दर जान ज्ञान योगी आदि के परम गुरु आप मो सवारी जान धमरुढ मो माहेश्वर रूप त्रिपुर बधादि मे मो सुन्दर है जाया प्रधान, जो माया आदि सर्वादि काल है। उन म बसि के बलवान काम प्रपच रच्यो। मो, कृपा करि हरहु भ्रम जो माया जाल फैलाए निद्रय नए लोभ बिगरे क्रोध कद काम की जड उखाडे वाले तो वाके भ्रमहू को दूर कीजे। जेहि जहाँ ए विकार बसे तहाँ तब आनन्द कद राशि टर राम बसहिं[1]

इसी पद का अर्थ लिखते हुए श्रीकान्त शरण जी ने लिखा है— हे उमाकात (श्री शिवजी देखिए, देखिए, आज बन ठना ठना ए सजा-धजा) है ! मानो आपको देखने के लिए वसन्त ऋतु आई है (आगे वसन्त ऋतु का ही वर्णन नायिका रूप मे करते हैं)—चम्पा के फूलो की पत्तियाँ ही मानो उसके शरीर की द्युति हैं(यह उसके गोराग शरीर की शोभा है।) नवीन तमाल वृक्ष (उसके गौर शरीर पर सोहने वाले) श्रेष्ठ नील वस्त्र अर्थात् नीली साडियाँ हैं। (चिकनन, चढा उतार एव स्वर्ण रग के) केले के वृक्ष उसकी सुन्दर जघाएँ हैं अरुण कमल (अरुण तलवे वाले) उसके चरण हैं। सिंह (अपनी पतली कटि के द्वारा उसकी कटि की सी और हम अपनी मद चाल के द्वारा उसकी) चाल की सी शोभा प्रकट कर रहे है। नाना रग के बहुत से फूल उसके आभूषण हैं। सुन्दर शब्द वाले पक्षिगण उसके पायजेब और क्षुद्रघटिका हैं। मौलसिरी और आम के नवीन पल्लव (उसके दोनो) कोमल हाथ हैं। बेल के फल उरोज (स्तन) है, लताओ के जाल (समूह। उसकी कचुकि (चोली) हैं। कमल उसका मुख भ्रमरो के समूह केश और नवीन नील कमल उसके बडे बडे (कजरारे) नेत्र हैं। कोमल वचन और सुन्दर गौर एव ताने उसका चरित्र है। श्वेत फूल हँसी और (त्रिविध) वायु उसकी लीला हैं। श्री तुलसीदास कहते है कि हे सुजान श्री शिवजी ! सुनिए, कामदेव मेरे हृदय मे निवास करके प्रपच (माया) रचता है। कृपा करके भ्रम के मूलरूप काम को हर लीजिए, जिससे सुख की राशि श्रीरामजी मेरे हृदय मे निवास करें।[2] और इसमे सन्देह नही कि यह अर्थ अधिक तर्कयुक्त प्रतीत होता है।

---

१ विनयपत्रिका हरिहर प्रसाद, पृ० ३२

२ ,, श्रीकान्त शरण, पृ० ६८

इस प्रकार गीत-कृतियों की विभिन्न टीका के तुलनात्मक अध्ययन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जब तक इन पुस्तकों पर गम्भीर, अध्ययनपरक टीकाएँ नहीं लिखी जाती हैं तब तक पाठकों को इन ग्रंथों के मर्मोद्घाटन में कठिनाई बनी ही रहेगी।

: ३ :

भक्ति-शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन

दर्शन

दर्शन और साहित्य मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य का उद्भव सौन्दर्य से उत्पन्न भावोद्रेक के कारण होता है। दर्शन का जन्म विश्व के सौन्दर्य और वैचित्र्य को देखने से उत्पन्न होने वाले विस्मय के कारण होता है। अतएव दर्शन और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। कोई भी कवि तब तक महान् कलाकार नही हो सकता जबतक वह अपने पाठको के सामने एक सुव्यवस्थित दर्शन न उपस्थित करे। मनुष्य बिना प्रयोजन के कोई काम नही करता। यदि उसे साहित्य से मनोरजन के अतिरिक्त अपने भविष्य जीवन के अर्थात् आने लौकिक एव पारलौकिक अभ्युदय के लिए सामग्री उपलब्ध न हो तो वह काव्याध्ययन को बहुत महत्व नही दे सकता। हम काव्य मे अलौकिक आनन्द की खोज तो करते ही हैं किन्तु साथ ही उसमे अपने आगे आने वाले जीवन के लिए प्रेरणाएँ और प्रकाश चाहते हैं। भले ही ये प्रेरणाएँ और प्रकाश बहुत व्यक्त और सुस्पष्ट न हो किन्तु उनका रहना नितात आवश्यक है। इसीलिये आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा लिखते समय काव्य के प्रयोजनो मे "कांता सम्मत उपदेश"[1] की आवश्यकता बतलायी है। कविवर मैथिली शरण गुप्त ने भी लिखा है—

> केवल मनोरजन न
> कवि का कर्म होना चाहिए।
> उसमे उचित उपदेश का भी
> मर्म होना चाहिये।[2]

---

१ काव्य यशसे ऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये
सद्य परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।

काव्यप्रकाश—प्रथम उल्लास, दूसरा श्लोक,

२ भारतभारती—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १७१

गोस्वामी तुलसीदास विश्व के महान् कवियों में से एक हैं। उन्होंने लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय के मार्ग को जितनी स्पष्टता के साथ देखा था शायद ही कोई दूसरा कवि उतनी स्पष्टता से देख सका है। उन्होंने जीवन के लक्ष्य का बहुत मनोयोग के साथ अध्ययन किया था और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "सबकर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा।"[1] और मनीषियों के मतों का अध्ययन कर और अपनी विवेक रूपी तुला पर उसे तोलकर तुलसी ने सगुण और निर्गुण ब्रह्म के प्रेम में तल्लीन रहना ही जीवों के लिये परमोपयोगी समझा था। अपने इस लक्ष्य के सम्पादन के लिये अपने पाठकों के समक्ष उन्होंने अपने दर्शन का जो सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष रखा है वह जितना ही सत्य और स्पष्ट है उतना ही आह्लादजनक और उपयोगी भी। इससे पहले हमें यह देखना है कि उन्होंने अपने गीतों में अपने परमाराध्य परमेश्वर अर्थात् राम को किस रूप में ग्रहण किया है।

परमात्मा का स्वरूप

उन्होंने विनयपत्रिका में लिखा है—

जयति सच्चिदव्यापकानंद परब्रह्म विग्रह व्यक्त लीलावतारी
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचवश विमल गुण गेह नरदेह धारी।[2]

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी के राम सच्चिदानंद स्वरूप हैं। वे सर्वत्र व्यापक हैं और अपनी लीला के लिये वे निर्गुण से सगुण होकर भिन्न-भिन्न अवतार धारण करते हैं। साथ ही तुलसी का कहना यह है कि भगवान का मानवावतार लीला के अतिरिक्त सृष्टि में फैली हुई अव्यवस्था से विकल ब्रह्मा देवगण और जीव मुक्त महात्माओं की प्रार्थनाओं के कारण होता है। तात्पर्य यह कि ब्रह्म यथार्थतः निर्गुण होने पर भी अपनी लीला और विश्व के कल्याण के कारण सृष्टि में मानवावतार धारण करता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि तुलसीदास कबीर आदि के समान केवल निर्गुण ब्रह्म को नहीं मानते। वे उसे यथार्थतः निर्गुण मानते हुए भी अपनी शक्ति विशेष या माया के बल पर अपनी रुचि से विश्वकल्याण के लिये अवतीर्ण होने वाला मानते हैं। ब्रह्म के केवल निर्गुण स्वरूप का उन्होंने बड़े जोर-शोर से खंडन किया है। दोहावली में वे कहते हैं—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास,
निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।[3]

इसी प्रकार रामचरित मानस में वेदों ने जो रामचन्द्र की स्तुति की है उसमें ब्रह्म के इन दोनों रूपों को स्पष्टतया स्वीकार किया गया है।

१ उत्तरकांड १२१ वाँ दोहा—डा० मा० प्र० गुप्त।
२ ४३ वाँ पद।
३ दोहावली—२५१

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे
जय प्रनत पाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामे ।[1]

तुलसीदास ने श्रीकृष्णगीतावली में भी ब्रह्म के केवल निर्गुण स्वरूप को सत्य मानते हुए भी भक्तों के लिये अनुपयोगी बतलाया है ।

हे निर्गुन सारी बारिक बलि धरी करौं, हम जोही ।
तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट, जिन्हहि आजु सब सोही ।[2]

अर्थात् यह निर्गुण की साडी बडी ही सूक्ष्म है, इसको हमने देख लिया है, इसे तह लगाकर रख दो । तुलसीदास कहते हैं, यह वस्तु तो नगर-निवासिनी रमणियों के ही योग्य है, जिन्हें आज भी सब कुछ शोभा दे रहा है ।

ब्रह्म सगुण निर्गुण दोनों

विनयपत्रिका में भी उन्होंने राम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उन्हें निर्गुण और सगुण दोनों माना है । इस स्थल पर उन्होंने ब्रह्म को सच्चिदानन्द एवं ज्ञानघन का मूल एवं सत्य स्वरूप बतलाया है । ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का सगुण-निर्गुण रूप का इस पद में उन्होंने बहुत स्पष्टता के साथ विवेचन किया है । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीय ।
प्राकृत प्रकट परमातमा परमहित प्रेरकानंद वंदे तुरीय ॥
भूधर सुंदर श्रीवर मदन-मद-मथन, सौंदर्य सीमातिरम्य ।
दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क्य दुष्पार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्य ॥
सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी ।
धर्मवर्मणि ब्रह्मकर्मबोधैक द्विजपूज्य ब्रह्मण्य जनप्रिय मुरारी ॥
नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानंद मूल ।
सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढार्चि भक्तानुकूल ॥
सिद्धि साधक साध्य, वाच्य वाचक रूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा ।
परमकारन, कंजनाभ, सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य-द्रष्टा ॥
व्योम-व्यापक विरज ब्रह्म वरदेस बैकुंठ बामन विमल ब्रह्मचारी ।
सिद्ध वृन्दारकावृंद-वंदित सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥
पूरनानंद संदोह अपहरन संमोह अज्ञान गुनसन्निपात ।
बचन मन कर्म गत सरन तुलसीदास, त्रास पाथोधि इव कुंभजातं ॥[3]

---

१ लंकाकांड ७, १२ गं के बाद—पृ० ८८२, गीताप्रेस
२ श्रीकृष्णगीतावली—४१
३ विनयपत्रिका—५३

विनयपत्रिका की निम्नांकित पंक्तियों में भी तुलसीदास ने भगवान को निर्गुण और सगुण दोनों माना है।

नित्य निर्मुक्त संयुक्तगुन निर्गुनानत भगवन्त नियामक नियता।
विश्व पोषन-भरन विश्वकारन करन, सरन-तुलसीदास त्रासहता ॥[1]

इन पदों के अतिरिक्त निम्नांकित पदों में भी ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों को स्वीकार किया है। रामचरितमानस में कहा है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरें मत बड़ नाम दुहूँ तें। किए जेहि जुग निज बस निज बूतें ॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहौं प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥[2]

उन्होंने एक अन्य स्थान पर भी रामचरितमानस ही में कहा है—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ॥[3]

तुलसीदास के इस विचार से स्पष्ट है कि वे ब्रह्म को निर्गुण तथा सगुण दोनों ही मानते हैं और उसके उन दोनों रूपों में अन्तर केवल इतना ही मानते हैं कि एक अव्यक्त है और दूसरा व्यक्त।

राम एवं अन्य अवतारों में कोई अन्तर नहीं

तुलसीदास न उस मुक्त निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करके उसी के भिन्न-भिन्न व्यक्त या काल्पनिक स्वरूपों को भिन्न-भिन्न देवता माना है। इस भाव को उन्होंने विनयपत्रिका के विभिन्न पदों में व्यक्त किया है। उन्होंने हरिशंकरी नामक पद में राम और शंकर की एकता प्रतिपादित की है। रामचरितमानस में भी उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की है—

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा ॥[4]

राम और कृष्ण की एकता उन्होंने अनेक पदों में व्यक्त की है। उदाहरणार्थ—

भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर नारी।
बसन पूरि, अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥[5]

रामकृष्ण की ही एकता नहीं तुलसी अव्यक्त ब्रह्म के दशावतारों को एक ही परब्रह्म के अवतार होने के कारण एक ही मानते हैं। इस भाव को भी उन्होंने अपनी कृतियों में अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है। कुछ उदाहरण लीजिए।

---

[1] विनयपत्रिका ५५
[2] रामचरितमानस, बालकाण्ड—२२ वाँ दोहा, पृ० १५, का० ना० प्र० गु०
[3] वही, दोहा ११५
[4] रामचरितमानस—बालकांड गीताप्रेस, लंकाकांड २
[5] विनयपत्रिका पद ९९।

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति ॥
जिन बांधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी ।
सोई अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बांध्या सक्त न छोरी ॥
जाकी मायाबस विरंचि सिव नाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन तेहि नाच नचायो ॥
विश्वभर, श्रीपति, त्रिभुवन-पति बेद-विदित यह लीख ।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज मागी भीख ॥
जाको नाम लिए छूटत भव जनम मरन दुखभार ।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यो दस बार ॥
जोग विराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी ।
बानर भालु चपलपसु पांवर नाथ तहां रति मानी ॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी ।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत करधारी ॥'[1]

आगे चलकर विनयपत्रिका पद सख्या ५४ मे उन्होंने रामचन्द्र को विश्वेश, विश्वायतन, सर्वमेवात्मस्वरूप, भवनभवदस, वागीश, कामारि वदितपद द्वन्द्व, मदाकिनी-जनक, आदिमध्यांत, सर्वगत इत्यादि विशेषणों का प्रयोग करके ब्रह्मा विष्णु शकर सर्वदेव एव सर्वविश्वमय मान लिया है । इस प्रकार राम के रूप में तुलसी ने सर्वदेवो और सृष्टि के समग्र तत्वो का समन्वय किया है । उन्होंने "बहुत वदारु वृन्दारक वृन्द पद द्वन्द" कहकर सर्वदेवो से नमस्कृत माना है । इस प्रकार तुलसी के राम सर्वदेवमय, सर्वसृष्टिमय, सर्वशक्तिमान, सर्वनमस्कृत तथा सच्चिदानन्द हैं । न तो कोई उनसे पृथक् है और न उनसे बड़ा । वे स्वभावत निर्गुण होते हुए भी अपनी लीला या भक्तो के लिए सगुण रूप धारण किया करते हैं । विनयपत्रिका ही मे नहीं गीतावली में भी ऐसे पदों का अभाव नही ।

सगुण निर्गुण राम की भक्ति

इस सगुण-निर्गुण राम की भक्ति का निम्न प्रकार से विवेचन किया है । रामचन्द्र राक्षसो के नाश करने वाले दया के समुद्र, भक्तों के दम्भ और दुर्दोष के दमन करने वाले तथा पाप नष्ट करने वाले हैं । वे दुष्टो की दुष्टता दूर करने वाले, स्वय सयमित रहने वाले, भक्तो के दुख को दूर करने वाले और उनकी कठिन दुर्वासनाओ के नाश करने वाले हैं । वे असख्य अलकारो वाले हैं, प्रकाशसयुक्त, ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त भक्तों को अभयदान करने वाले तथा उनकी सासारिक यातना को नष्ट करने वाले हैं । वे भावनातीत विश्वेश तथा ससार एव भक्तों का

१ विनयपत्रिका, पद ९८

विनयपत्रिका की निम्नांकित पंक्तियों में भी तुलसीदास ने भगवान को निगु ण और सगुण दोनों माना है।

नित्य निर्भु क्त संयुक्तगुन निर्गु नानंत भगवन्त नियामक नियंता।
विश्व पोषन भरन विश्वकारन-करन, सरन-तुलसीदास त्रासहंता ॥[1]

इन पदों के अतिरिक्त निम्नांकित पदों में भी ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों को स्वीकार किया है। रामचरितमानस में कहा है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
मोरें मत बड़ नाम दुहूं तें। किए जेहिं जुग निज बस निजें बूतें ॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहौं प्रतीति प्रीति रुचि मन की ॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥[2]

उन्होंने एक अन्य स्थान पर भी रामचरितमानस ही में कहा है—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ॥[3]

तुलसीदास के इस विचार से स्पष्ट है कि वे ब्रह्म को निर्गुण तथा सगुण दोनों ही मानते हैं और उसके उन दोनों रूपों में अन्तर केवल इतना ही मानते हैं कि एक अव्यक्त है और दूसरा व्यक्त।

राम एवं अन्य अवतारों में कोई अन्तर नहीं

तुलसीदास ने उस मुक्त निगु ण ब्रह्म को स्वीकार करके उसी के भिन्न-भिन्न व्यक्त या काल्पनिक स्वरूपों को भिन्न-भिन्न देवता माना है। इस भाव को उन्होंने विनयपत्रिका के विभिन्न पदों में व्यक्त किया है। उन्होंने हरिशंकरी नामक पद में राम और शंकर की एकता प्रतिपादित की है। रामचरितमानस में भी उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की है—

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न भावा ॥[4]

राम और कृष्ण की एकता उन्होंने अनेक पदों में व्यक्त की है। उदाहरणार्थ—

भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर नारी।
बसन पूरि, अरि दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी ॥[5]

रामकृष्ण की ही एकता नहीं तुलसी अव्यक्त ब्रह्म के दशावतारों को एक ही परब्रह्म के अवतार होने के कारण एक ही मानते हैं। इस भाव को भी उन्होंने अपनी कृतियों में अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है। कुछ उदाहरण लीजिए।

---

१ विनयपत्रिका ५५
२ रामचरितमानस, बालकांड—२२ वां दोहा, पृ० १५, का० ना० प्र० गु०
३ वही, दोहा ११५
४ रामचरितमानस—बालकांड गीताप्रेस, लंकाकांड १
५ विनयपत्रिका पद ९९।

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति॥
जिन बांधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोई अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बांध्या सक्त न छोरी॥
जाकी मायावस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन तेहि नाच नचायो॥
विश्वभर, श्रीपति, त्रिभुवन-पति बेद-विदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज मांगी भीख॥
जाकी नाम लिए छूटत भव जनम मरन दुखभार।
अबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यो दस बार॥
जोग बिराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी।
बानर भालु चपलपसु पांवर नाथ तहा रति मानी॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत करधारी॥[1]

आगे चलकर विनयपत्रिका पद सख्या ५४ में उन्होंने रामचन्द्र को विश्वेश, विश्वायतन, सर्वमेवात्रत्वद्रूप, भवनभवदस, वागीश, कामारि वदितपद द्वन्द्व, मदाकिनी-जनक, आदिमध्यात, सर्वगत इत्यादि विशेषणो का प्रयोग करके ब्रह्मा विष्णु शकर सबदेव एव सर्वविश्वमय मान लिया है। इस प्रकार राम के रूप में तुलसी ने सर्वदेवो और सृष्टि के समग्र तत्वो का समन्वय किया है। उन्होंने बहुत बदाए वृ दारकावृ द पद द्वद" कहकर सबदेवो से नमस्कृत माना है। इस प्रकार तुलसी के राम सर्वदेवमय, सर्वसृष्टिमय, सवशक्तिमान, सर्वनमस्कृत तथा सच्चिदानन्द हैं। न तो कोई उनसे पृथक् है और न उनसे बड़ा। वे स्वभावत निर्गुण होते हुए भी अपनी लीला या भक्तो के लिए सगुण रूप धारण किया करते हैं। विनयपत्रिका ही मे नही गीतावली मे भी ऐसे पदों का अभाव नही।

सगुण निर्गुण राम की शक्ति

उस सगुण निर्गुण राम की शक्ति का निम्न प्रकार से विवेचन किया है। रामचद्र राक्षसों के नाश करने वाले दया के समुद्र, भक्तों के दम्भ और दुर्दोष के दमन करने वाले तथा पाप नष्ट करने वाले हैं। वे दुष्टो की दुष्टता दूर करने वाले, स्वय सयमित रहने वाले, भक्तो के दुख को दूर करने वाले और उनकी कठिन दुर्वासनाओं के नाश करने वाले हैं। वे असख्य अलकारो वाले हैं, अनाशसयुक्त, ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त भक्तों को अभयदान करने वाले तथा उनकी सासारिक यातना को नष्ट करने वाले हैं। वे भावनातीत विश्वेश तथा ससार एव भक्तों का

१ विनयपत्रिका, पद ९८

कल्याण करने वाले हैं। वे भूमि का उद्धार करने वाले समग्र पर्वतों को धारण करने वाले वाणी के स्वामी सभी प्राणियों की आत्मा माया रहित तथा वैकुण्ठ लोक में विहार करने वाले हैं।[1] गीतावली के भी एक पद में तुलसी ने संक्षेप में राम की अलौकिक शक्ति का निर्देश किया है। वे कहते हैं—

माया, जीव, जगजाल, सुभाउ करमकाल,
सबको शासकु, सबमें, सब जामे।[2]

अर्थात् रामचन्द्र माया, जीव विश्वप्रपंच स्वभाव कर्म और काल इन सबके शासन तथा समग्र ब्रह्माड में परिपूर्ण हैं। सारा संसार उन्हीं में ही अवस्थित है अतः वे सर्वाधार हैं।

राम का शील

राम के शील का तुलसी ने अत्यन्त तल्लीनता से परम विवेचन किया है। उन्होंने सगुण ब्रह्म श्रीराम के शील की पराकाष्ठा प्रदर्शित कर दी है। विनयपत्रिका की पद संख्या १०० में उन्होंने राम के जिस शील का वर्णन किया है वह कितना मनोहर है। राम को बाल्यकाल से लेकर अंत तक किसी ने अनुचित रूप में क्रोध करते नहीं देखा। बाल्यकाल में बालकों के नटखटपन को देखते हुए भी वे उनको पुचकार कर दुलारते रहे। खेल में जीतने पर वे दूसरे बालकों की ही जीत मान लेते थे। अहल्या को तारने का उन्हें हर्ष या गर्व नहीं हुआ वरन् ब्राह्मण की पत्नी को पैर से छूने का पश्चात्ताप ही बना रहा। परशुराम जी ने अनेक दुर्वचन कहे पर वे सब कुछ क्षमा करते रहे और उनके पैरों पर गिर कर ही विजयी हुए। जिस कैकेयी के कारण उन्हें वनवास मिला उस कैकेयी की रुचि की रक्षा उन्होंने उसी प्रकार की जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर में उत्पन्न हुए घाव को हर प्रकार चोट से बचाता है। हनुमान की सेवा से वे इतने वशीभूत हो गए कि आजन्म उनके ऋणी बने रहे। रामचन्द्र ने सुग्रीव और विभीषण को अपनाया, किन्तु उन्होंने अपने स्वभाव में परिमार्जन नहीं किया फिर भी भरत के समक्ष राजसभा के बीच में उनकी प्रशंसा करते हुए वे अघाते नहीं थे। अपनी दया से भक्तों के साथ वे सद्व्यवहार करते हैं। उनकी चर्चा चलने पर भी वे संकुचित हो जाते हैं और यदि कोई उन्हें एकबार भी प्रणाम कर देता है और उनके यश का वर्णन कर देता है तो उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं और बार बार उस भक्त की प्रशंसा सुनना चाहते हैं।[3]

राम का सौंदर्य

तुलसी ने अपने इष्टदेव सगुण ब्रह्म राम के सौंदर्य का भी बड़ी तल्लीनता से भिन्न-भिन्न रूपों में चित्रण किया है। यह सही है कि सूर के समान वे अपने

१ विनयपत्रिका, पद ५६ (१-६ पंक्ति)
२ गीतावली ५, ५-२५
३ विनयपत्रिका, पद १००

इष्टदेव के सौंदर्य चित्रण मे ही तल्लीन नही रह गए हैं वरन् उन्होंने उनके शील और शक्ति का पूर्ण चित्रण किया है किन्तु इसका यह अर्थ नही कि उनका सौंदर्य चित्रण सूर के सौन्दर्य चित्रण से कुछ न्यून है। सौन्दर्य चित्रण सम्बन्धी पद सूर के पदो के समान बहुसंख्यक नहीं हैं किन्तु अल्पसंख्यक होने पर भी राम के सौंदर्यचित्रण में वे पूर्ण सशक्त हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित पद देखिए—

> पालने रघुपतिहि झुलावै।
> लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥
> केकिकंठ दुति, श्यामबरन बपु, बाल-विभूषन विरचि बनाए।
> अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥
> सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए।
> मनहु सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए ॥
> उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पतारत।
> मनहु उभय अंभोज अरुन सों विधु-भय विनय करत अति आरत ॥
> तुलसिदास बहु-बास विवस अलि गुंजत सुछवि न जाति बखानी।
> मनहु सकल स्तुति ऋचा मधुप ह्वै विसद सुजस बरनत बर बानी ॥[1]

उक्त पद में बाल राम के सौंदर्य का कितना अच्छा चित्र अंकित किया गया है। तीसरी और चौथी पंक्तियों में राम के शरीर की द्युति वर्ण, आभूषण, अलकों और नेत्रों का कितनी मधुर भाषा में चित्र खींचा गया है। अपने दोनों पैरों को बच्चे मुँह के पास ले आते हैं और छोटे बच्चे अपने पास मे खिलौना देखकर उसे लेने के लिए हाथ फैलाते हैं और किलकते हैं। तुलसीदास ने इस बाल-प्रवृत्ति का कितना सुन्दर और सालंकार वर्णन किया है। उन्होंने जो उत्प्रेक्षा दी है वे कितनी मनोहर और बिम्बविधायक हैं। राम के बालों की सुगंधि से आकृष्ट होकर जो भौंरे उनके आसपास मडराते हैं उनकी उत्प्रेक्षा देने मे तुलसी ने अपनी विशद रुचि और अपने काव्य की पावनता की पराकाष्ठा प्रदर्शित कर दी है। यह उत्प्रेक्षा जितनी ही निष्कलुष है, उतनी ही राम के महत्व और ब्रह्मत्व की सूचक है। सहृदय पाठक आह्लाद मग्न होकर उसे बार-बार दुहराने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। वह क्या है, उसे जरा ध्यान से सुन लीजिए—

> मनहुँ सकल श्रुति ऋचा मधुप मैं, विसद सुजस बरनत बहुबानी।

पद संख्या २३ मे भी आगन में दौड़ते हुए राम का एक बड़ा ही मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है। उसकी अंतिम चार पंक्तियाँ काव्यत्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उसकी अंतिम पंक्ति मे स्वयम्भू रूप की ओर इंगित करके सौंदर्य वर्णन में अपनी असमर्थता का यथार्थ प्रदर्शन किया है।

---

१ गीतावली, १, २०

उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पटपीत ओढ़ाए
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए।
अंग अंग पर मार निकर मिलि छवि समूह लै लै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ रूप गुन तो कहौं जो विधि होहि बनाए।

आगे चलकर तुलसी ने अपने इष्टदेव के कौतूहल पूर्ण कुमार रूप का चित्रण भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है।[1] तुलसी ने राम के सौंदर्य वर्णन में यत्रतत्र उनके ब्रह्मत्व और सच्चिदानन्दत्व की ओर बड़े ही आह्लादक और सूक्ष्म इंगित किए हैं।[2]

रामहि नीके कै निरखि सुनैनी।
मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी।
बड़े भाग्य मख भूमि प्रकट भइ सीय सुमंगल ऐनी।
जा कारन लोचन गोचर भइ मूरति सब सुखदेनी॥
कुलगुरु तिय के मधुर वचन सुनि जनक जुवति मति पैनी।
तुलसी सिथिल देह सुधि बुधि करि सहज सनेह बिषैनी॥

इस पद को तुलसी ने रानी सुनैना को अरुंधती के द्वारा दिए गए उपदेश के रूप में रखकर अपने दार्शनिक महत्व और काव्यात्मक औचित्य के बोध का कितना सुन्दर परिचय दिया है।

राम और सीता के दूलह दुलहिन रूप का तुलसी ने कितना यथार्थ और आह्लाद चित्र उपस्थित किया है—

सुखमा-सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमिय मय कियो है दही री।
मथि माखन सिय राम सवारे, सकल-भुवन छवि मनहु मही, री॥[3]

राम के दूलह रूप का एक दूसरा वर्णन तुलसी ने गीतावली के इसी कांड पद संख्या १०६ में किया है। यह जितना ही सुन्दर है उसका निरूपण उतना ही गम्भीर है। और वह यों है—

सारद सेस संभु निसि बासर चिंतत रूप न हृदय समाई।
तुलसिदास सठ क्यों कर बरनै यह छवि, निगम नेति कहि गाई॥

संग्रामभूमि में स्थित अपने विजयी राम का भी तुलसी ने कितना अभिराम रूप उपस्थित किया है—

राजत राम काम सत सुन्दर।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित, फेरत चाप बिसिख बनरुह कर॥
स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर, सोनित कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत निकर हरिहित गन भ्राजत मरकत सैल सिखर पर॥

[1] गीतावली १, ५०
[2] " १, ७१
[3] " १०४

घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि, हरषित सकल ... को माया कहा है,
कुसुमित किंसुक तरु-समूह महँ तरुन तमाल बिसाल
राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि किए अभय मुनि नाग बिपाया।[1]
तुलसिदास यह रूप अनुपम हिय सरोज बसि दुसह बिपति...

तुलसीदास ने अन्त में राजा राम का एक अत्यन्त मनोहर रूप राम... आराधना और ध्यान करने के लिए उपस्थित किया है। उन्होंने कितनी निभय और आश्वस्तता के साथ इस रूप वर्णन में घोषणा की है—

चारु चरनतल चिन्ह चारि फल चारि देत पर चारि जानि जन।[2]

भला भक्तों को इससे बढ़कर आराध्य कहाँ मिलेगा। इस संसार में मनुष्य के परम पुरुषार्थ हैं—अर्थ, धर्म काम और मोक्ष। ये चारों जिनके चार चरण चिन्हों का ध्यान करने से प्राप्त हो जावें उनमें भक्ति न करें तो किसमें करें। इस प्रकार तुलसी ने राम के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार कर उनकी शक्ति शील और सौन्दर्य के अनुपम चित्र अंकित किए हैं। उनकी गीतात्मक कृतियों में काव्य, संगीत और दर्शन का इतना सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है कि वह स्वभावत प्रत्येक सहृदय व्यक्ति को अनायास आकृष्ट करने में सक्षम हैं।

जीवात्मा का स्वरूप

अब हमें यह देखना है कि तुलसी ने अपने गीतात्मक काव्यों में जीवात्मा के स्वरूप का किस प्रकार विवेचन किया है। विनयपत्रिका के १३२वें पद में तुलसीदास ने परमात्मा को जीवात्मा को शरीर देने वाला बतलाया है इससे स्पष्ट है कि जीवात्मा नियत्ता तथा परमात्मा उसका नियामक है। १३६वें पद में तुलसीदास ने स्पष्ट किया है कि जीवात्मा परमात्मा से पृथक् नहीं है। उसे उन्होंने हरि का ही स्वरूप माना है और उनसे पृथक् होने के बाद अपने सूक्ष्म या स्थूल शरीर को अपना घर समझने वाला बतलाया है। वे कहते हैं—हे जीवात्मा जब से तू परमात्मा से पृथक् हुई तभी से तूने शरीर को अपना घर मान लिया और माया के वशीभूत होकर अपना यथार्थ स्वरूप विस्मृत कर दिया है और इस भ्रम से तुझे अनेक दुख भोगने पड़े।

जिय जब त हरि तें बिगान्यो। तब ते गेह निज जान्यो।
माया बस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो।[3]

तुलसी ने रामचरितमानस में भी इसी भाव का समर्थन किया है। उनका कहना है कि जीव अविनाशी है और ईश्वर का अंश है। वह चेतन निर्मल और स्व-

१ गीतावली, ?, १६
२ वही, , १६
३ विनयपत्रिका, १३६

उपमा एक अह जीव माया के वशीभूत होकर कीट और मरकट के नीस जलन्धन मे डालता है। इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा अग ययायत एक ही हैं, किन्तु परमात्मा की शक्ति विशेष जिसको माया कहते हैं— से प्रेरित होकर परमात्मा का ही एक अंश अपने को प से पृथक् मानने लगता है। उसका यही अहभाव उसको परमात्मा से क् करता है और उसके असख्य दुखो का कारण बनता है। तुलसी ने रामचरित मानस मे जीवात्मा और परमात्मा का अन्तर एक दोहे में इस प्रकार व्यक्त किया है—

माया ईस न आप कहूँ जानि कहे सो जीव।
बध मोच्छ प्रद सबयर, माया प्रेरक जीव॥[1]

अर्थात् जो माया, ईश्वर और स्वय अपने को नही जानता वही जीव है और जो जीवो को उनके कर्मानुसार उनके बन्धन तथा मोक्ष देने वाला सबसे सूक्ष्म और माया का प्रेरक है वही ईश्वर है। इसी बात को तुलसी ने विनयपत्रिका के १७७वें पद मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

हौं जड जीव ईस रघुराया।
तुम मायापति, हौं बस माया॥

ब्रह्म की शक्ति

यह पहले कहा जा चुका है कि परमात्मा और जीवात्मा तत्वत एक हैं। उसका स्वरूप एक है किन्तु अस्थायी भ्रम के कारण जीवात्मा परमात्मा से अपने को पृथक् समझने लगती है। अब प्रश्न यह उठता है कि वह भ्रम कौन-सी वस्तु है जो जीवात्मा परमात्मा मे भेद भाव उत्पन्न करते हैं। इस भ्रम के सम्बन्ध मे कई शब्दो का प्रयोग किया जा सकता है। जगत् ससार, प्रकृति, अविद्या और माया। ये सब शब्द इस भ्रम के लिए ही प्रयुक्त होते है। तुलसीदास ने इन सभी को ईश्वर की शक्ति विशेष अर्थात् प्रकृति या माया माना है। किन्तु ईश्वर की शक्ति से उनका यथार्थ अभिप्राय क्या है इसको ठीक ठीक समझना और समझाना कठिन है। कहीं-कहीं तो वे शक्ति अर्थात् सीता और शक्तिमान अर्थात् राम को एक दूसरे से अभिन्न मानते हैं, जैसे—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न
बदो सीता राम पद जिन्हहि परमप्रिय खिन्न।[2]

× × ×

नारद बचन सत्य सब करिहौं।
परमशक्ति समेत अवतरि हौं।[3]

---

[1] रामचरितमानस-उत्तरकाण्ड, ११ वा दोहा
[2] रामचरितमानस, बालकाण्ड, १८ वां दोहा।
[3] वही, १५१ वां दोहा

किन्तु रामचरितमानस मे ही उन्होने अपनी उसी आदि शक्ति को माया कहा है, जैसे—

आदि सक्ति जेहि जग उपजाया । सो अवतरहि मोर यह माया ।[1]

उन्होने माया का यो विवेचन किया है—

मैं अरु मोर तोर तें माया । जेहि बस कीन्हें जी ...काया ।
गो गोचर जहँ लग मनजाई । सो सब माया ज... ...पाई ।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । जा बस जीव पर...
एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं नि...

तुलसीदास ने इन पक्तियो मे माया के स्वरूप का ... उससे यह प्रतीत होता है कि परब्रह्म शक्तिमान है और माया ... भी राम की माया ही है किन्तु वह उत्तम कोटि की माया है ... और राम का एकत्व सत्य है किन्तु अविद्या और राम ... नही । यदि हम अविद्या माया को सीता समझें तो सी... अविद्या और राम भी एक हो जाएगे और ऐसी परि...

रजत सीप महुँ भास जिमि । ज...
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ । भ्रम...
यह बिधि जग हरि आश्रित रहई । ज...

उपर्युक्त प्रकार की अविद्या माया का सी... से भी और तब ब्रह्म और सीता दोनो ही मृषा ... मानना चाहिए कि माया का स्वरूप समग्र दृश्यमान ... जगत् ही नहीं वरन् उसकी रचना एव सहार का कारण भी माया ही है । ... की प्रेरणा से जो इस ससार की रचना करती है । वही विद्यामाया है और वही सीता का स्वरूप है, वही सृष्टि का सहार भी करती है किन्तु जीवो को असत्य में सत्य का और सत्य मे असत्य का, एक मे अनेक का भ्रम उत्पन्न करने वाली राम की माया अविद्या है जीवो के हृदय मे अहकार मैं, तं, और मेरा-तेरा का भेद इसी अविद्या के कारण उत्पन्न होता है । समग्र ससार के प्राणी इसी माया के वशीभूत हैं । मनुष्य की सारी इन्द्रियाँ, सारी इन्द्रियो से ग्रहण होने लायक विषय तथा जहाँ तक मनुष्य का मन जाता है यह माया ही है – इसी माया के दो रूप हैं । एक सुखमय तथा दूसरा दुखमय । माया का दुखमय रूप असत्य और भ्रममय तथा दुखद है और माया का विद्या स्वरूप मनुष्य को ईश्वर की ओर आकृष्ट करने वाला तथा उसे प्राप्त करने वाला है । तात्पर्य यह है कि सृष्टि से अपने को पृथक् तथा अपने समान भिन्न-भिन्न

१ रामचरितमानस, बालकांड, १५१ वा दोहा

२ वही ११७ वॉ दोहा

प्राणियों तथा पदार्थों का देखना अविद्या माया है। जो असत्य है और केवल भ्रम-मात्र है। किन्तु जगत एवं प्रकृति को भगवान का शरीर समझना और प्रकृति के कार्यों को भगवान की सत्ता और प्रेरणा से होना मानना विद्यामाया है। विद्यामाया ही सीता है। जैसा कि रामायण के प्रारम्भ में ही कहा गया है—

उद्भव स्थिति संहारकारिणी क्लेश हारिणीम्
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतो हं रामवल्लभाम्—५

अर्थात् उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली प्राणियों के दुःखों को दूर करने वाली, सम्पूर्ण कल्याण करने वाली तथा रामचन्द्र की प्यारी सीता जी को मैं प्रणाम करता हूँ। तुलसीदास के गीतात्मक काव्यों में भी माया का संक्षिप्त विवेचन प्रायः इसी प्रकार किया गया है। यदि रामचरितमानस में "मैं", 'मोर" 'तें', "तोर" को माया कहा गया है तो विनयपत्रिका में माया का स्वरूप यही माना गया है। इसलिए तुलसीदास ने लिखा है—

तुलसिदास मैं मोर गए बिन। जीव सुख कबहुँ न पायो।
—पद संख्या १२०

इसी प्रकार रामचरितमानस में कहा गया है—
गो गोचर जहँ लग मन जाई। सो माया जानेहु भाई।[1]

तो विनयपत्रिका में भी यही बात निम्नांकित पंक्तियों में दुहराई गई है—

भ्रमत, बसन, बसु, बस्तु विविध विधि सब मनि महँ रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे॥
बिटप मध्य पुत्रिका, सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए॥

गीता, माया अर्थात् विद्या और अविद्या का विवेचन करने के उपरान्त जगत् या संसार के सम्बन्ध में कह देना समीचीन प्रतीत होता है। पद संख्या १८८—

मैं तोहि अब जान्यों, संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरि के बल प्रगट कपट-आगार॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किए बिचार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार॥
तेरे लिए जनम अनेक मैं फिरत न पायों पार।
महा मोह मृगजल सरिता महँ बोर्यो हौं बारहिं बार॥

इस पद में संसार की असारता का वास्तविक स्वरूप अंकित किया गया है। इससे आगे पद में इसके कष्टमय स्वरूप का अविकल चित्रण प्राप्त होता है। विनयपत्रिका के ही १८६ पद में—

---

[1] रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, १५ वाँ दोहा

बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचद मद मोल बिनु डोला रे ॥
विषम कहार मार-मदमाते, चलहिं न पाऊ बटोरा रे।
मद बिलद ढभेरा दसकन पाइय दुख भकझोरा रे ॥

व्यावहारिक पक्ष

दर्शन के सिद्धात के पक्ष मे परमात्मा, जीवात्मा, माया, विद्या, अविद्या एव रामचन्द्र की आदिशक्ति के स्वरूपो का निर्देश कर हम व्यावहारिक पक्ष मे जीवात्मा के बन्धन के कारण तथा उससे मुक्ति के साधन एव मुक्ति की चर्चा करेंगे। परमात्मा के स्वरूप के सम्बन्ध मे पहले ही कहा जा चुका है कि सगुण और निर्गुण दोनो है और यह समग्र सृष्टि उन्ही की माया का खेल है और अत मे उन्ही मे विलीन हो जाती है। जीवात्मा परमात्मा का अश है यह बात भी पहले ही कही गई है। अब प्रश्न यही उठता है कि नित्य, शुद्ध, बुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म किन किरणो से अपने आशिक रूप मे जीव बनता है और अपने आप बन्धन मे पडता है। इस गहन प्रश्न का उत्तर देना सर्वथा असम्भव है। इसको तो वही जानता है जो स्वय सर्वव्यापक है और अपने आप बद्ध और मुक्त होता रहता है। मनुष्य की बुद्धि वहाँ तक पहुँच नही पाती और इसीलिए परमात्मा और उसकी माया को अनिवर्चनीय कहा गया है। फिर भी कवियो और दार्शनिको ने अपनी ओर से इस प्रश्न का कुछ समाधान करना चाहा है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस मे जीव को अविनाशी तथा ईश्वर का अश बतलाया है और सृष्टि के प्रारम्भ के सम्बन्ध मे उन्होने यही कहा है कि माया के वशीभूत होकर परमात्मा के अश ही भिन्न भिन्न रूपो मे अवतीर्ण होते हैं। और जैसे कीर और मरकट बधन म पडते हैं उसी प्रकार परमात्मा के कुछ अश माया के भागो की वासना से अपने को परमात्मा से पृथक् समझकर जीवात्मा का रूप धारण करते हैं। इसलिए वे बन्धन मे आ पडते हैं। तात्पर्य यह है कि परमात्मा की शक्ति विशेष से उसके ही कुछ अश माया-जनित लोभो के प्रलोभनो मे पडकर जीवात्मा बनते है और उन्ही से इस समग्र सृष्टि का विस्तार होता है। उपर्युक्त कथन के समर्थन के लिए विनयपत्रिका के १३६वें पद की कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।

जिय जब तें हरि बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो ॥
माया बस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो ॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुखलेस सपनेहु न मिल्यो।
भवसूल सोक अनेक जेहि तेहि पथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जन्म जरा बिपति, मतिमद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ, बिचारि लखि पायो कहीं ॥

तुलसीदास ने इन पंक्तियों में यही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि ईश्वर की माया के वशीभूत होकर उसके अंश ही अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को भूल जाते हैं और इससे वे असह्य सांसारिक कष्ट सहते रहते हैं। वे ज्यों ज्यों संसार में माया के प्रलोभन में पड़ते हैं और सांसारिक सुखों के लिए कर्म करते हैं त्यों त्यों बन्धते चले जाते हैं। इस प्रकार जीवात्मा परमात्मा का अंश होने पर भी सांसारिक कष्टों के जाल में आ पड़ते हैं। तुलसीदास जी ने, इस पद की अन्य पंक्तियों में मानव जीवन के कष्टों का बड़ा ही यथार्थ चित्र अंकित किया है।

आनंद सिंधु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृगभ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि चल आयो तहाँ॥
निर्मल निरंजन निर्विकार उदार सुख तै परिहर्यो।
निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न कारागृह पर्यो॥
तें निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
ता तें परबस पर्यो अभागे। ता फल गर्भबास दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृति, उदर गति जान्यो सोऊ।
सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवहीं।
कोमल सरीर, गभीर बेदन, सीस, धुनि धुनि रोवहीं॥
तू निज कर्मजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो॥
बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हों॥
तोहि दियो ज्ञान विवेक जन्म अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी बिषम माया गुनमई॥
जेहि किए जीव निकाए बस रस हीन दिन दिन अति नई।
सो करौ बेगि सभार श्रीपति बिपति महँ जेति मति दई॥
पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेरेउ अपराधी॥

× × ×

कहि को सके महा भव तेरे। जन्म एक के कछुक गने रे॥
खानि चारि संतत अवगाहीं। अजहु तो कहु बिचार मन माहीं॥

मुक्ति के उपाय

अब इस बन्धन से मुक्ति के लिए तुलसीदास ने कई पदों में उपाय बतलाए हैं। १३६वें पद के १० से १२वें पद तक उन्होंने इस उपाय का निर्देश किया है।

रामचन्द्र की भक्ति जितनी ही सुगम है उतनी ही सुख देने वाली भी। मनुष्य

के शोक, भय और तीनों तापों को वही हरने वाली है। यह भक्ति भगवान की कृपा से विवेक के द्वारा प्राप्त होती है। विवेक भी सज्जनों की सगत से उत्पन्न होता है और सज्जन भी तभी मिलते हैं जब भगवान की कृपा होती है। सच्ची बात यह है कि मनुष्य जब तक परमात्मा की ओर आकृष्ट नही होता और उसका प्रेम देखकर वे उसके ऊपर दया नही करते तब तक सज्जनों की सगति प्राप्त नहीं होती। जब सज्जन मिल जाते हैं तो उनके समागम से जीवों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर मनुष्य सुख और दुःख दोनो को समान समझने लगता है और उसमे अहकार हीनता उत्पन्न हो जाती है। अहकार हीन होने पर मद, मोह, लोभ, विषाद और क्रोध स्वभावतः नष्ट हो जाते हैं सज्जनो की सेवा से मनुष्य को सवत्र एक ही तत्त्व दिखलाई पडने लगता है। उसे सृष्टि में द्वैत का अनुभव नहीं होता और तब उसे रामचन्द्र के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है। धीरे-धीरे उसके देहजनित विकार नष्ट हो जाते हैं। और वह आत्मस्वरूप मे अनुरक्त हो जाता है। अब उसमें सन्तोष, शम, शीतलता दम और विदेहता उत्पन्न हो जाती है। वह निर्बल निरामय और एक रस हो जाता है और न तो इसमे हर्ष उत्पन्न होता है, न शोक। जिस जीव की ऐसी दशा हो जाती है वह अपने आपको पवित्र कर तीनों लोकों को पवित्र करता है। अगर इसी मार्ग से मनुष्य चित्त लगाकर चले तो उसके मुक्त होने मे भगवान अवश्य सहायक होते हैं। तुलसीदास जी का कहना है कि वेदों और सन्तों ने जिन मार्गों का निर्देश किया है उन्हीं मार्गों से चलकर जीव सुखी हो सकता है। यदि मनुष्य इस ससार या माया से सुख की आशा त्याग दे और भगवान की कृपा उस पर हो जाय तो कभी स्वप्न मे भी उसे दुःख नही होता। इसलिए तुलसीदास के अनुसार ब्राह्मणों, देवताओं, गुरुजनो, सतों और भगवान् मे प्रेम रखने वाले लोग ही ससार से पार जा सकते हैं। तुलसीदास ने इसी भाव की पुष्टि १६वें पद मे भी की है। उनका कहना यह है कि राम की भक्ति को छोडकर कलियुग मे योगसाधना, यज्ञ करना, मन्त्रो का जाप करना, वैराग्य कठिन तपस्या करना और अच्छे तीर्थों में जाना वैसा ही है जैसा हाथी को बाँधने के लिए धूल की रस्सी बनाना। रामचन्द्र की भक्ति के समक्ष ये सब चिन्तामणि के समक्ष गुजा के तुल्य है इसलिए मनुष्य को परमात्मा की भक्ति का ही आश्रय लेना चाहिए। पद सख्या ११५ मे तुलसीदास ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि भक्ति क्यों करनी चाहिए। कतिपय कारण इस प्रकार हैं—

१—भगवान ने तुझे वह मानव शरीर दिया है जो देवताओं को भी दुर्लभ है। देवताओं का शरीर केवल भोग के लिए है किन्तु मानवों का शरीर भगवान का भजन करने मे समर्थ है।

२—भगवान के भजन से मनुष्य का सच्चा स्वार्थ सिद्ध होता है क्योंकि विषय-वासनाओं मे लिप्त होना आग के साथ खेलना है। ससार मे जितने नाते हैं वे वास्तव मे भगवान की कृपा से ही हैं और इसलिए भगवान सबसे बडा हितू है।

३ वह 'हितू' कहीं दूर रहने वाला नहीं। वह तेरे लिए अलभ्य नहीं है। वह खोजने पर हृदय में ही मिल जाता है। निश्छल मन से स्मरण करने पर जीवों पर सदा कृपा किया करता है।

४ जीवों के हृदय में रहने वाला भगवान ऐसा समर्थ है कि जिसके समक्ष बड़े से बड़े देव भी तुच्छ हैं। वह तो ऐसा है कि जिससे विष्णु को विष्णुता, विधि को विधिता तथा शिव को शिवता दी है। इसलिए वह जीवात्मा का उद्धार करने में समर्थ क्यों नहीं होगा।

५ वह इतना कृपालु और समदर्शी है, उसका हृदय इतना भोलाभाला है कि यद्यपि शिव के ध्यान में भी नहीं आने वाला है तथापि प्रेम के वशीभूत होकर उसने निषाद-राजा को भी हृदय से लगा लिया था। इसलिए उसके स्वभाव को अपने हृदय में समझकर यदि उसके प्रति अनुराग उत्पन्न कर ले तो उसके सारे संताप दूर हो जाएगे।

तुलसीदास ने विनयपत्रिका के २०३ पद में भगवान को प्राप्त करने के १५ साधन बतलाए हैं। वे क्रमशः ये हैं—

१ अपने हृदय में रहते हुए ब्रह्म को भी मनुष्य प्रेम के बिना उसे नहीं पा सकता। इसलिए उसकी भक्ति करना आवश्यक है।

२ मनुष्य को द्वैत-बुद्धि छोड़ देनी चाहिए। अर्थात एक ब्रह्म के अतिरिक्त विश्व में अन्य कुछ नहीं यह भावना दृढ़ कर लेनी चाहिए। इससे मोह-माया और मद नष्ट हो जाते हैं तथा रामचन्द्र हृदय में विराजमान हो जाते हैं।

३ भगवान त्रिगुणातीत हैं। इसलिए मनुष्य जब तक अपने हृदय से तीनों को त्याग नहीं देता तब तक उन्हें प्राप्त करना दुर्लभ है।

४ बुद्धि, मन चित्त और अहंकार—इन सबों को वशीभूत कर लेना ब्रह्म-प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

५ इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँचों से उत्पन्न होने वाले सुखों की इच्छा त्याग देनी चाहिए।

६ षड्वर्ग अर्थात् काम, क्रोध लोभ मोह, ईर्ष्या और अहंकार। इनका परित्याग आवश्यक है।

७ अपने सप्तधातु निर्मित शरीर को केवल परोपकार के लिए धारण करना आवश्यक है।

८ रामचन्द्र आठों प्रकृतियों से परे और निर्विकार हैं। इसलिए हृदय की कामनाएँ त्याग कर उन्हें पाने का उपाय करना चाहिए।

९ इस नवपुर द्वार अर्थात् शरीर में निवास करने का पुरुषार्थ यह है कि उपर्युक्त उपायों से परमात्मा को प्राप्त कर लिया जाय।

१० दसो इन्द्रियों को सयम किए बिना परमात्मा को पाने के सारे साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

११ दसो इद्रियो का राजा मन है। वही मनुष्य के बधन और मोक्ष का कारण है। उसको अपने वश मे कर लेना, मुक्ति का सबसे बडा साधन है।

१२ आजन्म परोपकार करने की भावना ही ऐसा दान है जिससे तीनो लोक निभय हो जाता है। इसलिए जीवो को परोपकार ही मे मृत्युपर्यन्त तल्लीन रहना चाहिए।

१३ मनुष्य को जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनो अवस्थाओ स परे जाकर अर्थात् तुरीयवस्था मे स्थित होकर भगवान का भजन करना चाहिए। क्योकि वह मन, कम, वचन से अगोचर अनन्त है।

१४ चौदहो भुवनो मे परमात्मा ही चराचर रूप मे व्याप्त है। इसके अतिरिक्त सत्य कोई नही है। इस भाव को हृदय मे लाए बिना परमात्मा को प्राप्त करना कठिन है।

१५ उपयुक्त साधनो से युक्त होकर मनुष्य भगवान का भक्त बनता है और उसकी प्रमाभक्ति का स्वाद समझ लेता है और तब वह विषय-वासनाओ से उदासीन हो जाता है। उसका अहकार दूर हो जाता है तथा उसके हृदय मे ज्ञान, समता और शीतलता का विस्तार हो जाता है। इस प्रकार इन पन्द्रह साधनो से मनुष्य का हृदय स्वच्छ हो जाता है। वह परमात्मा के प्रेम मे तल्लीन हो जाता है और उसको कोई भी कष्ट और बाधा नही होती।

गोस्वामी जी के दशन का मर्म

जीवात्मा की मुक्ति के लिए तुलसीदास ने सत्सग नाममहिमा स्वदोषानुभूति, लघुताज्ञान और प्रेम की महत्ता का बार-बार वर्णन किया है। बार-बार इन भावो का वणन कर तुलसीदास ने जीवात्माओ के हृदय मे इन्हे दृढ करना चाहा है जिसमे इनका पूर्ण कल्याण हो। तुलसी के सारे गीतात्मक काव्यो मे उनके दशन का मम इतना ही है कि राम और जीव वस्तुत एक ही है। उनम भेद डालने वाली माया है और भक्ति क द्वारा माया स मुक्ति पाकर जीव पुन राम मे जा मिलता है। इस प्रकार तुलसी का दशन बडा सरल और स्पष्ट है किन्तु मत-मतान्तर के झगड म पडन वाल विद्वान उन्हें भिन्न भिन्न मतो की ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते है। कोई उन्ह अद्वैतवादी बताता है तो कोई विशिष्टाद्वैतवादी तथा कोई उन्हे पूणतया द्वैतवादी ही मान लेता है। ऐसे मतो मे कुछ का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

विभिन्न मतवाद

१— अपनी रचना मे गोस्वामी जी न सम्पूण शास्त्रो का सामजस्य करा दिखलाया है, एक वाममाग का सामजस्य करने मे गोस्वामी जी असमर्थ रहे। इतन

ही नहीं, गोस्वामी जी वाममार्ग को श्रुतिसम्मत नहीं मानते थे। यथा—

तजि श्रुति पथ वाम पथ चरहीं। बचक विरचि वेष जग छरहीं।

रावण के प्रति अंगद की उक्ति है—

कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।
जीवत सव समान ये प्रानी।

श्री गोस्वामी जी ने अखिल वेदमूलक वादों को, अधिकार भेद से ठीक माना है। अद्वैतवाद को गोस्वामी जी परम अधिकारी के लिए ठीक मानते थे यथा—

मोहि परम अधिकारी जानी।
लोग करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।
अकल अनीह अनाद अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।
मनगोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी।
सो तैं तोहि ताहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा।

और जब भुशुण्डि जी ने उस उपदेश को नहीं माना, तब मुनि जी से क्रोध पूर्वक कहलाते हैं कि—

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रत्युत्तर बहु आनसि।

भुशुण्डि जी इसी प्रकार का उल्लेख करते हुए गरुड़ जी से कहते हैं कि—

भक्ति पच्छ हठि कर रहेउँ, दीन्ह महामुनि साप।

यहाँ भी भुशुण्डि जी का हठ कहकर अद्वैतवाद की उत्कृष्टता दिखलाई है। ज्ञानदीप प्रकरण में तो "सोऽहमस्मि इतिवृत्त अखंडा" कहकर स्पष्ट अद्वैतवाद स्थापन करते हैं। परन्तु सामान्य जीव के लिए इसे नितान्त दुष्कर मानते हैं। इस भाँति अद्वैतवाद को गोस्वामी जी ने ज्ञानमार्गी से अभिहित किया है। विशिष्टाद्वैत को सर्वसाधारण के लिए उपयोगी माना है—

'मायावस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।"

अथवा

"सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।"

इस वाद को गोस्वामी जी भक्तिमार्ग के नाम से उक्त करते हैं। भक्तिमणि के प्रकरण में ज्ञानमार्गी की दुष्करता और भक्तिमार्ग की सुकरता को बहुत स्पष्ट करके दिखलाया है और इस भाँति ज्ञान पर भी भक्ति की प्रधानता दिखलाई है।

सब सिद्धान्तों को आदर देते हुए देखकर लोगों को सन्देह हो जाता है कि स्वयं गोस्वामी जी का कौन सा सिद्धान्त है। परन्तु विचारणीय बात है कि अशेष वादों का यथास्थान आदर तथा पंचदेवोपासना सिवा अद्वैतवाद के और कहाँ सम्भव है।[1]

१ श्रीरामचरित मानस, पंडित विजयानन्द त्रिपाठी, भूमिका, पृष्ठ ६-१०

२—गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस में जहाँ-जहाँ दार्शनिक विचार लिये हैं, वे शंकर अद्वैत के अनुसार ही हैं।[1]

३—गोसाईं जी के मायावाद और जगद्गुरु शंकराचार्य जी के मायावाद में भेद दिखाई देता है। शंकराचार्य जी माया का अस्तित्व नहीं मानते हैं। शंकर के लिए रचना भ्रम मात्र है तुलसी के लिए वह एक तथ्य है।[2]

४—परमार्थ दृष्टि से शुद्ध ज्ञानदृष्टि से तो अद्वैतमत गोस्वामी जी को मान्य है परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार वे भेद करके चलना अच्छा समझते हैं।[3]

५—गोस्वामी जी कुछ खण्डन मंडन वाले आचार्य तो थे नहीं इसलिए उन्होंने पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोणों को यथास्थान उपयोग किया है और दोनों को पूरी महत्ता दी है। परन्तु उनके समूचे सिद्धान्त वाक्यों का भली-भाँति स्वाध्याय करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका यथार्थ दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत है न कि विशिष्टाद्वैत।[4]

६—तुलसीदास के दार्शनिक विचारों की जड़ें अत्यन्त प्राचीन अतीत में (स्थित) हैं। ये कतिपय उत्तम विचार तुलसीदास को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए हैं जिनका प्रथम स्थिर रूप ऋग्वेद में है। उनके दार्शनिक विचार उपनिषद् से सम्बद्ध हैं। वे कट्टर भारतीय मतवाद की अपेक्षा, वेदान्त के दर्शन से अत्यन्त सन्निकट हैं।[5]

७—तुलसीदास का दार्शनिक दृष्टिकोण न पूर्णतया शंकराचार्य का अद्वैतवाद ही है और न रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत अथवा मध्वाचार्य का द्वैतवाद ही। वस्तुस्थिति कुछ और ही है। प्रधान भेददर्शन 'भेद' के अनुसार गोस्वामी जी की दार्शनिक पद्धति स्वतन्त्र है। फलतः हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि उनका अभिमत सिद्धान्त द्वैतवाद ही है।[6]

अन्तिम निष्कर्ष

किन्तु गोस्वामी तुलसीदास स्वयं वादों के विवादों में पड़ना नहीं चाहते। उन्होंने विनयपत्रिका के ११ वें पद में इन सारे मतवादों का उत्तर दे दिया है। वे कहते हैं—

---

१ तुलसी ग्रन्थावली, तृतीय खं०, पं० गिरिजा शंकर चतुर्वेदी, पृष्ठ १२३
२ गोस्वामी तुलसीदास, डा० श्यामसुन्दर दास, डा० पीताम्बर दत्त, पृष्ठ १६३
३ तुलसी ग्रन्थावली, तृतीय खं०, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १४५
४ तुलसी दर्शन, डा० बलदेव प्रसाद मिश्र पृष्ठ २२२
५ मानस की रूसी भूमिका, मू० ले० ए० बारान्निकोव, अनु० केसरी ना० पृष्ठ १११
६ तुलसीदास और उनका युग डा० राजपति दीक्षित, पृष्ठ ३०२

कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।

मीमांसावादियों ने इस संसार को सत्य माना है, अद्वैतवादियों ने मिथ्या तथा विशिष्टाद्वैतवादियों ने इसे सत्यासत्य माना है। तुलसीदास इन सबको भ्रम मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने दर्शन से बढ़कर भक्ति को ही महत्त्व दिया है। इसलिए वे समग्र विश्व को राममय मानते हैं। माया को परमात्मा की शक्ति विशेष मानते हैं। ऐसी परिस्थिति में वाद के वृत्त में बँधे रहना बड़ा कठिन है। सब वादों को यथा स्थान आदर देते हुए उन्हें किसी वाद पर आग्रह नहीं है। वे समग्र सृष्टि में राम को व्याप्त समझते हैं और राम का भजन ही जीवों की मुक्ति का साधन मानते हैं। यह बात उनकी गीतकृतियों विशेषतः विनयपत्रिका से सुस्पष्ट हो जाती है।

प्रपत्ति

प्रपत्ति का अर्थ और व्याख्या

स्वामी हरिदास ने रहस्यत्रय में प्रपत्ति का अर्थ शरणागति बतलाया है। उनका कहना है—

"गम्लृ-गतौ पद गताविति द्वयोरपि धात्वोरेकार्थ कत्वाच्च शरणागत शब्द—प्रपन्न शब्दयोरेकार्थकत्वावगमात्। अर्थात् "गम्लृ गतौ" और "पदगतौ" इन दोनों धातुओं का अर्थ एक होने से शरणागत शब्द और प्रपन्न शब्द पर्यायवाची हैं। फिर प्रपत्ति के बारे में कहा गया है—भगवद् रूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपाय-हीन व्यक्ति की पथव्यापिनी (संलग्न) निश्चयात्मिका मे बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वरूप है।[1] तथा "अनन्य साध्य भगवत्प्राप्ति में महाविश्वास पूर्वक भगवान् को ही एकमात्र उपाय समझकर प्रार्थना करते रहना ही प्रपत्ति है और इसी को शरणागति कहते हैं।"[2]

शरणागत का अर्थ भी होता है शरण अर्थात् घर पर आया हुआ। जब भक्त भगवान को ही उपाय और उपेय (फल) समझकर उसकी शरण में चला जाता है तो फिर उसे अन्य किसी साधन की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जब सारे धर्मों का परित्याग कर भक्त उसकी शरण में चला गया तो वह चिन्तामुक्त हो गया, "मा शुचः" हो गया। इसलिए भगवान् राम ने समुद्र तट पर बन्दरों से कहा—"जो मेरी

---

1. बुद्धिः स्वरूपा यत्र पथव्यापिनी
प्राप्येच्छानुगतस्य प्रपत्तिर्निरूप्यते।
—पांचरात्र विष्वक्सेन संहिता से साधनांक कल्याण, अगस्त सन् १९४० से उद्धृत।

2. अनन्य साध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम्
तदेकोपायता याचा प्रपत्तिः शरणागतिः।
—पांचरात्र विष्वक्सेन संहिता—साधनांक, कल्याण अगस्त, पृष्ठ ६०

शरण में आकर एक बार ही मैं आपका हूँ ऐसा कहता है उसे सभी प्राणियों से एव उसी प्रकार के सभी प्राणियों के लिए अभयदान देता हूँ, ऐसा व्रत है।[1]

इसलिए प्रपत्ति में भक्त उपायान्तरों का परित्याग कर एकमात्र भगवान् के चिन्तन में अपने को तल्लीन कर देता है। उसे न सांसारिक दूषणाओं की आकांक्षा रहती है और न मुक्ति की विवक्षा ही जो कुछ उसके लिए काम्य है वह उसका भगवान् उसका आराध्य है।

इसलिए महाकवि तुलसी ने कहा है—

विश्वास एक राम नाम को।
सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक गुन ग्राम को।
बैठे नाम काम तरतर डर कौन घोर घन धाम को।
को जाने को जैहैं जमपुर को सुरपुर धाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को।

—विनयपत्रिका १५५।

जब एक राम नाम का विश्वास हो गया, जब व्यक्ति जगजीवन राम का गुलाम हो गया है तो फिर उसे सांसारिक पारलौकिक कष्टों का क्या भय? वह तो ज्योंही उसकी शरण में आया उसके सारे कष्ट दूर हो गये। रावण के कष्ट से पीड़ित विभीषण ज्योंही रामचन्द्र की शरण में आया—त्योंही भगवान् ने तुरत उसे टीका कर, लंकाधिपति बना दिया। अतः शरणागति भी भक्ति ही है लेकिन उत्कृष्टतम कोटि की भक्ति। द्रौपदी ज्योंही प्रभु की शरण में चली गई त्यों ही उसके कष्ट-क्लेश दूर हो गए। गजेन्द्र ने ज्यों ही प्रभु को पुकारा त्यों ही वे दौड़े आ गए।

भक्ति और शरणागति में पार्थक्य

भक्ति और शरणागति के पार्थक्य पर भी विचार कर लेना चाहिए। भक्ति और प्रपत्ति में एक स्पष्ट भेद यही है कि भक्ति जहाँ साधन रूपा है वहाँ प्रपत्ति साध्य या फल रूपा। (२) भक्ति और प्रपत्ति दोनों में भगवद् अनुग्रह और प्रेम का प्रकर्ष होता है और दोनों का फल भी भगवान् ही है, परन्तु भक्ति में साधन विशेष स्वीकार है, प्रपत्ति में साधनानुष्ठान का स्वीकार नहीं है, केवल भगवान् का ही स्वीकार है। (३) प्रपत्ति में भगवत्सेवा, भगवान् के नाम का जप, कीर्तन आदि का निषेध नहीं है, परन्तु ये कार्य आवश्यकीय भी नहीं है। शरणागत भक्त के कार्य भगवान् की प्राप्ति के लिए नहीं बताये गए, वरन् ये लौकिकासक्ति तथा, आसुरावेश से बचने के लिए होते हैं।"[2]

---

१ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।

वाल्मीकि (६।१८।३३)

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६७०—मत देवर्षि रमानाथ शास्त्री की पुस्तक "भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद"—पृ० ४६

प्रपत्ति के भेद

पाँचरात्र की लक्ष्मी संहिता में प्रपत्ति के छह अंगों का वर्णन है।[1]

१ आनुकूल्य का संकल्प

२ प्रातिकूल्य का वर्जन

३ रक्षिष्यतीति विश्वास

४ गोप्तृत्व वरण

५ आत्मनिक्षेप

६ कार्पण्य

तुलसीदास जी पूरे प्रपन्न भक्त थे इसलिए उनकी इन कृतियों में प्रपत्ति के छह अंगों के भाव वाले अनेकों पद मिल सकते हैं। विशेषत विनयपत्रिका के सैकड़ों पदों में पर्याप्त के विभिन्न भाव पाए जाते हैं। अपने आराध्य की शरण में जाने पर आराधक आत्महितार्थ अनुकूल सत्कार्यों के संपादन का संकल्प करता है, उसके प्रतिकूल पथ का परित्याग करता है, उसकी रक्षा में विश्वास करता है तथा उस परमात्मा को सब प्रकार से रक्षक के रूप में अंगीकार करता है। इसके साथ ही वह अपना सर्वस्व (देह, गेह, नेह आदि) उसी को अर्पित कर देता है किन्तु इस पर भी उसमें लेशमात्र का अहंकार नहीं होता। यह समर्पण बिल्कुल कैंकर्य भाव से ही होता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक रूप से शरणागति के ये प्रकार अत्यंत मूल्यवान् हैं और तुलसी की विनयपत्रिका के एक-एक पद में अनुस्यूत हैं।

१ आनुकूल्य का संकल्प

अब लौं नसानी, अब न नसैहों।
रामकृपा भव निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहों।
पायेऊँ नाम चारु चिंतामनि, उरकर ते न खसैहों।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहों।
परबस जानि हस्यो इन इंद्रिन निज बस ह्वै न हसैहों।
मन मधुकर पन कै तुलसी पद कमल बसैहों।[2]

अब तो आयु व्यर्थ ही बीत गई, लेकिन तुलसीदास कहते हैं कि वे अब उसे व्यर्थ बीतने नहीं देंगे। उन्हें रामरूप चिंतामणि मिली है और वे अपने हृदय रूपी हाथ से कभी नहीं गिरने देंगे। अर्थात् वे सर्वदा राम-नाम स्मरण में तल्लीन रहेंगे। वे बराबर अपने चित्त रूपी स्वर्ण को रघुनाथ के श्याम सुन्दर रूपी कसौटी पर कसेंगे।

---

[1] आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा।
आत्म निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।
पाञ्चरात्र, लक्ष्मीसंहिता—साधनांक, पृ० ६० । १९४० ई०

[2] विनयपत्रिका—१०५ । इसी भाव के पद—

पहले उनका मन-भ्रमर बडा चचल था लेकिन अब वह राम के चरणो को छोड़कर अन्यत्र कही नही जायेंगे। कवि प्रपत्ति के अनुकूल सकल्प कर रहा है। गीतावली मे कवि विभीषण के द्वारा इसी प्रकार के भाव व्यक्त कराता है—

महाराज राम पहँ जाऊँगो।
सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहि सुहाउँगो।
सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं निपटहिं सकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउँगो।
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो?
सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच लोभाउँगो।
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो, बिनु बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो॥

प्रातिकूल्य का वर्णन—प्रपत्ति के बधाक संग, देग, काल कर्म और स्वभाव आदि दोषों का त्याग करना चाहिए। विभीषण ने सीताहरण के पश्चात् रावण को बहुत समझाया लेकिन जब उसने नहीं माना तो उसका त्याग करना आवश्यक हो गया। इसी भाव का पद गोस्वामी जी इस प्रकार से कहते हैं—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँडिए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भए मुदमगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूँजी प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥[1]

३ रक्षिष्यतीति विश्वास—जब भगवान् राम ने बड़े-बड़े आर्तों एव अनार्यों की रक्षा की है तो वह भला तुलसी की रक्षा क्यो न करेंगे, ऐसे अडिग विश्वास से ओत-प्रोत प्रस्तुत गीत देखें—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो॥
करम, उपासन, ज्ञान, बेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो॥
चाटत रह्यौं स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो॥

१ विनयपत्रिका १७४। इसी भाव के और पद—विनयपत्रिका १०४

स्वारथ और परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो॥
प्रीति प्रतीति जहां जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अरो॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तो जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहि समुझि परो॥[1]

४ गोप्तृत्व वरणम—संसार सागर से पार उतरने के लिए भगवान् को गोप्तु के रूप में वरण करना बड़ा आवश्यक है। इसलिए तुलसीदास भगवान् से कहते हैं—

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ?
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन दुख धावत हौ तजि धाम॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन॥
दितिसुत-त्रास त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी॥
भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर-नारी।
बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी॥
एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर॥
लोभ ग्राह दनुजेस क्रोध, कुरुराज-बन्धु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भजहु राम उदार॥

जब गजेन्द्र, प्रह्लाद तथा द्रोपदी ने "मेरी रक्षा कीजिए" कहकर पुकारा था तो आप तुरत दौड़ गए थे। उन तीनों के एक-एक ही शत्रु थे लेकिन जब तुलसी को लोभ रूपी ग्राह, क्रोधरूपी हिरण्यकशिपु तथा कामदेव रूपी दुःशासन तीनों दारुण दुःख दे रहे हैं तो इतना विलम्ब क्या कर रहे हैं।[2]

कृष्णगीतावली में द्रोपदी की प्रपत्ति के प्रयोग में कवि ने कहा है—
अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वासी बिसारी।
हाथ उठाइ अनाथ नाथ सों "पाहि पाहि, प्रभु, पाहि!" पुकारी॥
तुलसी परखि प्रतीति प्रीतिगति आरतपाल कृपालु मुरारी।
बसनबेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी॥[3]

---

१ विनयपत्रिका। २२६। अन्य पद २२५
२ ,, ९३। श्री भाव के पद ६४, १४८, १४५
३ कृष्णगीतावली—६०। श्री भाव के पद गीतावली सु० ४३ "दास तुलसी सभय दरत रघुबरसनि पाहि कहि काहि मन्दो न तारन-तरन।"

५ आत्मनिक्षेप—यह शरीर और उसके सारे सम्बन्धित पदार्थ प्रभु के हैं—

मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाउँ।
निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर-बधु, बिभीषनहित बिनु कोसलपाल कहूँ न समाउँ॥
प्रनतारति-भजन जनरजन सरनागत पवि पजर नाउँ।
कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ॥[1]

६ नीचे के पद मे कवि अपने को अकिंचनाति—अकिंचन मानता हुआ कहता है—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतितपावन ? केहि अति दीन पियारे ?
कौने देव बराय, बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, व्याध, पषान, विटप, जड जमन कवन सुर तारे ?
देव, दनुज, मुनि नाग, मनुज सब माया बिवस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ?[2]

प्रपन्नो के भेद

प्रपत्ति के ऊपर जो भेद किए गये हैं वह परस्पर असबद्ध विभाजन नही है यथार्थ मे एक प्रकार के पद का भाव दूसरे प्रकार के पदो मे भी मिलता है लेकिन प्रपत्ति के भेदो की प्रधानता के कारण इनका विभाजन किया गया है।

आचार्य रामानन्द ने प्रपन्नो के दो भेद किए हैं—दृप्त और आर्त्त। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

प्रपन्नश्चापिसहप्तस्तथा चार्त्त इतिद्विधा
शरीर स्थिति पर्यन्तमाधो त्रैव यथोचितम्
प्राप्तदुःखादिभुजान शरीरान्तेवसाय च
महाबोधोति विश्वासी मोक्षसिद्धिमवस्थितम्।
अधान्त्यो सहमान स्तत्क्षणम् क्षु ससृतिम्।
तथैव भगवत्प्राप्तो सत्वरस्यान्त उच्यते।[3]

अर्थात् प्रपन्न दो प्रकार हैं दृप्त और आर्त्त। दृप्त वे हैं जो स्वकर्मानुसार प्राप्त दुख आदि को शरीर की स्थिति तक यहाँ ही भोग करते हुए, शरीर के अन्त मे मोक्षसिद्धि का निश्चय करके, महाज्ञानिवान् और अत्यन्त विश्वासयुक्त होकर रहते हैं। और जो ससार रूपी बडवानल को तत्क्षण मे ही न सहन करते हुए, भाव प्राप्ति मे अत्यन्त शीघ्रता चाहते हैं, उन्हें आर्त्त कहते हैं।

---

१ विनयपत्रिका—१५३
२ ,, १०१, ९५, ९६ १६०
३ वै० म० भा०—१३५, १३६, १३७, पृ० ५७

दृप्त भक्त के उदाहरण गीतावली में भरत जी कहे जा सकते हैं और उनकी पंक्तियों में यह भाव स्पष्ट है—

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो।
जनमि कैकेयी कोखि कृपानिधि ! क्यो कछु चपरि कहौंगो।
"भरतभूप, सिय राम लखन बन', सुनि सानद सहौंगो।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख संतोष लहौंगो।
प्रभु जानत जेहि भांति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो।
आगे की बिनती तुलसी तब जब फिर चरन गहौंगो।[1]

भरत भगवान् की आज्ञा पाकर अयोध्या में ही रहेंगे। जब कैकेयी के गर्भ से उनका जन्म हुआ तो कोई बात ये बढ़कर कैसे कह सकते हैं "भरत राजा रहें" और राम लक्ष्मण सीता वन में' इस दुःसह दुःख को तब तक सहते रहेंगे जबतक वनवास की अवधि समाप्त नहीं होती। किन्तु भगवान् के आर्त्त भक्त के लिये उनका वियोग एक क्षण भी सह्य नहीं। लक्ष्मण जी इसी कोटि के भक्त हैं। उनकी स्थिति इस प्रकार वर्णित हुई है—

ठाढ़े हैं लखन कमलकर जोरे।
उर धकधकी न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन, प्रान कृपान बीर सी छोरे।
तात बिदा मांगिए मातु सों, बनिहै बात उपाइ न और॥
जाइ चरन गहि आयसु जाँचो, जननि कहत बहुभांति निहोरे।
सिय रघुबर-सेवा सुचि ह्वैहौ तो जानिहौं सही सुत मोरे॥
कीजहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहि थोरे।
तुलसी सुनि सिय चले चकित चित,
उड़यो मानो बिहग बधिक भए भोरे॥[2]

बीर जिस प्रकार कृपाण निकालकर मेरे लिए तत्पर रहते हैं उसी प्रकार लक्ष्मण भगवान् के लिए प्राण न्योछावर करने के लिए उद्यत हैं। हृदय में इतनी धुकधुकी है कि प्रभु साथ ले चलेंगे अथवा नहीं। अगर साथ ले नहीं चलते तो उनका क्षण विमुक्त होकर रहना भी प्राणघातक सिद्ध होगा।

निष्कर्ष

विनयपत्रिका में अधिकांश पदों में तुलसी की आर्त्तता ही प्रकट होती है। वे बार बार इसलिए ही तो विनय कर रहे हैं कि भगवान् उन्हें अपना लें। विनय की पाती भी इसीलिए लिखी जा रही है कि वे उन्हें अपनी शरण में ले लें और जब

१ गीतावली—अयोध्या काण्ड, पद ७७
२ ,, ,, ,, ,, ११

रघुनाथ हाथ की सही पड गई तो तुलसी अनाथ की बिगडी भी आखिर बन ही गई। हृदय की अनोखी आर्द्रता से सिक्त ऐसी पत्रिका की समता शायद ही कोई प्रणय-पत्रिका कर पाये।

विनय की भूमिकाएँ

विनयपत्रिका के सुप्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथ जी ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना मे विनय की सात भूमिकाओ का उल्लेख सोदाहरण किया है।[1]

१ दीनता
२ मानमर्षता
३ भयदर्शना
४. भर्त्सना
५ आश्वासन
६ मनोराज्य
७ विचारणा

१ दीनता—दीनता विषयक पदो मे भक्त कवि तुलसीदास ने अपने दोषो का स्वीकरण किया है तथा इसके उपरान्त अपने को धिक्कारा है। तुलसी ने अपने को नीच से नीच, क्षुद्र से क्षुद्र, पापी से पापी मानकर अनेक पद लिखे हैं। इन पदो मे आज के कवियो का अहम् नही फूत्कारता है वरन इन पदो मे शुद्ध स्वर्ण के समान अन्त करण गलाकर रख देता है।

> रामचद्र रघुनायक ! तुम सों हौं बिनती केहि भाँति करौ ?
> अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं॥
> परदुख दुखी, सुखी परमसुख तें सतसील नहि हृदय धरौं।
> देखि आन की बिपति परम सुख, सुनि सपति बिनु आगि जरौं॥
> भक्ति, बिराग, ग्यान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं।
> सिव-सर्बस सुखधाम नाम तव बेचि नरकप्रद उदर भरौं॥
> जानत हूँ निज पाप जलधि जिय जल-सीकर सम सुनत लरौं।
> रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुन-गिरि सम रज ते निदरौं॥
> नाना बेष बनाइ दिवस निसि परबित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
> एकौ पल न कबहु अलोल-चित हित दै पद सरोज सुमिरौं॥
> जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं।
> तुलसिदास प्रभु कृपा बिलोकनि गोपद ज्यो भवसिंधु तरौं॥[2]

---

१ विनयपत्रिका सटीक, पृ० २। सात भूमिका में विनय करन्है। प्रथम दीनता। पुनः मान-मर्षता। पुन भयदर्शना। पुन भर्त्सना। पुन आश्वासन। पुन मनोराज। पुन विचा-रणा॥

२. विनयपत्रिका—१४१। इस तरह के और पद वि० १५३, १५८, १५९, १७७, १८६ २३३, २६१

२ मानमर्षता—इस प्रकार के पदो मे तुलसी ने अपने अभिमान का भजन कर अपने प्रभु की कृपा के लिये अपनी आकांक्षा प्रकट की है। भक्ति के मार्ग का सबसे बड़ा प्रत्यूह है आत्माभिमान। भक्त कवि सबसे पहले अपने अभिमान के अरि पर ही विजय पाना चाहता है। विनयपत्रिका के भक्त्यात्मक पदो मे ऐसे बहुत पद हैं जिनमे हम तुलसी को मानमर्षता की भूमिका मे विचरण करते देखते हैं। निम्नांकित पद मे तुलसी ने स्पष्टतया अपने निरभिमानी रूप को उपस्थित किया है—

जो पै जिय धरिहौ अवगुन जन के।
तो क्यों कटत सुकृत नख तें मोपै बिटप बृंद अघ बन के।
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत करम बचन अरुमन के।
हारहिं अमित सेष सारद स्त्रुति गिनत एक एक छन के॥
जो चित चढ़ै नाम महिमा निज गुन गन पावन पन के।
तो तुलसिहिं तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के॥[1]

३ भयदर्शना—भक्त कवि बार-बार अपने को भगवान् की ओर उन्मुख करता है। किन्तु मन इतना शक्तिशाली होता है कि वह ईश्वरभक्ति का विचार न कर, इधर उधर इन्द्रिय सुखो की ओर भटकता फिरता है। मन ऐसे मुँह जोर तुरग की तरह या निरकुश गजराज की तरह कि वह अकुश मानने को तैयार ही नही होता इसलिए तुलसी को भी "साम-दाम" वाली नीति अपनानी पड़ती है। नाना प्रकार के भय दिखला कर वे अपने मन को प्रभु मे केन्द्रित करना चाहते हैं—

राम कहत चलु राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तो भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे॥
बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोना खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे॥
विषम कहार मार-मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावँहि ठाउँ बझाऊ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे।
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसीदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे॥

४ भर्त्सना—भय दिखाने से भी मन अपनी वृत्ति नही छोड़ता। तब भक्त को अपने मन को डाटने फटकारने की आवश्यकता पड़ जाती है। जैसे माता पिता अपने बिगड़े पुत्र को सन्मार्ग पर लाने के लिए तरह-तरह से उसकी भर्त्सना करता है ठीक उसी तरह तुलसी ने अपने मन की भर्त्सना की है। प्रस्तुत पद देखें—

---

१ विनयपत्रिका ९६। इस प्रकार के अन्य पद ९४, ९५

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भजन-पद बिमुख अभागी।
निसि बासर रुचि पाप, असुचि मन, खल मति-मलिन निगम पथत्यागी॥
नहिं सतसग भजन नहिं हरि को स्रवन न राम-कथा अनुरागी।
सुत-वित-दार भवन-ममता-निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी॥
तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि सठ हठि पियत विषय-बिष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जनमत जगत जननि दुख लागी॥[1]

५ आश्वासन—भक्त जब आरंभिक अवस्था मे रहता है तब उसके मन मे यह विचिकित्सा उपस्थित हो सकती है कि इतने अनेक शत्रुओ के रहते हुए भला उसका त्राण किस प्रकार समव है। ये शत्रु दो वर्ग के हैं। एक भीतर के और दूसरे बाहर के। अंतर्मन मे तरह-तरह का सकल्प विकल्प, कप विकर्ष होता रहता है। विधि-निषेध के द्वन्द्व से अबोध मन दिग्भ्रमित हो जाता है और प्रेम पदार्थों को ही श्रेय समझ लेता है। आखिर भक्ति से क्या लाभ? लौकिक सुख ही सभी सुखो मे उत्तम है। दूसरी ओर बाहर के शत्रु भी भक्ति के मार्ग मे विघ्न उपस्थित करने मे चूकते नही। किन्तु आश्वासन की भूमिका मे भक्त अपने को प्रभु की अपार महिमा तथा अमित शक्ति मे आश्वस्त करता है। वह मन को भली भाँति सान्त्वना प्रदान करता है। ढाढस बधाता है कि प्रभु की वरद छाया जब तक उसके ऊपर विद्यमान है तब तक ससार के किसी भी वैरी के द्वारा उसका अनिष्ट समव नही। निम्नाकित पक्तियो मे तुलसी का वैसी ही सुदृढ आत्म विश्वास मुखरित हुआ है—

जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै॥
तकै नीच जो मीच साधु की सोइ पामर तेहि मीच मरै।
बेद विदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति पथ पाउँ धरै?
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अविचल कबहूँ न टरै।
अबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥
सो न कहा जो कियो सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभुप्रसाद सौभाग्य बिजय जस पाँडु तनय बरिआई बरै॥
जो जो कूप खनैगो पर कहूँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहु सुख न सतद्रोही कहूँ, सुरतरु सोउ बिष फरनि फरै॥
है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै॥
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरै॥[2]

६ मनोराज्य—मनोराज्य की भूमिका मे गोस्वामी जी ने अपने आराध्य से अपनी मनोरथ पूर्ति की याचना की है। उन्हें सुमगति नही चाहिए, सम्पत्ति नही

---

१. इसी प्रकार के पद १२६
२ ऐसे ही पद ७१, ८१, १२६

चाहिये, ऋद्धि नहीं चाहिये, सिद्धि नहीं चाहिये। जगत् में जितने सम्बन्ध हैं वे सब प्रभु में आकर सिमट जाय, बस उनकी एकमात्र यही अभिलाषा है। निम्नांकित पद उल्लेखनीय है—

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताई।
चहौं न सुगति,सुमति,सपति,कछु रिधि सिधि,बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद बढ़ो अनदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाय मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ अंड की नाई॥
यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहु सिमिट एक ठाई॥[1]

७ विचारण—विचारण की भूमिका में भक्त कवि दशा में लोक में पहुँच कर जीवात्मा एवं परमात्मा सम्बन्धी अनेकानेक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करता है। ऐसे पद भी विनयपत्रिका में अधिक हैं।

केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥[2]

श्रीकृष्णगीतावली और गीतावली में भूमिकाएँ

विनय की भूमिकाओं की दृष्टि से तुलसी की भक्त्यात्मक कथा प्रधान गीतों वाली पुस्तकों—गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली का भी अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु विनयपत्रिका की तरह प्रत्येक पद में सातों भूमिकाओं में किसी एक को खोज लेना सम्भव नहीं। फिर भी श्रीकृष्णगीतावली के अन्तिम दो पदों में तथा गीतावली के सुन्दरकाण्ड के विभीषण शरणागति—प्रसंग में विनय की प्रायः सभी भूमिकाओं का दिग्दर्शन सम्भव है। विभीषण द्वारा इस पद में आत्मार्पण का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है—

महाराज राम पहँ जाउँगो।
सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहि सुहाउँगो।

---

१ इसी प्रकार के अन्य पद ७५, १०४

२ इसी प्रकार के अन्य पद ७३, ८८, ११६

सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं निपटिहिं सकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउँगो।
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो?
सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो।
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो, बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो।।

इसी प्रकार इस पद मे दीनता दर्शनीय है और यह विनयपत्रिका के दीनता व्यजक पदो से किसी प्रकार भी न्यून नही समझा जा सकता—

कौन हित बिरद पुराननि गायो।
आरत बधु, कृपालु, मृदुल चित जानि सरन हौं आयो।
तुम्हारे रिपु को अनुज बिभीषन, बंस निसाचर जायो।
सुनि गुन सील सुभाउ नाथ को मैं चरननि चितु लायो।
जानत प्रभु दुख सुख दासनि को तातें कहि न सुनायो।
करि करुना भरि नयन बिलोकहु तब जानो अपनायो।
बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो।
भेंट्यो हरि भरि अक भरत ज्यों लकापति मन भायो।
कर पकज सिर परसि अभय कियो, जन पर हेतु दिखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो?

निष्कर्ष

इस प्रकार हमने देखा कि गोस्वामी जी के इन गीत पदो—विशेषत विनय पत्रिका मे विनय की भूमिकाओ का अत्यन्त ही कुशलपूर्वक निर्वाह हुआ है। गोस्वामी के प्रतिमा-सर्वाध ने यदि रामचरितमानस मे सात काडो के सात सोपानों द्वारा रामचरित के पवस सरोवर मे पहुँचा दिया है तो विनयपत्रिका मे सात भूमिकाओ की सतत परिक्रमा कराकर भक्ति के पावन लोक मे। इसलिए यदि मानस मे तुलसी के प्रभु के विराट् रूप की झाँकी मिलती है तो विनयपत्रिका मे भक्ति की तपोभूमि मे पहुँचकर भक्तगण आत्मे को तन्निष्ठ तल्लीन कर देते हैं।

●

: ४ :

साहित्य शास्त्रीय दृष्टि से गीतो का अध्ययन

सगीत

महाकवि प्रबन्धकार की दृष्टि से अधिक महत्व के अधिकारी हैं अथवा गीतिकार की दृष्टि से इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है। कथानक निर्वाह मे सांगीतिकता सन्निविष्ट हो जाने से उसकी भावजंकता सहस्रगुणित हो जाती है। गीतो मे, विशेषत भक्तिपरक गीतो मे, सगीतधर्मिता अनिवार्य है। सगीत के द्वारा मन इतर विषयो से हटकर अतीव आह्लादिनी स्थिति को प्राप्त हो जाता है। इसलिये मन के विरोध के लिये गोस्वामी जी ने इन भक्ति विह्वल एव श्रद्धा वलित पदो मे सगीत के तत्वों का बहुश समावेश किया है।

गीतियो की प्राणधाराएँ भावकेन्द्रण एव सगीत ही हैं। भाव घनत्व अनुमेय, ग्राह्य या चर्य तभी होता है जब अर्थबोध हो जाता है लेकिन सगीत मे शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस की प्रतीति हो जाती है। यहाँ तक कि शब्द हो या न हो, केवल नाद के बल से ही सगीत मे रस की निष्पत्ति हो जाती है।[1]

गीत के सुडौल होने के लिए दो बातो की आवश्यकता है। स्वरचातुरी और शब्दचातुरी।[2] लेकिन इन दोनो की क्षमता एक व्यक्ति मे होना असम्भव प्राय है। कठ माधुर्य किसी कवि मे भले ही न हो, लेकिन उसे शब्द प्रयोग मे सगीतिक लय-ताल निर्वाह का ध्यान तो रखना ही चाहिए, नही तो वह सफल गीतिकार हो ही नही सकता।

महाकवि तुलसीदास केवल कुशल-कवि ही नही वरन् निष्णात सगीतज्ञ भी हैं। वे गीतों की रचना इस प्रकार करते हैं जैसे सगीत के लिए ही वह प्रस्तुत की जा रही हो। इनके गीतों का साहित्यिक स्तर सांगीतिकता को खडित नही

१ प्रणव भारती—प० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० १६

२ बकिम निबधावली—पृ० ५२

करता। इसलिए इनके गीतो मे काव्य, स्वर माधुर्य एव तालपद्धति का त्रिवेणी सगम उपस्थित हो गया है।[1]

इसलिए गीतिकाव्य मे सगीत की दृष्टि से दो तत्त्वो पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। (१) राग योजना और (२) ताल पद्धति।

राग

सगीत मे राग योजना आवश्यक है।[2] राग रज धातु से बना है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना। अत स्वरो की वह विशिष्ट रचना राग है जिसमे स्वर तथा वर्ण दोनो हो और जो सुनने वालो के चित्त को प्रसन्न करें।[3] इसका रत्नाकर मे विशदरूप से विवेचन किया गया है।

अत अनुकूल राग विधान के द्वारा कोई गीत अधिक प्रभावशाली एव प्रेषणीय होता है। केवल स्वर गायन या वादन से भी रसोत्पत्ति सभव है किन्तु गीतो के अर्थानुसार की गई स्वर रचना से रसोत्पत्ति अधिक सुगम और उत्तम सिद्ध होती है।

तुलसी सगीतज्ञ थे

क्या महाकवि तुलसी सगीतज्ञ थे ? क्या उन्होने अपने गीतो पर रागांकन स्वय किया था ?—ये प्रश्न बडे विवादग्रस्त है। तुलसीदास की कथाकाव्य वाली गभीर प्रवृत्ति देखकर शायद यह विश्वास न हो, लेकिन कुछ ऐसे तर्क हैं जिनके आधार पर उनको सगीतज्ञ मानने मे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं।

---

१ Aspects of Indian Music—Harmony of Poetic composition with Mood of Rasa —Page 18

२ (a) The conception of Ragas is one of the basic principles of the system of Indian Music

—The Ragas and Raginis—O C Ganguly Intro Page I

(b) A basic concept in Hindu Music is Raga

—Page 332 Dictionary of Music—With Apel

३ (a) Literally, raga is some thing that colours, or tings the mind with some definite feeling—a wave of passion and imotion

—The Ragas and Raginis—O C Ganguly Introduction Page I

(आ) यो मोऽध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्णं विभूषित ।
रञ्जको जन चित्तानां स राग कथितोबुधे ॥

—सगीत रत्नाकर-शार्ङ्गधर, पृ० ?

—थानिवासमूर्ति द्वारा सपादित।

(आ) स्वरवर्णभूषितो यो ध्वनि भेदो रञ्जक स रागइ ।

—रागविबोध—चतुर्थविवेक—सोमनाथ।

(१) तुलसीदास के गीतकाव्य की प्राचीनतम प्रतियों पर राग रागिनियों के नाम अंकित हैं (२) जयदेव के गीतगोविन्द के गीतों पर रागों और तालों के नाम दिये हैं जैसे गुर्जर, मालव, राग आदि। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर विद्यापति, चंडीदास और गोविन्ददास ने भी अपने गीतों में साथ विभिन्न रागों की चर्चा की है। सूर-मीरा के पदों पर भी रागों के नाम मिलते हैं। वे गायक भी थे। तुलसीदास गीत-काव्य के स्रष्टा होकर भी राग की जानकारी न रखें यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। (३) तुलसीदास का युग संगीत का स्वर्णकाल है। उन्हीं के समय में उत्तरी शास्त्रीय संगीत पद्धति का उन्मेष हुआ था और अनेक प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञों—तानसेन, बैजूबावरा, बाबा रामदास तथा रामदास प्रभृति का यश फैल चुका था। गोस्वामी जी पर साहित्यिक प्रभावों के अतिरिक्त संगीतशास्त्रीय प्रभाव भी पड़ा हो तो यह सर्वथा स्वाभाविक ही है।

कुछ विद्वानों का तर्क है कि उन्होंने अपने समसामयिक गवैयों से पूछकर रागोल्लेख किया होगा, परन्तु महाकवि की आश्चर्यजनक प्रतिभा देखते हुए ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं होगा। रही बाद के संगीतज्ञों के प्रश्न की बात तो इस संबंध में वियोगी हरि के इस कथन से सहमत हूँ कि "तुलसी पिंगलाचार्य के अति-रिक्त संगीतकला के भारी पंडित थे। कौन पद किस राग रागिनी में गाया जाता है, उसका वे पूर्ण विचार रखते थे। जिस राग के उपयुक्त जो पद रचा गया है, उसका भाव भी उसी के अनुरूप है।"[1]

गीत कृतियों में राग संख्या

गोस्वामी जी ने अपनी गीत कृतियों में इक्कीस राग-रागिनियों का सन्निवेश किया है। कृष्णगीतावली में ये दस राग हैं—आसावरी, कान्हरा, केदारा, गौरी, धनाश्री, नट, बिलावल मलार, ललित, सोरठा।

गीतावली में कुल उन्नीस राग हैं—आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठा, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट, टोडी सारंग, मलार, गौरी, मारू, भैरव, वसन्त तथा रामकली।

गीतावली के रागों का उल्लेख करते हुए विद्वानों ने एक बड़े भारी भ्रम की सृष्टि की है। रागों की सूची में उन्होंने चचरी को भी सम्मिलित कर लिया है। डा० रामकुमार वर्मा ने गीतावली में रागों में चचरी का उल्लेख किया है।[2] काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बैजनाथ जी, श्रीकान्तशरण जी तथा गीताप्रेस की प्रतियों में भी उक्त पुस्तक के अयोध्याकांड के ४१ वें तथा ४८ वें पद पर इस राग का नाम अंकित है।

---

[1] विनयपत्रिका की भूमिका—वियोगी हरि, पृ० ४३

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० ५८३

किन्तु इसका समर्थन न तो संगीतशास्त्र करता है और न कोषग्रंथ ही। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में चचरी के अर्थों में एक वर्णवृत्त, हरिप्रिया छंद तथा छब्बीस मात्राओं का एक छंद दिया गया है।[1] चचरी छंद का एक प्रकार है। रघुनन्दन शास्त्री ने लिखा है 'चचरी १८ अक्षरगाधृति जाति का छंद है। इसके प्रत्येक पाद में १८ अक्षर होते हैं।[2] संगीतशास्त्रों के ग्रंथों में कहीं उल्लेख नहीं है अतः इसे राग मानना उचित नहीं।

हरिहर प्रसाद की गीतावली में इन पदों पर चचरी का उल्लेख नहीं है। इस पूर्व के पद पर केदारा राग लिखा है। अतः इन पदों को भी केदारा राग में गाये जाने वाले पद मान लेना चाहिए। यद्यपि रागांकन के लिये अपनाई भी गई है।

गीतावली के रागों में मूहों की चर्चा भी की गई है किन्तु मूहो कोई स्वतन्त्र राग या रागिनी नहीं वरन् बिलावल का ही एक प्रकार है।

विनयपत्रिका में बीस राग हैं। आसावरी, कल्याण, कान्हरा, केदारा, जैतश्री, टोडी, धनाश्री, नट, बसन्त, बिलावल, बिहाग, भैरव, भैरवी, मलार, मारू, रामकली, ललित, विभास, सारंग तथा सोरठ।

जिस तरह भ्रमवश गीतावली के रागों में चचरी का उल्लेख किया गया है उसी तरह विनयपत्रिका के रागों में दण्डक का। डॉ० रामकुमार वर्मा ने विनयपत्रिका में इक्कीस रागों में दण्डक का उल्लेख किया है।[3] गीताप्रेस, वियोगी हरि, प० रामेश्वर भट्ट तथा बैजनाथ जी प्रभृति की प्रतियों में इस पद पर[4] दण्डक ही लिखा है।

किन्तु दण्डक कोई राग नहीं है। भारतखंडे संगीतशास्त्र तथा संगीत की अन्य पुस्तकों में इसका उल्लेख मैंने नहीं पाया।

दण्डक २६ से अधिक मात्राओं के पद वाले छन्द को कहते हैं। क्योंकि इस छंद के प्रत्येक पाद की मात्राएं छब्बीस से अधिक हैं इसलिए इस पद पर राग के स्थान में दण्डक ही लिख दिया गया और उसकी आवृत्ति भ्रमवश होती रही। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में दण्डक का अर्थ है "वह छन्द जिसमें वर्णों की संख्या २६ से अधिक हो। यह दो प्रकार का होता है। एक गणात्मक जिसमें गणों का बन्धन या नियम होता है, और दूसरा मुक्त जिसमें केवल अक्षरों की गिनती होती है।[5] रघुनन्दन शास्त्री जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है—२६ से अधिक वाले छन्द दण्डक कहे जाते हैं।[6]

---

१ संक्षिप्त हिन्दी शब्द-सागर—पांचवां संस्करण, पृ० ३५०

२. हिन्दी छन्द प्रकाश, पृ० ६४

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५६८

४ विनयपत्रिका, पद संख्या ३७

५. पांचवां संस्करण, पृ० ५४०

६ पृ० ४७

श्रीकान्त शरण जी की 'विनयपत्रिका'[1] के इस पद पर "राग केदारा" लिखा है। अतः इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि दण्डक राग से इस पद का कोई सम्बन्ध नहीं।

कृष्णगीतावली के दसों राग गीतावली और विनयपत्रिका के रागों में अन्तर्भुक्त हैं। गीतावली का गौरी राग विनयपत्रिका में नहीं है तथा विनयपत्रिका के भैरवी और विहाग राग गीतावली में नहीं हैं। अतः सम्पूर्ण तुलसी गीतिकाव्य में प्रयुक्त ये ही इक्कीस राग हैं—

आसावरी, कल्याण, कान्हरा, केदारा, जैतश्री, टोड़ी, धनाश्री, नट, बसन्त, बिलावल, विहाग, भैरव, भैरवी, मलार, मारू, रामकली, ललित, विभास, सारंग, सोरठा तथा गौरी।

राग और कविता के भाव का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने गीतिका की भूमिका में लिखा है "गीतों पर राग-रागिनी का उल्लेख मैंने नहीं किया। कारण हर एक राग रागिनी में गाया जा सकता है।"[2] मेरे विचार से एक गीत को अनेक राग-रागिनियों में बाँधा तो जा सकता है, लेकिन भाव को ध्यान में न रखकर उसे स्वरबद्ध किया जाए तो कविता की आत्मा पर ही आघात पहुँचेगा और अभिप्रेत भावों का सृजन नहीं होगा। निराला की ही एक गीति से इस बात को और भी स्पष्ट किया जा सकता है। गीतिका के ४७ वें पद को देखें—

प्राण धन को स्मरण करते।
नयन झरते नयन झरते।
स्नेह ओत प्रोत
सिन्धु दूर, शशिप्रभा दृग
अश्रु ज्योत्स्ना स्रोत
मेघमाला सजल नयना
मुहुर उपवन की उतरते।

इस गीत में करुणा की प्रधानता है। इसको अनेकानेक राग-रागिनियों में आबद्ध किया जा सकता है। अगर किसी ने इसे शंकरा राग में बाँध दिया तो मालकोश में तो वह प्रभाव कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकता जो देस, जोगिया, पीलू, बागेश्वरी में सम्भव है। संगीत का मर्मज्ञ इस बात पर विचार करना आवश्यक समझता है कि कौन-सा राग किस भाव की सूक्ष्मता को प्रदर्शित करने के लिये अधिक अनुकूल होगा। चिन्ता, निर्वेद, उद्विग्नता का मिश्रित वातावरण फैलाना तो देस उपयुक्त होगा लेकिन जहाँ वेदना की अभिव्यक्ति अभिप्रेत हो वहाँ बागेश्वरी

१ विनयपत्रिका—सिद्धान्त तिलक १२१
२ गीतिका—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, भूमिका, पृ० १२

ही ठीक है। इसी प्रकार जहाँ मधु-प्रवाह की शैली पटभूमि निर्मित करनी है, वहाँ पीलू या जोगिया उपयुक्त मालूम पडते हैं।

सगीतज्ञ महाकवि तुलसीदास ने सोच-समझकर राग रागिनियो की चर्चा अपने गीत-ग्रन्थो मे की है। पहले इन विनियुक्त रागो का सक्षिप्त परिचय देकर, तब यह प्रतिपादित करने की चेष्टा करें कि भाव की अतर्धारा से रागो की प्रकृति का सामजस्य किस प्रकार बैठ पाया है।

क्रम	राग-नाम	वादी-सवादी	कोमल तीव्र	गायन-समय	रस या भाव
१	आसावरी	ध ग	ग ध नि	दिन द्वितीय प्रहर	शृ गार
२	जयतश्री	ग नि	रे मे ध	सायकाल	शात
३	बिलावल	म सा	दोनो नि	प्रातकाल	शृ गार
४	केदारा	सा म	दोनो म	रात्रि का प्रथम प्रहर	"
५	सोरठ	रे ध	दोनो नि	रात्रि का दूसरा प्रहर	शृ गार
६	धनाश्री	प सा	नि ग	दिन तृतीय प्रहर	भक्ति रस
७	कान्हरा	म सा	रे ध नि दोनो	मध्यरात्रि	शात रस
८	कल्याण	प सा	मे	रात्रि प्रथम प्रहर	"
९	ललित	म सा	रे ध दोनो मे	रात्रि अन्तिम प्रहर	भक्ति रस
१०	विभास	ध ग	रे ध	प्रातकाल	गम्भीर प्रकृति भक्ति रस
११	नट	म सा	०	रात्रि दूसरा प्रहर	गभीर भाव
१२	टोडी	ध ग	मे रे ग ध	दिन दूसरा प्रहर	भक्ति रस
१३	सारग	रे प	म नि दोनो	दिन दूसरा प्रहर	शान्त रस
१४	मलार	सा प	दोनो नि	वर्षाकाल	वियोग शृ गार
१५	गौरी	रे प	रे ध		भक्ति रस
१६	मारू	ग नि	मे	दिन अतिम प्रहर	शृ गार
१७	भैरव	ध रे	रे ध	प्रातकाल	भक्तिरस
१८	बसत	सा म	रे ध दोनो मे	रात्रि अन्तिम प्रहर	शात
१९	रामकली	प सा	रे ध और म दोनो	प्रातकाल	भक्ति
२०	विहाग	ग नि	०	रात्रि द्वितीय प्रहर	शृ गार
२१	भैरवी	म सा	रे ग ध नि	प्रातकाल	भक्ति और वियोग

नीचे—दे देने का अर्थ कोमल स्वर सूचित करता है।

विवरण के लिए सहायक पुस्तकें .

१—राग विज्ञान-वि० ना० पटवर्धन

२—भारतखंडे संगीतशास्त्र-संगीत कार्यालय, हाथरस।

३—संगीत विशारद-वसंत हाथरस।

४—संगीतशास्त्र-उत्तर प्रदेश सरकार, प्रकाशन।

५—संगीतांजलि प० ओंकारनाथ ठाकुर।

६—संगीत सुदर्शन सुदर्शनाचार्य शास्त्री।

७—संगीत समुच्चय भारतकला परिषद्, काशी।

संगीत का मूलाधार सा रे ग म प ध नी ये ही सप्तस्वर हैं। सा और प ये अचल स्वर हैं। इन पाँचो रे ग म ध नी के दो रूप हैं—शुद्ध या तीव्र (Sharp) तथा कोमल (Flat) स्वर। इस तरह सात शुद्ध सा रे ग म प ध नी तथा पाँच कोमल स्वर रे ग म ध नी मिलकर बारह स्वरो को सम्पूर्ण राग-रागिनियो का निर्माण होना है। इसलिए जिन राग-रागिनियो मे कोमल स्वरो का उपयोग होता है यानी आरोह अवरोह मे कोमल पद पड जाते हैं तो उससे करुण रस की निष्पत्ति होती है। उल्लास और वीरता के लिए शुद्ध स्वर वाले राग अधिक उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार संगीत के मुख्यतया तीन रसो करुण (Pathetic), शृंगार (Erotic), तथा वीर (Heroic) के लिए तीन प्रकार के सम्मिश्रण वाले स्वर अपेक्षित हैं। वादी, संवादी और विवादी स्वरो पर ध्यान रखने से भी राग की प्रकृति का भान हो जाता है।

(१) इस प्रकार भक्ति एव करुण रस में कोमल रे ध वाले राग अपेक्षित हैं और इसके उदाहरण जोगिया, टोडी, भैरव, कलिंगडा तथा ललित आदि राग हैं।

(२) कोमल ग नि वाले राग शृंगार रस के लिए—उदाहरण के लिए आसावरी, काफी, बागेश्वरी।

(३) शुद्ध स्वर वाले—शंकरा, भूपाली, हिंडोर आदि।

लेकिन कोमल ग नि वाले एव शुद्ध स्वर वाले रागो मे भ्रमोत्पत्ति की आशंका है। जैसे मालकोश कोमल ग नि वाला राग है, किन्तु ऐसा होते हुए भी यह राग वीर रस प्रधान है। भारतखंडे महोदय का विचार यहाँ अनुमोदित होता है।

विहाग में यद्यपि सभी स्वर शुद्ध हैं फिर भी इस राग से वीर रस की निष्पत्ति कदापि संभव नहीं। लेकिन इतना तो विवादमुक्त है कि कोमल रे ध वाले राग भक्ति रस के सर्वथा अनुकूल है।

गोस्वामी जी ने अपने गीतो में शुद्ध स्वर वाले रागो का प्रयोग किया ही नहीं। उनके ———— राग कोमल स्वर वाले राग ही हैं। इसलिए सर्वत्र

भक्ति रस के अनुकूल ही राग-योजना है। गीतावली के रूप वर्णन मे कान्हरा सारग केदारा आदि रागो की चर्चा है। श्रीकृष्णगीतावली मे इन्द्रकोप के कारण वर्षा वर्णन को कवि ने मल्लार राग मे बाँधा है। इसी तरह गोपिकाओ के विरह को कवि ने बिलावल, धनाश्री तथा केदारा मे बाँधा है। "मोको बिधुबदन बिलोकत दीजै" की करुणा सोरठ राग मे बाधी गयी है। इस तरह गोस्वामी जी ने भावानुकूल राग-योजना का सफल गीतो की सदेह रहित रचना की है।

भाव-रागो का समय

रागो के रस या भाव के साथ उनके समय पर भी विचार करना आवश्यक होता है। यह स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक भी है कि व्यक्ति की मनोदशा एव मनस्थिति कभी एक समान नही रहती। उषा की अरुणिम रश्मियो के फूटने के पूर्व जब हम बिछावन छोडते हैं--उस समय की स्फूर्ति और शान्ति दिन भर की व्यस्तता के उपरान्त सायकाल मे नही रहती। सध्या के कोलाहल और हलचल तथा निशीथ की नीरवता दोना समय हमारी मन स्थिति एक प्रकार की नही होती। इसलिए सगीतकारो ने रागो का समय निश्चित कर दिया है।

महाकवि अपने को आराध्य के प्रति समर्पित कर देता है। दिन रात मे एक भी ऐसा क्षण नही, जब यह हृदय की सारी करुणा, विह्वलतादि उडेल देना नही चाहता। इसलिए दिन के प्रथम प्रहर वाले राग बिलावल, विभासा भैरव से लेकर रात्रि के अन्तिम प्रहर वाले रागो वसत, ललित तक मे ये गीत बाँधे गये हैं।

सगीत की सफलता के लिए जैसे राग अनिवार्य हैं वैसे ही ताल नियोजन भी। किन्तु राग और ताल का निश्चित सम्बन्ध नही। एक राग को कई तालो में गाया जा सकता है तथा एक ही ताल मे अनेक राग बाँधे जा सकते हैं। उदाहरण-स्वरूप एक ही राग मालकोश मे त्रिताल, एक ताल, चौताला, झपताल का प्रयोग हो सकता है, तथा त्रिताल मे ही राग भूपाली, केदार, विहाग तिलक, कामोद, कलिगडा, सोहनी, भीमपलासी आदि गाए जाते हैं। लेकिन इतना निश्चित है कि एक लय को एक ही ताल मे सुगम एव प्रभावोत्पादक ढग से बाँधा जा सकता है। ताल का गणित पक्ष और छन्द का गणित पक्ष एक सम हैं। एक सगीतज्ञ कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह ताल का ज्ञान अवश्य रखे। ताल के ज्ञान से वह ऐसे गण-विधान वाले छदो का निर्माण कर सकता है जो सागितिक लय की दृष्टि से उपयुक्त हो। कुछ शब्दो के मिश्रण से वह १६ मात्राओ के छद या २२-२८ मात्राओ के छद बना सकता है, लेकिन ऐसे मात्रा-समूह वाले छन्द भी हो सकते हैं जिनको त्रिताल मे बाँधने मे कठिनाई हो सकती है।

गोस्वामी जी के गीतो की सफलता उनकी शब्द योजना पर भी अवलबित है। उन्होंने गीतो को सुगम ढग से तालबद्ध किया है। उदाहरण के लिये उनका

एक गीत उद्धृत है—

ऐसो को उदार जग माहीं।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।

अब इसको त्रिताल मे बाँधना बड़ा सुगम है।

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता त्र क तिं तिं	धा धा धिं धिं
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता त्र क ति	तिं धा धा धिं धिं
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	९ १० ११	१२ १३ १४ १५ १६
	ऐ सो	को उदा	र ज ग
मा ही			
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	ता त्र क तिं तिं	धा धा धिं धिं
१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	९ १० ११ १२	१३ १४ १५ १६
		बिनु से—	वा——जो
द्र— वै—दी	न प र	रा-म स	रि स को उ
ना— ही			

यहाँ पदो का गुण विधान ताल के सर्वथा अनुकूल है।

निष्कर्षत गोस्वामी जी की भावानुकूल रागयोजना, तालयुक्त शब्द योजना तथा माधुर्यगुण युक्त वर्णविधान से सिद्ध होता है कि वे महान संगीतज्ञ थे। यही कारण है कि संगीतशास्त्र के निकष पर उनके गीतग्रन्थ खरे उतरते हैं।

छन्द

गोस्वामी तुलसीदास स्वयसिद्ध महाकवि थे। उनका काव्यशास्त्र एव छन्द शास्त्र पर भी सहज अधिकार था। कष्टसाधना के द्वारा कवि ने अपनी कविता को छन्दोबद्ध करने की चेष्टा नही की। कविता का स्वभाव ही छन्द मे लयमान होता है। अपने उत्कृष्ट क्षणो मे हमारा जीवन छन्द ही मे बहने लगा, इसमें एक प्रकार की सपूर्णता, स्वरैक्य और सयम आ जाता है।[1] इस प्रकार उनका समग्र साहित्य स्वय छन्दो की मर्यादा से अनुशासित है।

गोस्वामी की रचनाओ मे विनयपत्रिका और गीतावली को छोड़कर पच्चीस छन्द व्यवहृत हुये हैं। ये हैं चौपाई, दोहा, सोरठा, चौपैया, डिल्ला, तोमर, हरिगीतिका, त्रिभगी, अनुष्टुप, इद्रवज्रा, तोटक नगस्वरूपिणी, भुजगप्रयात मालिनी, रथोद्धता, वसन्त तिलका, वशस्थ शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, सवैया, छप्पय, घनाक्षरी, झूलना, सोहर तथा बरवै।[2] लेकिन इनमे वर्णिक और मात्रिक वृत्त दोनो प्रकार

---

१ पल्लव की भूमिका—१८, पृ० २१

२ तुलसीदास और उनका काव्य—प० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ३०६

के हैं। रामचरितमानस में ही नौ संस्कृत वृत्त, अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीड़ित, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, मालिनी, वंशस्थ, रथोद्धता, नाराचवरपिणी और स्रग्धरा तथा ग्यारह मात्रिक दोहा, सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोमर, तोटक, भुजंगप्रयात, कुल बीस छन्द प्रयुक्त हुये हैं।[1] लेकिन तुलसी में गीति काव्य में प्रयुक्त छन्दों की विवेचना नहीं हुई।

छन्दों को या वृत्तों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१—वैदिक स्वरवृत्त

२—वर्ण वृत्त

३—मात्रा वृत्त

४—ताल वृत्त

स्वर वृत्त उदात्त, अनुदात्त स्वरित ध्वनि विशेषताओं या स्वर के आरोह-अवरोह पर आधारित हैं। वेदों के मंत्र इसी प्रकार हैं। वर्ण वृत्त में वर्णों की निश्चित संख्या एवं लघु गुरुक्रम नियत रहता है। मात्रिक वृत्त में मात्राओं की संख्या तथा स्थान प्रायः निश्चित रहता है। ताल वृत्त में मात्राओं या वर्णों की चरणगत संख्या की समानता अपेक्षित नहीं होती—केवल लय और ताल का आधार ग्रहण किया जाता है। लय सृष्टि के लिए ताल मात्रिक ईकाइयां (तालाघातों की कालगत पूर्ण आवृत्ति होती है।)[2]

तुलसीदास ने अपने गीतिकाव्य को छोड़कर मात्रिक वर्ण वृत्तों का प्रयोग किया है, जिसका स्पष्टीकरण ऊपर हो चुका है। लेकिन उनके गीतिकाव्य में प्रमुखतया ताल वृत्त ही प्रयुक्त हुए हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वर्णिक और मात्रिक वृत्त नहीं प्रयुक्त हुये हैं लेकिन उन पदों में वृत्त निर्वाह मात्र कवि का अभिप्रेत नहीं वरन् ताल योजना के द्वारा सांगीतिक प्रवाह उत्पन्न करने की चेष्टा ध्येय है।

वस्तुतः यह धारणा है कि गीति रचना में छन्द और संगीत इन दो तत्वों की आवश्यकता होती है। छन्द का सम्बन्ध ताल से है और संगीत का ताल और स्वर दोनों से। संगीत में स्वर-तत्व मुख्य और गौण है—जिसके कारण राग-रागिनियों का वैविध्य मिलता है, लेकिन छंद (ताल वृत्त) में ताल तत्व ही अपेक्षित रहता है।

कविता तथा छंद के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होता है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं,—जिनके बिना वह अपनी ही बन्धन-हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छंद भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन कंपन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में

१. तुलसीदास और उनका युग—डा० राजपति दीक्षित, पृ० ३७२

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों का विश्लेषणात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन—डा० शिवनंदन प्रसाद, पृ० १२

एक कोमल, सजल, कलरवभर उन्हे सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियमित सांसें नियन्त्रित हो जाती, तालयुक्त हो जाती उसके स्वर मे प्राणायाम, गेयो से स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध-झकारें एक वृत्त मे बध जाती; उनमे परिपूर्णता आ जाती है। छद-बद्ध शब्द चुम्बक के पारश्वर्ती लोह चूर्ण की तरह, अपने चारो ओर एक आकर्षण क्षेत्र तैयार कर लेते हैं, उनमे एक प्रकार का सामजस्य, एक रूप, एक विन्यास आ जाता, उनमे राग की विद्युत धारा बहने लगती, उनके स्पर्श मे एक प्रभाव तथा शक्ति पैदा हो जाती है।'[1] पत ने उक्त विचार कविता मात्र के लिये व्यक्त किये हैं। गीत मे तो छदो का महत्व स्वभावतया और अधिक रहता है।

इस तरह छद की अनिवार्यता इन गीतो के लिए ही है। विनयपत्रिका गीतावली तथा श्रीकृष्ण गीतावली के सभी गीत तालबद्ध होकर सगीतोपयोगी सिद्ध होते हैं। कवि ने इन गीतो को सगीत के स्वरताल मे बाधा है। तुलसीदास की छन्द प्रयुक्ति मे उनका छन्द विवेक प्रशसनीय है। सुवृत्ततिलककार ने लिखा है कि किसी भी छन्द का चुनाव रस के अनुसार और वर्णों की अनुरूपता मे करना चाहिए।[2] वीररस के लिए कवित्त, छप्पय, शार्दूलविक्रीडित आदि ही उपयुक्त हैं किन्तु शृगार के लिए सार, सरसी, दोहे तथा मन्दाक्रान्ता आदि छन्द प्रयुक्त होने चाहिए। एक रसानुकूल छद इस कथन को उदाहृत करता है—

> सांझ समय रघुबीरपुरी की सोभा आजु बनी
> ललित दीपमालिका बिलोकहि हितकरि अवधधनी
> फटिक भीत सिखरन पर राजति कचन दीप अनी
> जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि सोभित सहसफनी[3]

भगवान् राम के वन से लौटने पर अयोध्या का मगल दिवस समाप्त हो गया और आज सम्पूर्ण वायुमण्डल नव उल्लास, नई उमग, नये हलचल से पूरित हो उठा है। कवि ने इस अपरिमित आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए विष्णुपदी १६, १० अत मे। ( ) का चयन किया।

गोस्वामी जी ने वर्णों की अनुरूपता मे भी सवत्र छन्दो का चुनाव किया है। दह को मे कवि ने बडे बडे सामासिक शब्द वाले पदों का प्रयोग किया है।[4] ठीक इसके विपरीत सोलह मात्राओ से चौबीस मात्राओ के बीच वाले छदो मे मृदु एव सुष्ठु वर्ण प्रयुक्त हुये हैं। एक पद देखें—

---

१ पल्लव की भूमिका—सुमित्रानन्दन पत, पृ० २१

२ काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् ॥३।७॥ सुवृत्ततिलक

३ गीतावली, ७, २०

४ देखिए विनयपत्रिका ३८ वाँ और ६१ वाँ पद

राजति राम जानकी जोरी।

स्याम सरोज जलद सुन्दर वर, दुलहिनि तड़ित बरनतनु गोरी।

ब्याह समय सोहति बितान तर, उपमा कहुँ न लहनि मति मोरी।[1]

आठ-आठ मात्राओं की दो दो लड़ियों की आवृत्ति से पद की सामान्य पंक्तियाँ बनी हैं। ह्रस्व एवं सानुनासिक वर्णों की संख्या अधिक है। शृंगाररस के लिए प्रत्ननिपात (गुरु के बाद लघु) वर्जित है, इसे कवि पूर्णतया विस्मृत नहीं कर पाये हैं।

इन गीति पुस्तकों में आये पद दो प्रकार के हैं—

(१) टेक वाले पद,

(२) टेक रहित पद,

		कुल पद	टेक वाले	बिना टेक
(१) कृष्णगीतावली के		६१	टेक वाले ५१	बिना टेक १०[2]
(२) गीतावली	"	३२८	" २७७	" ५१[3]
(३) विनयपत्रिका	"	२७९	" १५२	" १२७[4]
		६६८	४८०	२८८

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन गीतिकाव्यों के अधिकांश पद टेकयुक्त हैं जो पदशैली या गेयशैली की रचनाएँ हैं। जिसमें मात्राओं या वर्णों का

१ गीतावली १, १०३

२ पद संख्या १, २, ३, १६, १७, २३, २६, २८, ४२, ५५—१०

३ पद संख्या बालकांड ७, १०, ११, २१, २२, २८, ३०, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७ ४१, ४२, ४३, ८०—१७

अयोध्याकांड—२७, २८, ३२, ३३, ३१ ४०, ४१, ४३ ४४, ४५, ४७, ४८, ४९, ८०, —१४

अरण्यकांड—९, १०, १७—३

सुन्दरकांड—३, ४, ५, ९, १६, १७—६

लंकाकांड—२३—१

उत्तरकांड—७, ११, १२ १५, २०, २१, २२, ३०, ३१, ३२, ३४, ३८—१२

कुल (१४--३--६--१--१२--५१)

४. पद संख्या—१, २, ६ ७, ८, १० ११, १२, १३, १४, १६, १७, १९, २२, २३, २४, २६, २७, २८, २९, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२ ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, १०७ १०८, ११०, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३१, १ ३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९ १४०, १४१, १४२, १४ , १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १७८, १७९, १८०, १८९, १९०, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, २०३, २०६, २०७, २०८, २२१, २४०, २४६ २४७, २४८, २४९, २६०, २६१, २६२ —१२७ पद

विधान संगीत को ध्यान में रख कर किया जाता है, लेकिन जो पद टेकयुक्त नहीं भी हैं वे भी गेय ही हैं और छन्दशास्त्र की तालपद्धति का अनुशासन स्वीकार करते हैं।

टेक की पंक्ति में मात्राओं या वर्णों की संख्या एक समान नहीं वरन् इसमें भी पर्याप्त प्रकारांतर है। न्यूनतम मात्राएँ—और अधिकतम मात्राएँ टेक वाले पदों में इस प्रकार हैं—

	पुस्तक	न्यूनतम	अधिकतम
१	श्रीकृष्णगीतावली	१२ मात्राएँ[१]	२५ मात्राएँ[२]
२	गीतावली	१४ मात्राएँ[३]	२६ मात्राएँ[४]
३	विनयपत्रिका	१० मात्राएँ[५]	२६ मात्राएँ[६]

सर्वाधिक संख्या में सोलह मात्राओं की टेक वाली पंक्तियाँ हैं और ऐसे टेकयुक्त पंक्तियों वाले पदों की संख्या प्रायः कुल टेकयुक्त पदों के तृतीयांश हैं।[७] बाहुल्य क्रम से पन्द्रह मात्राओं वाली टेक आती है।

उपर्युक्त विवरण को उपस्थित करने का अभिप्राय इसका अध्ययन है कि इन पदों को किन-किन तालों में बाधा जा सकता है? पंचमात्रिक ताल पंचमात्रिक ताल दादरा अष्टमात्रिक ताल कहरवा, दशमात्रिक मात्र झपताल, द्वादशमात्रिक ताल चौताला, षोडश मात्रक ताल त्रिताल या चतुर्दश मात्रिक ताल धमार में। गोस्वामी जी ने त्रिताल बाध्य होने वाले टेकों का जो अधिक प्रचलित हैं—छन्द विधान किया है।

टेक गीतों के अनिवार्य तत्व हैं। वस्तुतः इन्हीं टेकों में भाव-केन्द्रण अभीप्सित रहता है। कवि अपने कथ्य के सार संक्षेप को टेक में बाँधता है, उसे अपने अन्तस् में गुनगुनाता है और उसी गुनगुनाहट की परिधि का विस्तार करते-करते सम्पूर्ण पद की काया गढ़ देता है। सिन्धु को बिन्दु में बाँधने का प्रयास अगर टेक है तो बिन्दु को सिन्धु में बिखराने का कौशल सम्पूर्ण पदनिर्माण। इसलिए गीत की यह प्रारम्भिक कड़ी हमारे भावोद्वलन की कितनी अपूर्व क्षमता रखती है यह निस्संदिग्ध है। इसके अभाव में किसी भी गीत लौकिक या शास्त्रीय—की संगीतात्मकता का निर्वाह सम्भव नहीं।[८]

१ हरि को ललित बदन निहारु पद सं० १४
२ मनि तें सातन मोको लाग नाट की तरनि, पद सं० ६०
३ कौन, कहाँ ते आए, १, ६३
४ आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भए, १, ३
५ रघुपति बिपति मन, पद सं० २१२
६ ज्यों ज्यों निकट भयो चहों कृपालु त्यों त्यों दूर पर्यो है पद २६६
७ १६ मात्राओं के टेक (कृ० गी० २० — गीतावली + ७२ + विनयपत्रिका ४१) १३३
८ हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३११

तुलसीदास ने इन गीत ग्रंथों में टेक की पारिभाषिक पद्धति का ही उपयोग अधिकतर किया है। जैसे—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर रामसरिस कोउ नाहीं॥[1]

लेकिन टेक प्रारम्भ में नहीं रखकर उन्होंने मध्य में भी रखने की पद्धति अपनायी है। जैसे—

कनक रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ सुतहार
विविध खेलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुताहार
रघुकुल—मंडन राम लला।
जननि उबटि अन्हवाइकै मनिभूषण सजि लिये गोद
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद
दसरथ नंदन राम लला।[2]

टेक की प्रथम प्रणाली में कवि का अभीष्ट सांगीतिक प्रभाव का समधरातल पर प्रसारण एवं वितरण है जैसे शरद ज्योत्सना शनैः शनैः जग-जग में व्याप्त होकर अमिट तृप्ति दे देती हो। किन्तु द्वितीय प्रणाली में कवि सांगीतिक वातावरण में उतार-चढ़ाव उत्पन्न करना चाह रहा हो— जैसे वह शांत सरोवर के वक्ष को यदा-कदा ऊर्मिल लहरिल बना देना चाह रहा हो। गीतों के द्वारा वातावरण—निर्मित का मर्म कोई संगीतज्ञ ही समझ सकता है।

टेकयुक्त पदों में भी कई पद्धतियों का विश्लेषण कर हम देखने का प्रयास कर रहे हैं कि कवि ने इसमें छन्द वैदग्ध्य का कैसा परिचय दिया है।

रघुपति भगति करत कठिनाई।
।।।। ।।। ।।। ।।ऽऽ —१६ मा० पादाकुल
कहत सुगम करनी अपार, जाने सोइ जेहि बनि आई
।।।।।।।ऽ।ऽ। ऽऽ ।। ।। ।। ऽऽ
जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी॥[3]

इसमें टेक वाली पंक्ति १६ मात्राओं वाले पादाकुलक छन्द की ही है तथा शेष की अन्य पंक्तियाँ सार छन्द की हैं जिनमें १६, १२ पर यति पड़ती है। बहुत वस्तुतः गोस्वामी जी ने एक पाद पादाकुलक या सार, या चौपाई का टेक रूप में रखकर पीछे रूपमाला, सार, विधाता, सरसी, हरिगीतिका, दण्ड आदि के अनेक पाद

१. विनयपत्रिका
२. गीतावली १, २१, अन्य, रामललानहछू १, २७
३. विनयपत्रिका १६७ पद

रखकर गीतियाँ बनाई हैं।[1] इस तरह के पद और भी है। विनयपत्रिका पद १०१ (पादाकुलक+सार) गीतावली बालकाड ५३—जिसका गणविधान ६+४+४+४ ८+६ है यदि १६, १२ के अनुसार है तथा पदात मे) ( ) प्रयुक्त है।

महरि तिहारे पायँ परौं अपनो ब्रज लीज

।।। ।ऽऽ ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽऽ —८+८+८

सहि देख्यो तुम सो कह्यो, अब नाकहि आई

।।ऽऽ ।।ऽ। ।ऽ ।। ऽ।। ऽऽ८+७+१ (प्रयुक्त)+८

कौन दिनहि दिन छीजे।

ऽ। ।।ऽ ।।ऽऽऽऽ ८+८ (४+४ प्रयुक्त)

ग्वालिनि तो गोरस सुखो ता बिनु क्यों जीजै

ऽ।। ऽऽ।।।ऽ।।। ऽ ऽऽ ८+८ (७+१) ८

सुत समेत पाउ धारि आपहि भवन मोरे

।।।ऽ।।।ऽ।।।। ।। ।। ८+८ (७+१) ८

देखिय जो न पतीजै।२।

ऽ।। ऽ।।ऽऽ ४+४+८

अति अनीति नीकी नहीं अजहू सिख दीजै

।।।ऽ। ऽऽ।ऽ।।ऽ।। ऽऽ ८+८+८

तुलसिदास प्रभु सो कहै उर लाइ जसोमति

।।।ऽ।।।ऽ।ऽ।। ऽ। ।ऽ।। ८+८+८

ऐसी बलि कबहूँ नहिं कीजै।[2]

ऽऽ ।। ।।ऽ।। ऽऽ ८+८

यह गेय पद अष्टमात्रिक धुमाली ताल गणो मे निबद्ध है। आठ मात्राओ की इकाई की तालयुक्त आवृत्ति द्वारा छादस सगीत की सृष्टि की गई है। प्रत्येक तालगण की प्रथम मात्रा बलाघातपूर्ण है।

प्रथम पाद मे तीन गण हैं।

द्वितीय मे ४ गण हैं किन्तु द्वितीय गण मे वण मात्राएँ ७ ही हैं जबकि ताल मात्राओ की सख्या आठ अपेक्षित हैं। १ मात्रा की त्रुटि पूर्ति सो के तीन मात्रा-काल तक प्लुत द्वारा की जाती है।

रोला के दो चरण+नित छन्द का एक चरण मिलाकर छन्द बना दिया गया है।

प्राय सभी छन्द शास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि गीतिकाव्य के लिए मात्रिक छन्दो का प्रयोग ही वाछनीय है क्योकि उसमे एक गुरु के स्थान पर दो लघु रखकर

[1] हिन्दी छद प्रकाश, रघुनदन शास्त्री, पृ० ८६

[2] श्रीकृष्णगीतावली, नागरी प्रचारिणी सभा पद स० ७

ध्वनि विस्तार का माधुर्य प्राप्त होना है। "भक्तिकाल के समस्त पद, साखी, भजन और प्रबन्ध मात्रिक छन्दों में मिलते हैं। केवल कवितावली, विनयपत्रिका और सूरसागर के कुछ पद वर्णिक आधार पर निर्मित हैं[1] विनयपत्रिका के कुछ पद उदाहरणस्वरूप उपस्थित किए जा रहे हैं।

दीन बंधु ! दूरि किये दीन को न दूसरो सरन। ८, ८
आपको भले हैं सब आपने को कोऊ कहूँ। ८, ८
सबको भलो है राम ! रावरो चरन। ८, ८
पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर। ८, ८
काँच ते कृपानिधान किए सुबरन।[2]

यह गीत अष्टवर्णिक तालवृत्ति में निबद्ध है। वर्णिक तालवृत्त प्रयुक्त करने के लिए निराला की बड़ी प्रशंसा की गई है। (जूही की कली आदि में) इससे बहुत पूर्व गोस्वामी जी ने अपने गीतों में इसका सफल प्रयोग किया है। एक और उदाहरण लिया जाय।

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ८, ६
हौं तो साईं द्रोही पै सेवक हितु साईं। ८, ६
राम सों बडो है कौन मो सों कौन छोटो ८+६
राम सो खरो है कौन मो सों कौन खोटो ? ८+६
लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावौं। ८+६
एतो बडो अपराध भो न मन बावौं॥ ८+६
पाप माथे चढ़े तृन तुलसी जो नीचो। ८+६
बोरत न बारि ताहि जानि आप सींचो॥[3] १८+६

टेकहीन इन पदों में दो पद्धतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) साधारण छन्द,
(२) दण्डक छन्द।

इन साधारण मात्रिक छन्दों में १-३२ मात्राओं तक के पाद रखे जाते हैं और ३२ मात्राओं से अधिक पाद वाले छन्द दण्डक के अन्तर्गत परिगणित किए जाते हैं। वर्णिक वृत्तों में प्रतिपाद १ से २१ तक वाले छन्द साधारण या जाति छन्द माने जाते हैं। २२ से २६ अक्षरवाले छन्द भी साधारण ही माने जाते हैं जिन्हें सवैया कहते हैं। २६ अक्षर से अधिक अक्षर रहने पर दण्डक छन्द कहे जाते हैं।[4]

विनयपत्रिका और गीतावली में साधारण मात्रिक छन्द बहुत मिलते हैं।

---

१ आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, डा० पुत्तूलाल शुक्ल
२ विनयपत्रिका पद सं० २५७
३. विनयपत्रिका पद सं० ७२
४ हिन्दी छन्द-प्रकाश रघुनन्दन शास्त्री, पृ० ४६

हरिगीतिका मात्रिक वृत्त है जिसके प्रत्येक पाद में २८ मात्राएँ होती हैं। यति प्राय: १६ १२ पर पड़ती है।

दिय सुकुल जनम सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारि को
जो पाइ पंडित परम पद, पावत पुरारि मुरारि को
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो संगतिभलो
तेरी कुमति कायर-कलप बाटली चहति विष फल फलो[1]

इसी तरह तुलसीदास दो नियमित मात्रिक छन्दों का प्रयोग कर अनुच्छेद बन्ध या स्तबक उपस्थित किया है।

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु
सगुन सुहावने सूचत, मुनि मन अगम उछाहु
मुनि मन अगम उर आनंद, लोचन सजल तनु पुलकावलि
तृन पर्नसाल बनाइ, जलभरि कलस, फल चाह न चली
मंजुल मनोरथ करति सुमिरति विप्र बरनी भली
ज्यों कलप-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल फली सुख फली[2]

इस गीत में दोहा (१३,११) और हरिगीतिका (१६, १२) का अनुक्रम है। चार चरण दोहा के और चार चरण हरिगीतिका के मिलाकर आठ चरणों का एक प्रगाथ (Strophe) छन्द बनाया गया है। यह गीत अष्टमात्रिक ताल में सुगमता-पूर्वक आबद्ध किया जा सकता है।

इन छन्दों में कहीं-कहीं मात्राओं में ईषत् अन्तर भी उपलब्ध होगा। डॉ० राजपति दीक्षित ने लिखा है "गीतावली में दोहा के द्वितीय और चतुर्थ चरणों में दो मात्राएँ बढ़ाकर (बा० १६ (१-१६) तथा विनयपत्रिका (१०७, १०६) में दो मात्राएं घटाकर नए ढंग के छन्द भी निर्मित किए गये हैं।[3] किन्तु डाक्टर साहब को यह जानना चाहिए कि दोहा के ये रूपान्तर बड़े प्राचीन हैं।" दोहा के अन्य रूपान्तर "उवदोहय" (१२, ११, १०, ११) तथा गदोहय (१४, ११, १४ ११) कवि दपगाम् में उल्लिखित हैं (२, १६)।[4]

जिसे डॉ० साहब नव निर्माण मानते हैं यानी १३,१३ मात्राओं तथा १३, ६ मात्राओं का दोहा उनका प्रयोग भी तुलसी के बहुत पूर्व हो चुका था।

---

१ विनयपत्रिका नागरी प्रचारिणी सभा पद संख्या १३५।
२ गीतावली, अरण्यकाण्ड, पद १७।
३ तुलसीदास और उनका युग, डा० राजपति दीक्षित, पृष्ठ ४१८।
४ मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों का विश्लेषणात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन, डा० शिवनन्दन प्रसाद, पृष्ठ ५७२।

दोहा १३, ११

नंद को नंदन सांवरो, मेरो मन चन चोरे जाइ
रूप अनूप दिखाइ के, सखि वह औचक गयो आई।[1]

टोवन हारे टाचिया, दे छाती ऊपरि पाँव
जे तू मरति सकल है, तब घटन हारे को खाउ।[2]

दोहा ११, ६

इन नैनन सों सो सखि, मैं मानी हारि
सौर सकुच नहिं मानहि बहु बारनि भार।[3]
बिन दरसन भई बावरी, गुरु धो दीदार।
धरमदास अरजी सुनो, कर धो भवपार॥[4]

दंडक पद्धति के छन्द विनयपत्रिका के प्रारम्भ में हैं जिसका सफल प्रयोग कवि ने गीतिजैयो मे किया है। ये दंडक संस्कृत स्तोत्र पद्धति के पद हैं। जैसे—

जय जय जगजननि देव सुर नर मुनि असुर सेवि
मुक्ति मुक्ति दायिनि, भय हरणि कालिका।
मंगल मुद सिद्ध सदनि, पर्व शर्वरीश वदनि
ताप तिमिर तरुण तरणि किरणमालिका।[5]

इसमें ४४ मात्राएं हैं (१०, १२, १०, १० यति)। इस तरह के दण्डक और भी बहुत हैं।[6]

तुक

किसी भी छद के अत मे जब अन्त्यानुप्रास आता है तो उसे तुक कहते हैं। चरण के अंत में होने के कारण उसे तुकान्त भी कहते हैं। तुक में स्वर और व्यजन, दोनों की समानता और आंशिक एकता रहती है।[7] छद और भाव-गुम्फन के लिए तुक भले अनिवार्य नहीं हो लेकिन माधुरी और स्वास्थ्य के अनिवार्य उपकरण के रूप

---

१ सूरसागर, पद संख्या २०६३।
२ कबीरग्रन्थावली, पद संख्या १६८, पृष्ठ १५५।
३ सूरसागर, ३००५, अन्य पद भी ३०२६, ३२६३।
४ सन्तसुधासार, वियोगी हरि, भाग २, धरनीधरदास, पृष्ठ १०।
५ विनयपत्रिका १६ (१)।
६ विनयपत्रिका ११, १२, १४, १६, १७, १८, १६, ३८, ३६, ४०, ४३, ४४, ४६, ४६, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५६, ६०, ६१।
७ हिन्दी साहित्य कोश पृष्ठ ३२४।

में तुक निर्वाह समीचीन प्रतीत होता है।[1]

तुकान्त के सम्बन्ध में शास्त्रीय विवेचन प्रधानतया भिखारीदास के "काव्य-निर्णय" राममहाय कृत "वृत्ततरंगिनी" तथा जगन्नाथ प्रसाद "भानु" के छन्द प्रभाकर में उपलब्ध होता है। हम तुक सम्बन्धी उस विस्तार में नहीं जाकर गोस्वामीजी के इन पदों की कुछ तुक प्रणालियों पर दृष्टि केन्द्रित कर रहे हैं। सर्वप्रथम हम देखें कि सम्पूर्ण पद के भिन्न-भिन्न चरण किस प्रकार तुक मिल हैं।

१— अब सब साँची कान्ह तिहारी। क[1]
जो हम तजे पाइ गौं मोहन गृह आए दे गारी। क[2]
सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातें सकल सँवारी। क[3]
साधु जानि हँसि हृदय लगाए परम प्रीति महतारी॥[2] क[4]

२— मेरे जान और कछु न गुनिए। क[1]
कूबरी रवन कान्ह कही जो मधुप सों। ख[1]
सोई सिख सजनी! सुचित ह्वै सुनिए॥ क[2]
काहे को करति दोष, देहि धौं काने को दोष ग[1]
निज नयननि को बयो सब लुनिए॥[3] क

३— ऊधो जू कह्यो तिहारोइ कीबो। क
नीके जिय की जानि अपनपो समुझि सिखावन दीबो। क
स्याम वियोगी ब्रज के लोगनि जोग जो जानो। ख
तौ सकोच परिहरि पा लागौं परमारथहि बखानो।[4] ख[3]

---

1. तुक जब कुशल कलाकार से प्रयुक्त होती है तो उसका कलात्मक मूल्य दुगुना तिगुना बढ़ जाता है। तुक के व्यवहार से पंक्ति एक मर्यादा या सीमा में बंध जाती है। सुतरां भावों को मर्यादित कर रखना कवि के लिये आवश्यक हो जाता है। कला की दृष्टि से फल यह होता है कि जितने व्यर्थ अथवा अनावश्यक भाव या विचार हैं वे सभी बहिष्कृत हो जाते हैं और केवल मननात्मक ही ठोस और चमकता भाव ही पंक्ति में स्थान पा सकता है।
काव्य और कवि श्री विश्वमोहन कुमार सिंह, पृष्ठ ४४।

2. कृष्णगीतावली ६, इस प्रकार के अन्य पद कृ० गी० ७, ८, ९, १०, ११, १२, १४, १८, गीतावली १, २, ३, ४, ७, ८, ९। विनयपत्रिका ४, ५, ९२, ९४, ९९, १००, १४३, १५१, १६६, १६९, २७१, २७३

3. कृ० गी० ३७। इस प्रकार के अन्य पद, गी० बाल० ६२, ६५, ६७, ६९। विनयपत्रिका २१२, २१३, २१४, २५१, २५६, २५७, २५८, २६३, २६४।

4. कृ० गी० ३५। इस प्रकार के अन्य पद गी० बाल० २, ८, १८। विनयपत्रिका ९, ११, ६३, ७२, ७८, ८०, ८१, ९२, ९३, ९७, १०२, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११३, ११४, ११५ ११६, ११८, ११९, १२८, १४४, १४५, १४७ १४९ १५०, १६२, १६३ आदि।

४— पाहि! पाहि! राम पाहि। रामचन्द्र रामचन्द्र ख[1]
सुजस स्तवन सुनि आयो हौं सरन। क[2]
दीन बंधु! दीनता दरिद्र दाहु दाह दोष दुःख ग[3]
दारुन दुसह दर दरप दर न। क[4]
तब तब तनु धरि, भूमि भारदूरि करि घ[5]
थापे मुनि सुर साधु आश्रम वरनक।[1] क[1]

५— राम लखन सुधि आई बाजैं अवध बधाई। क[1]
ललित लगन पत्रिका ख[2]
उपरोहित के कर जनक जनेस पठाई॥ क[3]
कन्या भूप विदेह की रूप अधिकाई। क[1]
तासु स्वयंवर सुनि सब आए। ग[2]
देस देह के नृप चतुरंग बनाई॥[2] क[3]

इस तरह के सारे पदों में क, क, क, क, क, ख, क, ग, क, क, क, ख, ख, ग, ग, ख, क, ग, क, घ, क का तुक विधान है। पंचम पद्धति, द्वितीय पद्धति के ही प्रवर्धित रूप हैं। सम्पूर्ण गीत साहित्य में सर्वान्त्य अनुप्रास वाले पद ही अधिक हैं।उसके बाद उन पदों की संख्या जिनमें प्रथम और द्वितीय चरण, तृतीय और चतुर्थ चरण क्रमश एक प्रकार के तुक वाले हैं।

तुकों का विश्लेषण अन्य प्रकार से भी संभव है। इसके चार प्रमुखतया भेद किए जा सकते हैं।[3]

१—अंत में (दो गुरु) ऽ ऽ।— गगांत
२—अंत में (लघु गुरु) । ऽ लगांत
३—अंत में (गुरुलघु) ऽ। गलांत
४—अंत में (दो लघु) ऽ।—ललांत

चारों प्रकार के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं —

१ गगांत— तोहि स्याम की सपथ आइ देखु गृह मेरे
जैसो हाल करी यह ढोटा छोटे निपट अनेरे।[4]

---

१ विनयपत्रिका २४६, २५०, २५१, २५८, २५६।
२ गीतावली, बालकांड १०१।
३ छन्द प्रभाकर, जगन्नाथ, प्रसाद भानु,
भूमिका पृष्ठ ८
४ कृ० गी० ३, अन्य पद कृ० गी० ६, ७, ८, १०, गी० बा० १, ४, १४, ८१, वि० ८ ४, ८, ६, १४, ८७ ८८

२ लगात—गावत गोपला लाल नीके राग नट हैं।
चलि री आली तरनि तट हैं।[1]

३ गलात—हरि को ललित बदन निहारु
निपटहि डाँटहि निठुर ज्यो लकुट करते डारु।[2]

४ ललाग—मों कहँ झूठेहु दोष लगावहि
मैया ! इन्हहि बानि परगृह की, नाना जुगुति बनावहि।[3]

इसके अतिरिक्त इन गीतो मे तुलसीदास ने आतरिक तुक का निर्वाह भी बडी सफलता से किया है

किसी छद को अधिकाधिक सागीतिक बनाने के लिए आतरिक तुक निर्वाह बडा आवश्यक है।[4]

यति

छदशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यति पर विचार कर लेना आवश्यक है। जहाँ किसी चरण की एक पदावली से श्वास के व्यवधान के कारण पृथक हो वहाँ यति होती है।[5] पुन विच्छेद की सज्ञा यति है[6] या श्रव्य विराम यति है।[7] उच्चारण सौंदर्य के लिए कवि ने यति का निर्वाह ठीक से किया है।

आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में बतलाया है कि यति कहाँ-कहाँ होनी चाहिए। उनका कहना है अर्थ की समाप्ति के पश्चात्, पद के अन्त मे, अथवा श्वाँस के टूटने पर, अथवा पद-वण या समास मे शीघ्रता और अर्थ की जटिलता को काकु के द्वारा दूर करने की खातिर या चरण के अत मे विराम होना चाहिए। यह विराम श्वाँस के व्यवधान के कारण से भी विहित है और शेष स्थानो मे अर्थ की स्पष्टता के विचार से भी विराम का सप्रयोग हो सकता है।[8]

---

१ कृ० गा० २०, अन्य पद कृ० गा० २३ २४, ३५, गा० बा० ६, ७, १८, ४५, वि० १८, ३०, ३१, ४२, ६६, ७०, ८६

२ कृ० गा० १४, अन्यपद कृ० गा० १५, २२, ५३, ५४, गा० बा० २६, ५१ वि० ६१, ८२, ८३

३ कृ० गा० ४, अन्यपद कृ० गा० २१, गा० बा० २४, अ० २, ५, वि० ४१, २४, ८५

४ दखिए गा० १, ६, ६ वि०

५ यतिविच्छेद ६, १, पिंगल छन्दसूत्रम्

६ यति विच्छेद सहित अ १ केदारभट्ट वृत्तरत्नाकर

७ श्रव्यो विरामो यति १, १४ छन्दो नुशासन हेमचन्द्र

८ समाप्ते थें पदवापि तथा प्राणवशेन वा १३८
पदवर्णा समासे च, द्रुत काकु वशात् ।
कार्यो विराम पादान्ते तथा प्राणवशेन वा ।
शेषमर्थविशेषेण विराम सम्प्रयोजयेत । अध्याय १७, नाट्यशास्त्र, गायकवाड, सस्करण

१. पदात यति

आंगन खेलत आंद कद, रघुकुल कुमुद सुखद चारुचद।[1]

प्रेम विवस मन, कंप पुलक तनु, नीरज नयन नीर भरे पिय के।

समुचत कहत, सुमिरि उर उमगत, सील सनेह सुगुनगन तिय के।[2]

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे—पांच मात्राओ के बाद।

२ अर्थखड-समासपनोपरात यति

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी	६, ५, ५, ७
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी।	११, १२
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?	११, ११
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥	१२, १०

गीत

गीत प्रवाह को गति कहते हैं।[3] गीतों के गति निर्वाह के लिये समकल के बाद समकल तथा विषम कल के बाद की व्यवस्था रहनी चाहिए। किन्तु जहाँ कहीं साधारण अक्षर मात्रा की गणना इसके प्रतिकूल पडती है वहा पर तुलसीदास ने पदन्यास के द्वारा उसकी गणना मे आवश्यक्तानुसार दीर्घ को भी लघु कर लिया है।

उदाहरण के लिए यह देखें—

राजत रघुवीर धीर, भंजन भव भीर पीर

हरन सकल सरजु तीर निरखहु सखि सोहैं।[4]

विषमकल के पश्चात् विषमकल तथा समकल के पश्चात् समकल की योजना द्वारा कवि ने बडी चातुरी से गति-निर्वाह किया है।

किन्तु कही-कही गति निर्वाह के लिए ह्रस्व को दीर्घ या दीर्घ को ह्रस्व करने की आवश्यकता पडी है।

प्रभु प्रताप रवि अहित अमगल अघ उलूक तम ताए

किये बिसोक हित कोक कोक नद, लोक सुजस सुमछाए।[5]

ये जो दीर्घ हैं उसे ह्रस्व करना पडेगा।

निष्कर्ष

१ छद के क्षेत्र मे तुलसी की प्रवृत्ति लोकोन्मुखी है। उन्होंने गीतों में उन्हीं मात्रिक छदो का सहारा लिया है जो मूलत लोकप्रचलित ताल-सगीत से उत्पन्न हैं और जिनकी ताल-सगीतात्मक प्रकृति तुलसी के युग तक बनी हुई थी। जैसे सार,

---

१ गीतावली, १, २८

२. वही, ४, १

३ हिन्दी छद प्रकाश—रघुनन्दनशास्त्री, पृष्ठ ४१

४ गीतावली, ७, ४

५ वही, ६, २२

सरसी, दोहा आदि छंद। उन्होंने ऐसे मात्रिक छंदों को गीतों में प्रयुक्त ही किया जो मूलतः वर्णवृत्तों की उपज हैं, और ताल के बंधन में नहीं बांधे जा सकते जैसे गाथा वर्ग के छंद। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी ने अपने गेय पदों में छांदस् प्रेरणा वेदोत्तर शास्त्रीय परंपरा से नहीं ग्रहण की वरन् जन-साधारण के बीच प्रचलित ताल-संगीत से ग्रहण की।

२ तुलसी ने शास्त्रोक्त मात्रिक छंदों के चरण अपने गीतों में प्रयुक्त किए किन्तु न तो अनुच्छेद गत चरण संख्या और न यति अथवा तुक योजना की दृष्टि से वे शास्त्र-सीमा में बंधे रहे उन्होंने स्वच्छंद रूप से छंद मिश्रण, यति योजना और अत्यानुप्रास विधान द्वारा सर्वथा नवीन छांदस् अनुच्छेदों New metrial stanzas की योजना की है जैसा हम ऊपर देख चुके हैं।

३ फिर भी तुलसी के गीतों में छांदस् प्रयोग सर्वथा विशृंखल अथवा नियम रहित नहीं है। तुलसी के छंद प्रयोग के टेक, तुक और यति को लेकर कुछ सामान्य नियम भी बनाये जा सकते हैं यद्यपि इन नियमों के अपवाद भी कम नहीं।

रस

रस का वैशिष्ट्य

पुरातन काल से हमारे देश में काव्य की आत्मा रस माना गया है। यहाँ तक कि रसहीन वाक्य काव्य की अभिधा का अधिकारी हो ही नहीं सकता। चार ईषणाओं में मोक्षेषणा सर्वोपरि ईषणा है। जिस प्रकार सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य आदि मोक्ष के भेदों द्वारा ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है उसी प्रकार काव्य के द्वारा मनुष्य जागतिक नागदंशन से क्षणभर मोक्ष पाकर परमानंद की प्राप्ति करता है। सचमुच रस तो परमात्मा स्वरूप ही है जिसको उपलब्ध कर परमानंद की प्राप्ति होती है। इसलिए सिद्ध कवियों की रचनाओं में रस अजस्र अमियस्रोत बहता रहता है।

महाकवि तुलसीदास का समग्र साहित्य रसमय है। उनका रामचरितमानस नौ रसों से परिपूर्ण है। इनके गीतिकाव्य में नौ रसों में से कुछ रस मिल जाते हैं किन्तु विनयपत्रिका तो भक्तिरस का काव्य है। अत्याधुनिक विद्वान् भी भक्ति को पृथक रस नहीं मानते। पहले हम रस के क्रमशः विस्तार, पुनः भक्ति और वात्सल्य के रसत्व पर विचार करेंगे और तब विभिन्न रसों का सांगोपांग विवेचन करेंगे।

रस-संख्या

साहित्य के प्रथम आचार्य भरत ने प्रधानतः आठ रस माने हैं।[1] शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत। उद्भट ने उसमें एक रस शांत

[1] शृंगार हास्यकरुण रौद्र वीर भयानकाः
वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ६, १६
निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

जोड दिया।[1] रुद्रक ने भी रसो मे प्रेयान् नामक एक रस और जोड दिया।[2] भोज ने इनमे दो रसो की और वृद्धि की[3]—उदात्त और अद्‍भुत। उन्होने उदात्त का मति और गर्व का स्थायी भाव स्थिर किये। प० विश्वनाथ ने वात्सल्य नामक एक और नए "रस" का उल्लेख किया। लेकिन इन आचार्यों ने भक्ति रस की चर्चा नही की। आचार्य मम्मट ने उक्त नवरसो का ही विवेचन किया तथा भक्ति को देवादि-विषयक रति ही मान लिया। देवादिविषयक रति से रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती—भाव ध्वनि की सृष्टि होती है।[4]

भक्ति-रस

साहित्य दर्पणकार ने भी भक्ति रस को मान्यता नही दी भले मुनीन्द्र सम्मत वात्सल्य रस का उल्लेख किया है।[5] उसमे वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि इसका आलबन और उसकी चेष्टा तथा विद्या, शूरता दया आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। आलिंगन, अगस्पर्श, सिर चूमना, देखना, रोमाच, आनन्दाश्रु आदि इनके अनुभाव होते हैं। अनिष्ट की आशका, हर्ष, गर्व आदि सचारी होते हैं।

पडितराज जगन्नाथ भी भरतमुनि एव मम्मटाचार्य द्वारा रचित लक्षणवृत्त से आगे नही बढ़ सके—जब भगवद्‍भक्त लोग भागवत आदि पुराणों का श्रवण करते हैं, उस समय वे जिस "भक्तिरस" का अनुभव करते हैं, उसे आप किसी तरह छिपा नहीं सकते। उस रस के भगवान् आलबन हैं, भागवतश्रवण आदि उद्दीपन हैं, रोमांच, अश्रुपात आदि अनुभाव हैं और हर्षादि सचारी भाव हैं। तथा इसका स्थायी भाव है भगवान् से प्रेमरूप भक्ति। इसका शांत रस मे भी अतर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि अनुराग वैराग्य से विरुद्ध है और शांत रस का स्थायी भाव है वैराग्य।[6]

किन्तु भक्ति और वात्सल्य को रस नही माना जो ठीक नही है। मम्मट ने रस की जो परिभाषा बनाई है—उसके आधार पर भक्ति और वात्सल्य को रस

१ शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ४।४
उद्भट (काव्यालंकार सारसंग्रह)

२ रुद्रट (काव्यालंकार)

३ शृंगारवीरकरुणरौद्राद्भुतभयानकाः। बीभत्सहास्य प्रेयांसः शान्तोदात्तोद्धता रसाः ५।१६४
भोज (सरस्वतीकण्ठाभरण)

४ रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथा ञ्जितः ४८, पृष्ठ ६४

५ स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः
स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः, पृष्ठ १२३

६ रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथा ञ्जितः
भावः प्रोक्तस्तदाभासा ह्यनौचित्य प्रवर्तिताः ।
रसगंगाधर : पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, पृष्ठ ११०, भाग १

मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उनका कहना है—"पानक रसन्यायेन चर्व्यमान पुर इव परिस्फुटन् हृदयमिव प्रविशन सर्वांगीणमिवालिंगन् अन्यत्सर्वमिव तिरोदधद् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिक चमत्कारी शृंगारादिकों रस", पृष्ठ ७७ (चतुर्थ उल्लास, काव्यप्रकाश)।

अर्थात्—

(१) पानकरस के समान जिनका आस्वाद होता है।

(२) हृदय में प्रवेश करते ही स्पष्ट झलक जाते हैं।

(३) व्याप्त होकर सर्वांग को सुधारस सिंचित बनाते।

(४) अन्य वेद्यविषयों को ढँक लेते हैं। -

(५) ब्रह्मानंद के समान अनुभूत होते हैं।

(६) वे ही अलौकिक चमत्कार सपन्न शृंगारादि रस कहलाते हैं।

इस कसोटी पर अगर भक्ति रस को कसने की चेष्टा करें तो कोई कारण नहीं कि भक्ति रस नहीं है। भक्ति-रस का विस्तृत विवेचन रूप गोस्वामी ने श्रीहरि भक्तिरसामृत सिंधु में किया है —

सामग्री परिपोषेण परमा रसरूपता
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः
एषा कृष्णरति स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत्।
प्राक्तनाधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना
एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते॥
भक्तिनिर्धूत दोषाणां प्रसन्नोज्जवलचेतसाम्
श्रीभागवतरक्तानां रसिकासंगरंगिणाम्
जीवनी भूतगोविन्द पादभक्ति सुखश्रियाम्
प्रेमान्तरंगभूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम्
भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कार युगलोज्ज्वला
रतिरानन्द रूपैव नीयमाना तु रस्यताम्।
कृष्णादिभिर्विभावाद्यै र्गतैरनुभवाध्वनि
प्रौढानन्द चमत्कार काष्ठामापद्यते पराम्।[१]

अर्थात् विभाव, अनुभावादि की परिपुष्टि से भक्ति परमरस रूपा हो जाती है। विभाव अनुभाव, सात्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों से भक्तों के हृदय में स्वाद्यत्व को प्राप्त कराई गई है जो कृष्णरति रूप स्थायीभाव हैं, वह भक्ति में परिणत होता है। जिनके हृदय में प्राचीन (पूर्व जन्म) की अथवा तात्कालिकी (इस जन्म

१ श्री हरिभक्तिरसामृतसिंधु—दक्षिणविभागे १ लहरी, पृष्ठ १२०, १२१

की) सद्भक्ति की वासना या संस्कार है, भक्ति रस का आस्वाद उन्हीं के हृदय में होता है। जिनके पाप-दोष भक्ति से दूर हो गये हैं जिनका चित्त प्रसन्न और उज्ज्वल है, जो भागवत में रत हैं, जो रसिकों के सत्संग में रमे हैं, जो जीवनीभूत गोविन्द के चरणों की भक्ति को ही अपनी मुख्य-श्री मानते हैं और जो प्रेम के अंतरंग कृत्यों को करने वाले भक्त हैं, उनके हृदय में जो आनन्दरूपा रति स्थित होती है, वही दोनों प्रकार के संस्कार से उज्ज्वल बनी, रति रस रूपता को प्राप्त होती है। यही रति अनुभूत कृष्णादि विभावादि के संसर्ग से उक्त भक्तों के हृदय में प्रौढानन्द और चमत्कार की प्रतिष्ठा को प्राप्त होती है।

इसी तथ्य की पुष्टि आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने इस प्रकार की है—

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथा जित
भाव प्रोक्तो रसो नेति मदुक्त रस कोविदै
देवान्तरेषु जीवत्वात् परानन्दाप्रकाशनात्
तद्योज्यम्परमानन्द रूपे न परमात्मनि
कान्तादिविषया वा ये रत्याद्यास्तत्रनेदृशम्
रसत्वम्पुष्यते पूर्ण सुखा स्पर्शित्व कारणात् ॥
परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रति
खद्योतेभ्य इवा दित्य प्रभेव बलवत्तरा ॥

—द्वितीय उल्लास ७६-७६, पृ० १६०-१६१

अन्य रसों के समान विभावादि से युक्त होकर भक्ति चित्रफलक के सदृश मनोरंजक बनकर रसत्व को प्राप्त होती है। रस कोविदों ने देवादिविषयक रति और अजित व्यभिचारी को भाव बतलाया है, रस नहीं, किन्तु इस विचार को अन्य देवताओं तक की परिमित समझना चाहिए। क्योंकि उन लोगों की रति अलौकिक आनन्ददायिनी नहीं होती। परमानन्द स्वरूप परमात्मा की भक्ति के विषय में यह बात कही जा नहीं सकती। कान्तादि विषयक रसों में रसत्व का पोषण यथेष्ट नहीं होता, क्योंकि पूर्ण सुख स्पर्श नहीं करते। प्राकृत क्षुद्र रसों से परिपूर्ण भगवद् भक्ति वैसी ही बलवती है, जैसे खद्योतों में आदित्य की प्रभा।

इन सारे उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भक्ति एक स्वतन्त्र रस है और उसको नहीं मानने के पीछे न कोई तर्क है न तुक।

भक्ति रस ही मुख्य रस

महाकवि तुलसी का समग्र साहित्य भक्ति रस से ओत-प्रोत है। उनके प्रबन्ध काव्य लिखने हैं वहाँ उनका एकवचन उतना मुखरित नहीं होता जितना उनके गीति ग्रन्थों में। उनकी विनयपत्रिका तो भक्ति रस का सर्वोत्तम ग्रंथ है। उसमें आद्यन्त मुख्यतया एक ही रस है और वह है भक्तिरस। विनयपत्रिका के रस पर विचार

करते हुये विद्वानो ने इसमें एकमात्र रस शात माना है। उनका कहना है कि "विनय पत्रिका मे केवल एक ही रस है और वह है शात।"[1] विनयपत्रिका वास्तव मे शात रस का ही ग्रथ है। शातरस की जैसी धारा विनयपत्रिका मे बही है वैसी हिन्दी साहित्य मे अन्यत्र नहीं।[2] लेकिन इनकी दृष्टि में रस का परम्परित सस्कार ही है। एकाध उदाहरण लेकर देखें कि भक्ति रस का कैसा परिपाक हुआ है—

ऐसो को उदार जगमाहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनिज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी।
जो सपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो सपदा विभीषण कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहिए मन मेरो।
तो भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधा तेरो। पद स० १६२

प्रस्तुत पद मे स्वय भगवान् आलम्बन हैं। भक्त आश्रय। उनकी सहज अनुकपा, सदाहायता, अतीव दयालुता आदि उद्दीपन हैं।

यद्यपि अनुभाव एव सचारी स्पष्ट रूप मे नही कहे गये हैं तथापि हर्ष आदि सचारी एव पुलक आदि अनुभावो का इसमे अध्याहार करना सहज है। इस प्रकार यह पद भक्ति रस परिपूर्ण है।

इन गीति ग्रथो का दूसरा प्रधान रस वात्सल्य है। साहित्यदर्पणकार ने वात्सल्य रस का उल्लेख किया है लेकिन फिर भी इस रस को मान्यता नही मिल पाई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक नामक ग्रन्थ मे "वात्सल्य" को रस माना है। हरिऔध जी ने पुष्ट तर्कों के आधार पर "वात्सल्य" को स्वतन्त्र रस मानने का आग्रह प्रदर्शित किया है।[3]

श्रीकृष्णगीतावली के आरम्भिक सत्तरहपद तथा गीतावली के बालकाड के आरम्भिक ४४ पद वात्सल्य रस के अन्तर्गत उपस्थित किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए श्रीकृष्णगीतावली का पहला पद लीजिये —

माता लै उछग गोविन्द मुख बार-बार निरखै।
पुलकित तनु आनदघन छन छन मन हरषै॥
पूछत तोतरात बात मातरि जदुराई
अतिसय सुख जाते तोहि मोहि कछु समुझाई

[1] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ४२०
[2] तुलसीदास आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, पृष्ठ २१८
[3] वत्सल्य रस, अयोध्यासिंह उपाध्याय

देखत तुव बदन कमल मन अनद होई
कहै कौन रसन मौन जानै जानै कोई कोई
सुन्दर मुख मोहि देखाउ इच्छा अति मोरे
मम समान पुन्य पुज बालक नहिं तोरे
तुलसी प्रभु प्रेम बिवस मनुज रूपधारी।
बालकेलि लीला रस ब्रज जन हितकारी।

आलम्बन—श्रीकृष्ण

आश्रय—यशोदा

उद्दीपन—बाललीला

अनुभाव—रसना का मौन

संचारी—हर्ष

शृ गार रस की कविताए भी गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली मे पर्याप्त मात्रा मे हैं। सभोग शृ गार के लिए सीता स्वयवर, विवाह-वर्णन, राम की पचवटी यात्रा, नख शिख-वर्णन, हिंडोला वर्णन आदि स्थल उपस्थित किये जा सकते हैं। कानन मे भगवान राम और सीता निवास कर रहे हैं। उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

फटिक सिला मृदु बिसाल, सकुल सुरतरु तमाल,
ललित लता जाल हरति, छबि वितान की।
मदाकिनि तटनि तीर, मजुल मृग बिहग भीर
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की।
मधुकर पिक बरहि मुखर, सुन्दर गिरि निर्झर झर।
जलकन घन-छाँह, छन प्रभा न भाव की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, सतत बहै त्रिविध बाउ
जनु बिहार-बाटिका नृप पचबान की।
बिरचित तहं परनसाल, अति विचित्र लषन लाल
निवसत जहं नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लवदल रचित सयन।
प्यास परसपर पियूष प्रेम पान की।
—सिय अग लिखै धातुराग, सुमननि भूषन विभाग।
तिलक करनि का कहौं कला निधान की।
माधुरी बिलास हास, गावत जस तुलसिदास
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की।

विप्रलम्भ शृ गार के लिए गीतावली के सुन्दरकांड के कुछ स्थल बडे मार्मिक है। हनुमान जी के अशोक वाटिका पहुचने पर सीताजी अपने वियोग सागर हृदय को

उनके समक्ष खोलकर रख देती है। उनके चलते समय तो उनका अन्तस्तल और विगलित हो उठता है—

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयननि्ह छायो।
कहन चह्यो संदेस, नहि कह्यो, पिय के जिय की जानी
हृदय दुसह दुख दुरायो।
देखि दसा व्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों घरनि तरनि तायो।
मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल
परुष प्रेम पायो॥
कै प्रबोध मातु प्रीति सों असीस दीन्ही ह्वै है तिहारोई मन भायो।
करुना कोप लाज भय भरो कियो गौन, मौन ही चरन
कमल सीस नायो।
यह सनेह सरवस समौ तुलसी रसना रूखी ताही ते परत गायो।[1]

आश्रय—सीता
आलम्बन—राम
उद्दीपन—प्रियतम के संदेशवाहक हनुमान का प्रस्थान गह्वरता
अनुभाव—पुलक, शैथिल्य, नयनों मे नीर, संदेश कहने की असमर्थता।
संचारी—करुणा, दुःख

इसके अतिरिक्त इसी कांड के १०वें, २०वें, २१वें पद इसके उदाहरण रूप मे उपस्थित किये जा सकते हैं। श्रीकृष्णगीतावली मे कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियो की जो दशा हुई है तथा उद्धव से वार्तालाप के क्रम मे जिसकी व्यंजना हुई है वे विप्रलम्भ शृ गार के लिये बड़े उपयुक्त स्रोत हैं। २४वें से ४६वें पद २६ पदो मे वियोग शृ गार देखा जा सकता है।

करुणा रस की निष्पत्ति राम वियोग के उपरान्त महाराज दशरथ और कौशल्या के कथनो मे होती है। यहाँ बन्धु विनाश के कारण नही वरन् बन्धु वियोग के कारण रस आप्यायित हो उठा है। महाराज दशरथ की उक्ति समय की है जब भगवान जंगल जा रहे हैं—

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै।
राम-लखन मेरी यहै भेंट, बलि, जाउं जहां मोहि मिल लीजै।
सुनि पितु बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें।
अजहुं अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हे।
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम चोट नृप-पथिक मारि मानो राम रतन लै भाग्यो।

---

१ गीतावली, सुन्दरकांड, १५

> तुलसी रविकुल रवि रथ चढ़ि, चल तकि दिसि दखिन सुहाई।
> लोग नलिन भए मलिन अवध सर, विरह, विषम हिम पाई।

आश्रय—माता कौशल्या
आलम्बन—राम
उद्दीपन—वनगमन
अनुभव—मूर्च्छा
संचारी—आवेग

ये गीतिकाव्य भक्तिपूरित हृदय के उद्गार हैं। इसलिए यदा कदा भगवान के अनुकम्पा दानशीलता तथा रण-कौशल प्रदान में वीररस का परिपाक ठिकाने से हुआ है। लक्ष्मण-मूर्च्छा के उपरांत हनुमान के इस कथन में वीर रस मूर्त हो उठा है—

> जो हौं अब अनुशासन पावौं।
> तौ चन्द्रमणि निचोरि चैत ज्यों आनि सुधा सिर नावौं।
> कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
> भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं।
> विबुध वेद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं।
> पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों सबहि को पापु बहावौं।
> तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
> दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हारे मन भावौं।[1]

काव्यशास्त्रियों ने वीर रस के चार भेद किए हैं—१ दानवीर, २ धर्मवीर, ३ युद्धवीर, ४ दयावीर।

इन सब भेदों का स्थायीभाव तो उत्साह ही है, फिर आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारी पृथक्-पृथक् होते हैं।[2] इन चारों के उदाहरण गीतावली में उपलब्ध हैं। युद्धवीर का उदाहरण ऊपर दिया गया है। अन्य के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

दानवीर

> मेरे जान तात कछू दिन जीजै।
> देखियत आपु सुवन सेवासुख मोहि पितु को सुख दीजै॥
> दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै।
> हरि हर सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै॥

---

१ गीतावली, लंकाकांड ८, अन्य उदाहरण—हनुमान रावण-संवाद, गी० सुन्दर० पद १३, १४, जटायु-रावण युद्ध, गी० अ० पद ८

२ काव्यकल्पद्रुम, रसमंजरी, सेठ क हैयालाल पोद्दार, पृष्ठ २१५

देखि बदन, सुनि बचन ग्रमिय, तन रामनयन जल भीजै ।
बोल्यो विहग विहँसि रघुवर बलि कहौं सुभाय पतीजै ॥
मेरे मरिव सम न चारि फल होंहि तो क्यों न कहीजै ?
तुलसी प्रभु दियो उतर मौन हीं परी मानो प्रेम सहीजै ।[1]

दानवीर

सब भांति बिभीषन की बनी ।
कियो कृपालु समय कालहु तें गइ संसृति सांसति घनी ।
सखा लखन हनुमान सम्भु गुरु धनी राम कोमलपनी ।
हिय ही ग्रौर ग्रौर कीन्हीं विधि, राम कृपा ग्रौरै ठनी ॥
कलुष-कलप कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी ।
सोइ पद पाय बिभिषन भो भव-भूषन दलि दूषन-ग्रनी ॥
बांह पगार उदार सिरोमनि नत पालक पावन पनी ।
सुमन बरषि रघुबर-गुन बरनत हरषि देव दुंदुभी हनी ॥
रंक-निवाज रंक राजा किए, गये गरब गरि गरि जनी ।
राम प्रनाम महा महिमा खनि सकल सुमंगलमनि जनी ॥
होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये राम सरन परिहरि मनी ।
भुजा उठाइ साखि संकर करिकसम खाइ तुलसी खनी ॥[2]

धर्मवीर

एक तीर तकि हती ताड़का, विद्या विप्र पढ़ाई ।
राख्यो जज्ञ जीति रजनीचर, भइ जग विदित बड़ाई ॥[3]

अन्य रसों का वर्णन कम ही है । फिर भी हास्य, शांत तथा अद्भुत रसों के कतिपय उदाहरण प्राप्त हो ही जाते हैं ।

हास्य

बावरो रावरो नाह भवानी !
दानि बड़ो दिन, देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी ॥
निज घर की बरबात विलोकहु, हो तुम परम सयानी ।
सिव की दई संपदा देखत श्रीसारदा सिहानी ।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नाहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक सवारत हौं ग्रायौं नकबानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता ग्रकुलानी ।
यह ग्रधिकार सौंपिए ग्रौरहिं भीख भली मैं जानी ॥

---

१ गीतावली, अरण्यकाण्ड, १५
२ ,, सुन्दरकाण्ड, ३६
३ ,, बालकाण्ड, ६ (२०)

प्रेम-प्रसंसा-विनय-व्यंग्य-जुत सुनि बिधि बर बानी।
तुलसी मुदित महेस, मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी ॥[1]

शान्ति

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबहीं ते।
अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबहीं तें ॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ बिषय भोग बहु घी तें ॥[2]

रौद्र

जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो।
तौ यहि रिस तोहिं सहित दसानन जातुधान दल दलतो ॥
रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक खल खलतो।
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो ॥
बड़े समाज लाज भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छलतो।
लंकनाथ! रघुनाथ बैर-तरु आजु फलनि फूलि फलतो ॥
कालकरम दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो।
ता रिपु सों पर भूमि रारि रन जीतन मरन सुफल तो ॥
देखी मैं दसकण्ठ सभा सब मोतें कोउ न सबल तो।
तुलसी अरि उर आनि अब एतो गलानि न गलतो ॥[3]

भयानक

ब्रज पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए ॥
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर।
बार बार पविपात, उपल घन बरसत बूँद बिसाल।
सीत-सभीत पुकारत आरत गो सुत गोपी ग्वाल ॥
राखहु राम कान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आइ।
नंद बिरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बल पाइ ॥

---

१. विनयपत्रिका, ५
२. " १९८
३. गीतावली, सुन्दर काण्ड, २३

सुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरू, लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपने सों करि गयो गर्व गँवाइ ॥[1]

अद्भुत

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहिं, सरिस न बेग बियो है ॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्‌यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है ॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन-दान दियो है।
दुख लघु लषन मरम घायल सुनि सुख बड़ो कीस जियो है ॥
आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहर्‌यो अकास सो कैसेहु जात सियो है ॥[2]

ध्वनि

रस पर विचार करने के उपरांत तुलसी के गीत काव्य की ध्वनि पर विचार कर लें। उत्तम काव्य ध्वनि प्रधान हुआ करता है। काव्य की आत्मा रस भी तो ध्वनित ही होता है। आनंदवर्द्धन ने तो काव्य की आत्मा ध्वनि को ही माना है। ध्वनि कई प्रकार की होती हैं—रस-ध्वनि, वस्तुध्वनि तथा अलंकार ध्वनि। इस तरह ध्वनि के अंतर्गत तो रस, सामान्य कथन तथा अलंकार सभी आ जाते हैं, काव्य शास्त्रियों ने ध्वनि के ५१ भेद किए हैं। कुछ मुख्य भेद प्रस्तुत किये जा रहे हैं।
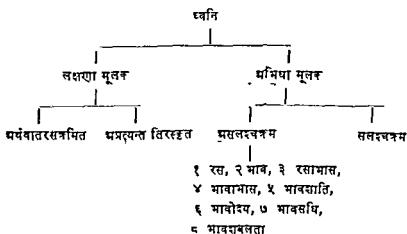
1. श्रीकृष्णगीतावली, १८
2. काव्य-दर्पण, प० रामदहिन मिश्र, पृष्ठ २२८

(१) वस्तु से वस्तुध्वनि ।
(२) वस्तु से अलकार ध्वनि ।
(३) अलकार से वस्तु ध्वनि ।
(४) अलकार से अलकार ध्वनि ।

असलक्ष्यक्रम ध्वनि मे सबसे प्रमुख रस की चर्चा सविस्तार की गई है। असलक्ष्यक्रम ध्वनि के कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं —

भाव

कब देखोंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल-कृपाअयन, मयननि बहु छवि अगनि दूरति ।
सिरसि जटा-कलाप पानि सायक चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीर की सोभा सुमिरि, भई है मगन नहिं तन की सूरति ।[1]

रामदर्शन की उत्कठा मात्र व्यजित है । विप्रलम्भ शृ गार अपूर्ण रह गया है ।

भावाभास

सुक सों गहवर हिये कहै सारो ।
बीर कीर ! सियाराम लपन बिनु लागत जग अँधियारो ॥
पापिनि चेरि, अयानि, रानि, नृप हित अनहित न बिचारो ।
कुलगुरु सचिव साधु सोवतु बिधि को न बसाइ उजारो ?॥
अवलोके ने चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो ।
सुने न बच करुनाकर के जब पुर परिवार सभारो ॥
भैया भरत भावते के सग बन सब लोग सिधारो ।
हम पख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ।
सुनि खग कहत अब ! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो ।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो ॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो ।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ॥[2]

रति भाव की उपस्थिति पक्षियो मे भी दिखलाई गई है ।

---

१ गीतावली, सुन्दरकांड, ४७ वाँ पद
२ गीतावली, अयोध्याकांड, पद संख्या ६६

अलकार दो प्रकार के हैं—

(१) शब्दालकार,

(२) अर्थालकार

(१) शब्दालकार में चमत्कार शब्दाश्रित रहता है। शब्द परिवृत्तसह रहा करते हैं। शब्दालकार मे मुख्य अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति, वीप्सा, वक्रोक्ति तथा श्लेष हैं।

(२) अर्थालकार—जहाँ पर चमत्कार अर्थाश्रित रहता है। शब्दालंकार में शब्द परिवृत्ति सह रहते हैं। इनका विभाजन चाहे साम्यमूलक, वैषम्यमूलक, शृ खलामूलक, न्यायमूलक करके किया जाय लेकिन मुख्य अलकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, उल्लेख, प्रतीप, सन्देह, भ्रान्तिमान, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, निदर्शना, प्रतिवस्तूमा, दृष्टान्त, काव्यलिंग, स्मरण, विरोधाभास, असगति, विशेषोक्ति आदि ही हैं।[1]

शब्दालंकार

१ अनुप्रास

ये अब सही चतुरी चेरी पै चोखी चाल चलाकी।

कृष्णगीतावली, पद सख्या ४३।

रघुनद आनदकद कोशलचद दशरथ नदनं।

—विनयपत्रिका

२ यमक

भए बिदेह बिदेह नेहबस देह दसा बिसरायो।

—गीतावली, बालकाड, पद सख्या ६५।

जोग जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान सिरोमनि जानी।

—कृष्णगीतावली, पद सख्या ४७।

३ पुनरुक्ति

राम जपु ! राम जपु ! राम जपु !

—विनयपत्रिका

४ पुनरुक्ति

देव ! मोहतम-तरणि, हर, रुद्र, शकर शरण

—विनयपत्रिका १०।

५ वीप्सा

सिव ! सिव ! होइ प्रसन्न करु दाया

—विनयपत्रिका, पद सख्या ६

(कलियुग से डरकर या आदर के लिए आवृत्ति)

---

१ अलंकार के निप, चमत्कार मुक्तावली, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा

जेहि के भवन विमल चिंतामनि सो कत काच बटोरे।

—विनयपत्रिका, ११६।

हे काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै।

—विनयपत्रिका, १३७।

कौन कियो समाधान सनमान सीला को?

भृगुनाथ सो ऋषि जितैया कौन सीला को?

—विनयपत्रिका, १८०।

७ श्लेष

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।

तौ कत मृगजल रूप विषय कारन निसि बासर धावै॥

—विनयपत्रिका ११६

ब्रह्म के चार अर्थ—वेद, ब्राह्मण, ब्रह्मा और परमेश्वर—चारों प्रकरण में अपेक्षित है।

राम लषन जब दृष्टि परे री।

अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो विधि विविध विदेह करे री।

—गीतावली, बालकांड, ७६।

अर्थालंकार

१ उपमा

काम तून-तल सरिस जानु जुग उरु करिकर करिभर विलसावति।

—गीतावली, बालकाड, १७।

नगर-रचना सिखन को विधि तकत बहु विधि वद

निपट लागत अगम, ज्यों जलचरहिं गमन सुछंद।

—गीतावली, उत्तरकांड २३।

किंजल्क वसन, किसोर मूरति, भूरि गुन करुनाकर

कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू राका मयंक समानन।

—कृष्णगीतावली, पद संख्या २३।

२ अनन्वय

दई पीठि बिनु दीठि मैं, तु बिस्व बिलोचन।

तो सों तुहीं न दूसरो, नत सोच बिमोचन।

—विनयपत्रिका, १४६।

३ रूपक

अब लौं मै तोसों न कहेरी।

× × ×

विरह बिषम बिष बेलिनढी उर, ते सुख सकल सुभाय देहरी।
सोइ सींचबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहेरी।
सर सरीर सूखे प्रान बारिचर जीवन आस तजि चलन चहेरी।
तैं प्रभु सुजस सुधा सीतल करि राख, तदपि न तृप्ति लहेरी।
रिपु रिस घोर नदी बिबेक बल छीर सहित हुते जात बही री।
दै मुद्रिका टेक तेहि औसर, सुचि समीर सुत पैरि गहेरी॥

—गीतावली, सुन्दरकांड, ४६।

४ सदेह

मनोहरता के मानो ऐन।

× × ×

किधौं सिंगार सुखमा सुप्रेम मिलि चले जग चित वितलैन।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग लोगन्हि सुख दैन।

—गीतावली, अयोध्याकांड, २४।

५ अपन्हुति

सुनि पितु बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हे।
अजहुँ अवनि बिहरत दरारमिस, सो अवसर सुधि कीन्हे।

—गीतावली, अयोध्याकांड, १२।

६ उल्लेख

मंजुल मंगलमय नृप-ढोटा।

× × ×

साधन फल साधक सिद्धन्नि के, लोचन फल सबही के।
सकल सुकृत फल माता पिता के, जीवन धन तुलसी के।

— गीतावली, बालकांड, ५६।

प्रानहु के प्रान से, सुजीवन के जीवन से,
प्रेमहू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं।
तुलसी लोचन चकोर के चंद्रमा से,
आछे मन मोर चित्त चातक के घन हैं।

—गीतावली, अयोध्याकांड, २६।

७ उत्प्रेक्षा

मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
स्याम सारस मग मनहुँ ससि स्रवत सुधा सिंगारु।
सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।
मानहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु।

— कृष्णगीतावली, १४।

८ अतिशयोक्ति

निरमल अति पीन चेल, दामिनि जनु जलद नील
राखी जनु सोभा हित बिपुल बिधि निहोरी।
(जलद-नील में रूपकातिशयोक्ति है)
—गीतावली, लंकाकाण्ड, ७।

९. तुल्ययोगिता

तापर सानुकूल गिरिजा हर, लखन राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि, खानि सकल कल्यानकी।
—विनयपत्रिका, ३०।

१० दृष्टान्त

आगम निगम ग्रन्थ रिषि मुनि सुर सन्त,
सबही को एक मन सुनु मतिधीर।
तुलसिदास पियास मरे पसु बिनु प्रभु,
जदपि रहे निकट सुरसरि तीर।
—विनयपत्रिका, १९९।

सुखी भए सुर, सत भूमि सुर, खल गन-मन मलिनाई।
सबहु सुमन विकसत रवि निकसत, कुमुद बिपिन तिलाई।
—गीतावली,

११ निदर्शना

ते नर नरक-रूप जीवत जग, भव भञ्जन पद बिमुख अभागी।
निसि-बासर रुचि पाप असुचि मन, खलमति मलिन निगम पथत्यागी।
—विनयपत्रिका, १४०।

१२. व्यतिरेक

सरद सरोरुहु ते सु दर चरन हैं।
—गीतावली, अयोध्याकांड, २६।
उमहु रमा ते आछे अग अग नीके हैं।
—गीतावली, अयोध्याकाड, ३०।
बिनु बिराग जप जोग धन, बिनु ताप बिनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद प्रयाग अनुरागे।
—गीतावली, उत्तरकांड, १२।

१३ सहोक्ति

प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यंग, जुत सुनि बिधि की बरबानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन, जगमातु मुसकानी।
—विनयपत्रिका, ५।

१४ विनोक्ति

करम धरम श्रमफल रघुवर बिनु,
राख को सी होम है, ऊसर को सो बारिसो।
तुलसिदास मरे प्यास बिनु प्रभु पसु
जद्यपि हो मकट सुरसरि तीर।
—विनयपत्रिका, १६६।

१५ परिकर

तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन कानन भरि पूरि पहेरी,
अब सखि सिय! संदेह परिहरु हिय आइगए बीर अहेरी।
—गीतावली, सुन्दर कांड, ४६।

परिकरांकुर

हृषीकेस सुनि नाऊँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इन्द्रिय सम्भवदुख, हरे बनिहि प्रभु तोरे।

१६ अर्थान्तरन्यास

उपकारी को पर हर समान।
सुर-असुर जरत कृत गरल पान।
—विनयपत्रिका, १३।

पिय के वचन परिहरसो जिय के भरोसे,
सग चली बन बडो लाभ जानि।
पीतम बिरह तो सनेह-सरबसु सुत,
औसर को चूकिबो सरिस न हानि।
—गीतावली, सुन्दरकाड, ७।

१७ विरोधाभास

न करु विलव विचारु चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु।
मत्र सो जाइ जपहि जो जपत भये, अजर अमर हर अचइ हलाहलु।
—विनयपत्रिका, २४।

करुनानिधान को तो ज्यों तनु छीन भयो,
त्यों त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन।
—गीतावली, सुन्दरकाड, ८।

१८ विरोधाभास

सारथि पगु दिव्य रथगामी। हरि सकर-विधि मूरति स्वामी।
—विनयपत्रिका, २।

आधि मगन मन, व्याधि बिकल तनु, बचन मलीन सुठाई।
एतेहुँ पर तुम्ह सों तुलसी की सकल सनेह सगाई।
—विनयपत्रिका, १६५।

१६ भ्रमगति

हृदय घाव मेरे पीर रघुवीरे।
—गीतावली लङ्काकाड, पद १५।

लाज गाज उन बनि कुचाल कलि
परी बजाइ कहूँ कहूँ गाजो।
—कृष्णगीतावली, ६१।

२० सार

नेकु बिलोकि धों रघुबरनि।
× × ×
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दे जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहे तरनि॥
—गीतावली, बालकाड, २८।

२१ प्रतीप[1]

लसत झगुली झीनी, दामिनी की छबि छीनि।
—गीतावली, बालकाड, ४४।

२२ विशेषोक्ति

ग्यान परसु दे मधुप पठायो
बिरह बेलि कैसेहुँ करि जाई।
सो थाम्यो बरभ रह्यो एकटक,
देखन इनकी सहज सिंचाई।
—कृष्णगीतावली, ५६।

मोह जनित मल लाग विविध विधि, कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक अधिकाई।
—विनयपत्रिका, ८२।

सर-सरीर सूखे प्रान बारिचर जीवन आस तजि चलन चहेरी।
तैं प्रभु सुजस सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहेरी।
—गीतावली, सुन्दरकाड, ४६।

२३ तद्गुण

राजत नरन जनु कमलदलनि पर अरुन प्रभा रंजित तुषार कन।
गीतावली लङ्काकाड, १६।

---

१. गीतावली, बालकांड, ३७, विनयपत्रिका, ४

२४ ललित

कोउ कहै, मनिगन तजत कांच लगि, करत न भूप भली।
—गीतावली, अयोध्याकाड, १०।

२५ यथासख्य

तुलसी भनिति, सबरी प्रनति, रघुवर प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होइ प्रभु पद नित नई।
—गीतावली, अरण्यकाड, १७।

२६ भाविक

तुलसी-प्रभु को सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोच दवदहिबो।
—गीतावली, सुन्दरकाड, १५।

२७ उदाहरण

जौं आचरन बिचारहु मेरो, कलप कोटि लगि अवटि मेरों।
तुलसिदास प्रभु कृपा-बिलोकनि, गो पद ज्यों भवसिंधु तरो?
—विनयपत्रिका, १४१।

कइ कोटर महँ बस बिहंगतरु, काटे मरइन जैसे।
साधन करिय बिचार हीन मन, सुद्ध होइ नहिं तैसे।
—विनयपत्रिका, ११५।

२८ अप्रस्तुत प्रशसा

बैरि वृ द-विधवा वनितनि को, देखिवो वारि विलोचन बहिबो।
सानुज सेन समेत स्वामिपद निरख परम मुद मगल लहिबो।
—(कार्यनिबंधना) गीतावली, सुन्दरकाड, १४।

पाश्चात्य अलकार

२९ ध्वन्यर्थ व्यंजना

नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात।
तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस,
मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात॥
—श्रीकृष्णगीतावली, २।

३० मानवीकरण

सीदत साधु साधुता सोचति खल बिलसत हुलसित खलई है।
—विनयपत्रिका, १३९।

लोभ लालची लीलि लई है।
—विनयपत्रिका, १३९।

अलंकार का प्रयोजन

अलंकार के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप-गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली उक्ति ही अलंकार है।"[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि अलंकारों के प्रयोग के ये ही उद्देश्य हैं—

१ भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक।

२ वस्तुओं के रूप या अनुभव तीव्र करने में सहायक,

३ गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक।

४ क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक।

आो हम देखने का प्रयत्न करते हैं कि तुलसी के गीतग्रन्थों में अलंकार इन्हीं उद्देश्यों से प्रयुक्त हुए हैं।

सहेली सुन सोहिलो रे।

सोहिलो सोहिलो सोहिलो, सोहिलो सब जग आज

मनो सो हिलो सोहिलो मो जनु सृष्टि सोहिलो सानी।

—गीतावली, बालकांड, ४।

प्रस्तुत पद में "सोहिलो" की आवृत्ति सात बार हुई है। इस पुनरुक्ति अलंकार के माध्यम से कवि भगवान् राम के अवतार की व्यापक अनुभूति को सम्पूर्ण अयोध्या में परिव्याप्त कर देना चाहता है। सम्पूर्ण अयोध्या में ही आनन्दोल्लास छा जाए, इसके लिए दो-तीन बार ही "सोहिलो" के प्रयोग करने से काम चल जाता है, लेकिन सात बार की आवृत्ति से उसका तात्पर्य यह है कि यह हर्षातिरेक चराचर जगत में फैल जाए। भावबोध के लिए ही उन्होंने इस अलंकार की सहायता ली है शब्द दरिद्रता या अलंकार-प्रियता के कारण नहीं।

हाय मींजिबो हाय रह्यो।

लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्यीं कहा जात बह्यो॥

पति सुरपुर, सिय राम लखन बन, मुनिव्रत भरत गह्यो।

हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो॥

मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहँ कुलिस लह्यो।

तुलसी बन पहुँचाइ फिरि सुन, क्यों कछु परन कह्यो ?॥

—गीतावली, अयोध्याकाण्ड, ८४।

इस पद में कौशल्या का पुत्र-प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर है। जिस पुत्र-वियोग में मछली की तरह तड़प-तड़पकर महाराज दशरथ ने प्राण-त्याग किया उसी के वियोग में माता कौशल्या जी रही हैं। वह तो घर में ही श्मशानाग्नि हो रही हैं। घर में धू-धू जल रही हैं। श्मशान अत्यधिक अशुभ हुआ करता है। होमाग्नि की तरह

१ चिन्तामणि, पहला भाग, पृष्ठ १८०

पवित्र पूत नही। इस ससार मे उससे अशुभ, पाप-पुंज और कौन है? श्मशान की आग शव को जलाती है—लेकिन उसने तो स्वय मृत्यु को ही जला डाला है। अगर मृत्यु स्वत जल गई न होती तो फिर कौसल्या बैठी क्यो रहती? दुख-दग्ध होती क्यो रहती है, यम यातना क्यो सहती है? विकट पीडा क्यो झेलती? इसलिए "मरिबाइ मृतक" को जला देने मे या धूरि पक्ति मे जो रूपक से पुष्ट पूर्णोपमालकार है उसमे दूर की कौडी लाने का प्रयास नही किया गया है वरन् इसमे माता कौशल्या के हृदय की ग्लानि, पश्चाताप वेदना, आत्मदाह एव पीडा की सम्मिलित अभिव्यक्ति हुई है।

वस्तुओ के रूप (सौंदर्य उद्दीपन) का अनुभव तीव्र करने मे सहायक

हरि को ललित बदन निहारु।

× × ×

सुभग उर दधि बुंद सुदर लखि अपनपो वारु॥
मनहुं मरक्त मृदु शिखर पर लसत बिसद तुषारु॥

कन्हैया ने दधि की मटकी फोड दी है। दधि के कुछ छींटे उडकर उनके वक्षस्थल पर बिखर गये हैं। यह ऐसा मालूम पडता है जैसे मरकत मणि के पर्वत शिखर पर उज्ज्वल हिमखड सुशोभित हो। श्यामसुन्दर स्वयम् श्यामवर्ण हैं इसलिए उनके वक्षस्थल का रग भी श्याम ही होगा, अत मरकति मणि जिसका रग नीला होता है उससे समता दिखलाई गई। वक्ष के ऊपरी भाग पर दधिकण हैं इसलिए पर्वत का शिखर कहा गया—तराई नही। दधि भी पुष्ट गाय के विशुद्ध दूध से जमाया गया है। दधि आजकल के पाउडर मिल्क का दही नही, इसलिए इसके छींटे भी गाढे होंगे जमे होंगे, शिनीभूत होंगे इसलिए दधिकणो की समता तुषार-खडो से बिलकुल बैठ जाती है। पुन नीले मणि-पर्वत पर धवल हिमखड नीले पर उजले का मिश्रण जैसा नयनाभिराम—चित्ताकर्षक प्रतीत होता है। ठीक वैसा ही यह दृश्य हृदयहारी है तभी तो इस दृश्य की रमणीयता से मुग्ध होकर गोरस-हानि का जरा भी ख्याल न कर, गोपियाँ यशोदा मैया को ही उलाहना देने लग गईं। ये ही गोपियाँ जो बार-बार कृष्ण के नटखटपन की नालिश करती थी, कृष्ण के विपक्ष मे रहती थी, आज श्रीकृष्ण के पक्ष मे होकर माँ यशोदा से उलझ पडी हैं। क्या है रूप का जादू। सौंदर्य की मोहिनी। "उत्प्रेक्षा अलकार के माध्यम से सौंदर्य और भी उजागर"।

एक और उदाहरण लिया जाय—

सुभग सरासन सायक जोरे।
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कठ रेखें चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद ससि की छबि छोरे॥

—गीतावली, अरण्यकाड, २।

भगवान के मुख को देखने से बड़ा ही आनन्द मिलता है। उनका मुख शरद चन्द्र की छवि छीन लेता है। अलंकार पंचम प्रतीप है लेकिन इसके माध्यम से भगवान् की मुखाकृति का सौंदर्य स्पष्ट हो जाता है। यों तो बारहों मास—छहों ऋतुओं का चन्द्र आह्लादक होता है। लेकिन शरद ऋतु में तो आकाश पूर्णतः निर्मल रहता है। बादलों का अवगुण्ठन उस पर नहीं रहता है इसलिए इसका प्रकाश और भी होता है लेकिन भगवान् का मुख तो उस चन्द्र की सुन्दरता भी छीन लेता है। शक्तिशाली दुर्बलों की वस्तु जब चाहे छीन ले, भगवान् की सौंदर्य शक्ति के समक्ष शरद-चाँद की सुन्दरता किस काम की।

गुण को तीव्र कराने में सहायक अलंकार

> मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है।
> कलिकालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है।
> —विनयपत्रिका, २७९।

२७८वें पद में गोस्वामीजी ने पवनकुमार, शत्रुघ्न, भरत तथा लक्ष्मण से प्रार्थना की है कि आप इस दीनकी सुधि करते रहेंगे तभी इस दुर्बल दास की आशा पूर्ण होगी, नहीं तो नहीं। पवनकुमार, शत्रुघ्न और भरत जी क्या जानें कि किस समय कौनसा काम किया जाता है? पवनकुमार पवन की द्रुतगामिता भले जानें, शत्रुघ्न जी शत्रुओं का हनन करना भले जानें, भरत जी भरण पोषण भले जानें लेकिन साहित्य से किस समय सारा अपना काम आसानी से करा लेता है यह तो उनके बूते की बात नहीं। इसलिए लक्ष्मण ने पवनकुमार और भरत की रुचि जानकर तुलसी की चर्चा चलायी, लक्ष्मण ही तो लगन टहरे लगनेवाले टहर, और तभी तो सम्पूर्ण कलियुग के लोगों की दृष्टि में रखकर यह बात कही कि इतनी लम्बी अवधि में सिर्फ एक भक्त ने सम्पूर्ण विश्वास और प्रीति से आपका स्मरण किया है। इस तरह 'परिकरांकुर' अलंकार के द्वारा तुलसीदास जी ने लक्ष्मण के गुणों की विशिष्टता का बोध बड़ी सुगमता से कराया है। इस तरह के उदाहरण बहुत से उपस्थित किए जा सकते हैं लेकिन विस्तार भय से ऐसा नहीं किया जा रहा है।

क्रिया को तीव्र करने में सहायक अलंकार

> जो हौं अब अनुशासन पावौं।
> तो चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों, आनि सुधासिर नावौं।
> कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृतकुंड महि लावौं।
> भेदि भुवन करि भानु बाहिरो, तुरत राहु दै तावौं।
> विबुध बैद बरबस आनौं, धरि, तौ प्रभु अनुज कहावौं।
> पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं, सबहि को पापु बहावौं।
> तुम्हरि कृपा, प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
> दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु, जेहि तुम्हरे मनभावौं।
> —गीतावली, लंकाकांड, ८।

हनुमान को प्रभु की आज्ञा पाने की देर है और वे कोई कार्य शीघ्रातिशीघ्र कर सकते हैं। वस्तु को निचोड़ने में देर नहीं लगती, ठीक उसी तरह सुधाकर को निचोड़कर स्रवित सुधा से हनुमान लक्ष्मण को जीवित कर सकते हैं। मगर इससे भी नहीं हो तो वे पाताल का दलन कर नागों से अमृत ले आवें, नहीं तो भुवन भेदकर भानु को ही राहु के पास दे आवें। या फिर देववैद्य को पकड़कर ले आवें और उनकी चिकित्सा से लक्ष्मण को अजर-अमर बना दें। इससे भी नहीं तो नीच मृत्यु को मूषक की तरह पटककर मार दें। जब मृत्यु ही मर जाएगी तो लक्ष्मण का मृत्यु क्या बिगाड़ सकती है।

इस पद मे अलंकार का प्रयोग पगु की लाठी के रूप मे नहीं किया गया है वरन् कवि स्वय सशक्त है और अलकारों के द्वारा हनुमान की महान् वीरता का गत्यात्मक स्वरूप उपस्थित करता है।

अप्रस्तुत विधान की व्यापकता

कुशल गीतकार तुलसी बहुज्ञ एव बहुश्रुत थे। उन्होंने एक ओर "नाना पुराण निगमागम" का अध्ययन किया था, दूसरी ओर चित्रकूट आदि पर्वत शृखलाओ पर क्रीडित प्रकृति सुकुमारी की विभिन्न मनोरम छटाओ तथा अवध-वाराणसी आदि स्थानो के उन्मुक्त वातावरण के अनुरजित भूदृश्यो का अवलोकन किया था, तो तीसरी ओर विराट् जीवन के तिक्त मधुर अनुभवों से अपना मानस-घट पूरित किया था। अत उनके अप्रस्तुतविधान की व्यापकता स्वाभाविक ही है। स्थूल रूप से उनके गीतकाव्य म प्रयुक्त उपमानो की निम्नांकित कोटिया बताई जा सकती हैं।

१ प्राकृतिक उपमान—प्राकृत वस्तुएँ, पशु पक्षी, वन, नदी, चन्द्र, सूर्य आदि।

(क) परपरित—रूढ उपमान।

(ख) अपरपरित—प्रकृति के खुले पृष्ठो से कवि की सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा चयन।

२ लौकिक उपमान—लोक या जगत की वस्तुएँ।

३ काल्पनिक उपमान—जिन उपमानो का अस्तित्व नहीं होता कवि कल्पना के द्वारा निर्मित होते हैं।

४ पौराणिक—पुराण से सबधित।

५. शास्त्रीय—काव्यशास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष, भूगोल आदि से सबधित।

१ तुलसी की कविता मे ऐसे उपमान बहुत आए हैं। वे कहते हैं कि हे मन कृपालु रामचद्र का भजन करो। वे ससार के जन्म मरण रूप भयकर दुःख दूर करने वाले हैं। उनके नेत्र नवविकसित कमल के सदृश हैं, उनका मुख भी कमल की तरह है। उनके हाथ भी कमल की तरह हैं तथा उनके युगल चरण भी लाल कमल की तरह हैं। शोभा करोड़ो काम देव की तरह है। उनके शरीर का रग वर्षाकालीन

नील वर्ण नीरद की तरह सुन्दर हैं। श्यामसुन्दर पर पीताम्बर मेघ बिजली की तरह छटा दिखाती है।[1] पुन आगे के पद में ही कहते हैं कि कोसलेन्द्र का तनु नव-नीलकंजाम है। वे शंकर के हृदय रूपी कमल मे रमने वाले भ्रमर हैं। दानवो के वन के लिए प्रचड अग्नितुल्य हैं। हाथ, चरण, मुख और नयन कमल की तरह हैं। वासना-कुमुदिनी के विनाश हेतु सूर्य की तरह हैं काम क्रोध मद कज कानन के लिए तुलसी तुषार हैं। शोक सदन रूपी मघा के समूह को छिन-भिन्न करने के लिए वायु के समान हैं तथा पाप रूपी कठोर पर्वत को तोडने के लिए वज्र रूप हैं।[2] फिर भगवान् के नेत्र की उपमा अरुण सजीव दल से देते हैं तथा श्याम तन कान्ति की उपमा वारिद की आभा से।[3] आगे के पद मे सुभग कान्ति को नील नव वारिधर[4] की तरह बताते हैं। माडवी के चित्र-चातक के लिए भरत जी भी नवाम्बुद वर्ण हैं।[5] हनुमान जी के नख दत वज्र की तरह हैं और वे अरि रूपी मदमत्त कुजरों के लिए सिंह की तरह हैं।[6] भगवान् शंकर भी शत्रुओं के वन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान हैं।[7] वे गिरजा रूपी मानस के लिए मराल की तरह है।[8] सूर्य भगवान् भी तम रूप हाथियो के लिए सिंह की तरह हैं।[9]

फिर अग-प्रत्यग के लिए आने वाले नख शिख वर्णन पद्धति वाले चर्वित उपमानों का आधिक्य तो कभी-कभी पाठक को उबा देता है। विनयपत्रिका के चौदहवें पद मे शरीर द्युति के लिए चम्पक पुन, कटि के लिए केहरि, गति के लिए मराल, नूपुर के लिए विहग, जघ के लिए कदलि, पद के लिए कमल, भूषण के लिए प्रसून, हाथ के लिए मोलिसिरी और आम्रपल्लव स्तन के लिए श्रीफल, कचुकि के लिए लताजाल, वचन के लिए पीक, हास के लिए सित सुमन, लीला के गभीर आदि उपमान प्रयुक्त हुए हैं।

जब भगवान् राम मणि खचित आगन मे घुटनों के बल दौडते हैं तो नील मेघ के समान उनकी काति देख उन्हें अपने पास बुला लेती हैं। उनके अरुण पद पकज बधूकपुष्प के समान हैं।[10] यहाँ भी जब उनकी माँ उन्ह पटपीत पहनाती है

१ विनयपत्रिका, ४५
२ वही, ४६
३ वही, ५०
४ वही, ५१
५ वही, ३९
६ वही, २८
७ वही, १०
८ वही, १०
९ वही, २
१० गीतावली, बालकाड, २३, नागरी प्रचारिणी सभा

तो एक अद्भुत उपमा बन जाती है। ऐसी उपमा कि इस ओर तुलसी का कभी ध्यान गया ही था ही नही। इसकी चर्चा हमने विनयपत्रिका के ४५वें पद के रूप वर्णन मे की है। और बड़ी पुरानी बात की जैसे नील जलद के मध्य बिजली कौंध जाती है। जब दोनो दशरथ कुवर जनकपुर पहुँचते हैं तो वहाँ की नर-नारियाँ भी किशोर द्वय के "घन तडित बरन तनु"[1] को देखकर मुग्ध हो जाती हैं। पुन जब इन्द्रनीलमणि के समान श्यामवर्ण वाले रामचन्द्र जब सुवर्णवर्ण यज्ञोपवीत एव मुक्ताहार पहनते हैं तो उस समय कवि को ऐसा लगता है मानो बादल और बिजली के मध्य इद्रधनुष उदित हो और वही बकपक्ति उपस्थित हो गई हो।[2] बादल और बिजली के साथ इन्द्रधनुष और बकपक्ति जोडकर सांगरूपक से सापेक्षता न कोई नवीनता दर्शित करती है और न अप्रस्तुतो के चयन मे कोई विशिष्टता ही।

इस प्रकार ऐसे उपमानो का अभाव नही है जो परम्परा से काव्य एव काव्य शास्त्र मे प्रचलित हैं जिनका उपयोग महाकवि ने किया है।

बालक कृष्ण के लोचन भी अरुण वनज की तरह हैं।[3] गोप गोसुत वल्लभ गोपाल भी घनश्याम ही हैं। उनका शरीर अनेक कामदेवो की सुन्दरता रखता है। वसन कि जल की तरह तथा लोचन अतरुण बनरुह[4] की तरह है।

महाकवि ने प्रकृति की टकसाल से नए नए उपमानो की भी सजना की है। यह मन कभी विश्राम नही मानता। जन्म-जन्मान्तरो से कमरूपी कीच मे सगने को सान लिया है। भला बिना विवेक रूपी जल क स्नान चित्त कसे निमल हो सकता ह ?[5] विषयी मन लोलुप कुत्ता की तरह भटकता फिरता है।[6] इस मन की ऐसी मूढता है कि रामभक्ति रूपी सुरसरिधार छोडकर ओस कणो की कामना करता है, जैसे मूग बाज कांच के फश मे अपने ही शरीर की परछाई जानकर चोच मारता है ठीक उसी तरह यह मूर्ख मन विषयो से उलझ-उलझ कर अपना विनाश करता है।[7] मन रूपी मत्स्य विषय रूपी जल स एक क्षण भी विलग नही होता इसलिए जन्मो तक यह जीव कष्ट भोगता है। इस मन रूपी मत्स्य को पकडने के लिए ईश्वर कृपा की डोरी हो, उनके चरण चिन्ह की कांटा हों प्रेम रूपी चारा हो तभी बन्धन सम्भव है।[8] वह कुत्ते की तरह पत्तल चाटता फिरता है।[9] हृदय सरोवर पर अज्ञान

१ गीतावली, बालकाड, ७२, नागरी प्रचारिणी सभा ८४
२ गीतावली, बालकाड, १०६
३ कृष्णगीतावली, २४
४ वही, २३
५ विनयपत्रिका, ८८
६ वही, ८९
७ वही, ९०
८ वही, १०२
९ वही, २२६

के सेवार छा गए हैं इसलिए मृगतृष्णा के पीछे यह मन पिपासा शांत करने के लिए दौड़ता है।[1]

भगवान् राम सोये हुए हैं। माता जगाने की चेष्टा कर रही हैं। पक्षीसमूह ऐसे मधुर शब्द करते हैं मानो वेद, वन्दीजन, मुनवृन्द, सूत और मागध उनके विरद का बखान कर रहे हों।[2] भगवान् जनकपुर पधारे हैं, यह शुभ समाचार सुनकर नगर-वासी अति प्रसन्न होकर सारे काम-काज भुला दिये, मानो मघा नक्षत्र की जलवृष्टि से सारे नदी नद उमगकर समुद्र की ओर जा रहे हो।[3] भगवान राम दुलहा है और माता जानकी दुलहिन, दोनो की सुषमा के लिए उत्प्रेक्षा करता है आखिर इनमे ऐसी सुन्दरता आई कैसे ? उसी का समाधान कवि करता है कि कामदेव रूपी ग्वाले ने मानो शोभा रूपी दूध दुहकर उसी से अमृत रूप दधि तैयार किया और उसी को मथ कर सारभाग कोमल नवनीत से भगवान राम और भगवती सीता की मृदुल मनोहर आकृति का निर्माण किया। ससार की अवशिष्ट सुन्दरता तो मानो मट्ठे की तरह बच गई। ये दोनो रूप की राशि हैं और मानो स्वय कामदेव इनके समक्ष लवनि और सीता के रूप के आगे "सीला" की तरह है। पूर्ण लहलहाती फसल तो भगवान स्वय हुए और खेत मे बिखरे दाने मानो कामदेव हैं।[4] श्रीकृष्ण के विरह मे गोपी, गोप, गायें-बछडे आदि ऐसे हीन, म्लीन, क्षीण हो गए हैं जैसे मांजा रोग से पीडित मछलियाँ।[5] गोपियां उद्धव के ज्ञान के खोखलेपन को अच्छी तरह जानती हैं। इसलिए अधिक कहने से क्या लाभ ? गूलर के फल को फोडने से क्या लाभ। गूलर के फल को तोड़ने से रस नही निकलता।[6] इस तरह तुलसी ने अपने कथन की पुष्टि एव प्रभावोत्पदकता के लिए नवीन-नवीन उपमाओ का भी सर्जन किया है।

२ लौकिक उपमान

शरणागतो के लिए भगवान का नाम वज्र-पिंजर के समान है।[7] लोभ भक्त के मन को आशा रूपी रस्सी से बाँधकर इस प्रकार नचा रहा है जैसे बाजीगर बन्दर के गले में रस्सी डालकर मनमाना नचाता है।[8] कुटिल करमचन्द ने बिना मोल का खटोला दिया जिसमे पुराने बाँस हैं, माप सब ठीक नही है, चौकोना होने के बजाय तिकोना है। कहार विषम हैं इसलिए पाँव सम कर नहीं चलते। कभी ऊँचे चलते हैं,

---

१ विनयपत्रिका, २४४
२ गीतावली, ३८ (बालकाड)
३ वही, ६६
४ वही, १०४
५ कृष्णगीतावली, पद ३५
६ वही, ४४
७ विनयपत्रिका, १५३
८. वही, १५८

कभी नीचे, इसलिए बहुत धक्के और झटके खाने पड़ते हैं।[1] महाराज दशरथ के चारों पुत्रों की सुन्दरता वर्णनातीत है। ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने आनन्द रूपी तिलों को पुण्य रूपी पुष्पों की सुगन्ध में बसाकर उन्हें यत्न रूपी यन्त्र में घानी भर पेरकर उनसे निकला हुआ शुद्ध प्रेममय सुयश-रूपी फुलेल तो राजा दशरथ को दिया तथा खली और मैल लोकपालों को दिया है।[2] बाल चापल्य युक्त भगवान् रामचन्द्र ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो शोभा रूपी दीवट पर रूप रूपी दीपक चमकता है और वह बालक्रीडा रूपी वायु के झकोरों से झिलमिला रहा है।[3] सर्वांग सुन्दर रामचन्द्र को भी स्त्री-पुरुष ऐसे निष्पलक देख रहे हैं जैसे बड़े दीपक को कुरंग।[4] ब्रज में एक नई खबर फैली है कि कामदेव ने सारी ब्रजभूमि देवराज इन्द्र से मिल्कियत के रूप में पाई है। बादल उस कामदेव के सदेशवाहक दूत हैं। उड़ती हुई बक-पंक्ति उन सैनिकों के शिरोवेष्टन हैं तथा बिजली सैनिक पताका है।[5] गोपियाँ श्रीकृष्ण के यश को सुनकर सदा प्रसन्न करने का विचार करती हैं। कबल को तो जितना भिगाओ, उतना ही वह भारी होता जाएगा।[6] जैसे बाघम-जुड़ानी (बिहोरा करके वश में करने वाली) जड़ी सुंघाकर बाघ को सहज ही वश कर लेती है उसी तरह कुब्जा ने चन्दन रूपी जड़ी सुंघाकर प्रियतम कृष्ण को वशीभूत कर लिया है।[7] क्षीर सागर रूपी सगुण ब्रह्म को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना तो विषपूर्ण आक दुहना ही है।[8] श्रीकृष्ण ने ज्ञान की कुल्हाड़ी देकर उद्धव को इसलिए ब्रज भेजा कि विरह की बेल कट जाय।[9]

३ काल्पनिक

तुलसी ने ऐसे-ऐसे उपमानों को भी सगृहीत किया जिसकी स्थिति इस जगत में तो हो ही नहीं सकती अन्य लोकों में उसकी सभावना कतई नहीं। ऐसे उपमान सिर्फ कवि कल्पना की उपज होते हैं। विंदुमाधव के दक्षिण भाग में लक्ष्मीजी विराजमान है। व ऐसी शोभा पा रही हैं मानो तमालतरु के निकट नील परिधान ओढ़े स्वर्णलता बैठी हो।[10] जब धनुष यज्ञ की कमनीय भूमि में दोनों भाई कौतुक से आ खड़े हुए तो लगा मानो छवि रूपी सुर सभा में दो कलित कल्पतरु सौंदर्य रूपी फल से

१ विनयपत्रिका, १८६
२ गीतावली, बालकाड, ४
३ वही, १०
४ गीतावली, बालकाड, ४१
५ कृष्णगीतावली, ३२
६ वही, ४६
७ वही, ४७
८ वही, ५१
९ वही, ५६
१० विनयपत्रिका, ६१

फलित हुए हों।[1] प्रसन्न मन के कारण भगवान् का मुख मंडल और भी प्रोद्‌भासित दीख पड़ता है, मानो चन्द्रमा ने अपना कलंक दूर कर आयोधन में राहु को निहत कर डाला हो।[2]

भगवान् की कटि में कनकमयी करधनी है। वह मानो सुवर्णवर्ण सरिस जो की माला हो जो मर्कत मणि के पर्वत के मध्य भाग से उत्पन्न हुई हो।[3] प्रभु के श्याम शरीर पर श्रमकण ऐसे सुशोभित होते हैं जैसे कोई नवीन नीरद अमृत अम्ब में डुबकी लगा निकला हो।[4] प्रियतम-वियोग के कारण सीता जी के शोकातुर नेत्रों से जल सर्वदा प्रवहमान रहता है, मानो शशि से उत्पन्न दो नील कमल सूर्य वियोगवश अमृत की बूँदें टपकाते रहते हों।[5] रावण को मारकर रणभूमि से आए हुए भगवान् राम के श्याम शरीर पर स्वेदकण एवं रुधिर बिंदु ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो किसी मरकत मणि के पर्वत शिखर पर खद्योत समूह के मध्य बीर शोभा पा रहे हों।[6] भगवान की कुंचित चिकुरावली बिथुरी हुई हैं। बीच-बीच में फूलों के गुच्छे लगे हैं। यह दृश्य ऐसा लगता है मानो मणियों के साथ बाल भुजगों का समुदाय चन्द्रमा के पास आया हो और उन्हें देखकर भयभीत चन्द्रमा ने उनसे बचने के लिए दो मनोहर भौंरों को फुसलाकर छोड़ दिया हो।[7] भगवान् के वक्षस्थल पर मुक्तामाल एवं तुलसी-माल है। यह दृश्य ऐसा लगता हो मानो हंसों की पंक्ति के सहित यमुना इन्द्रनील-मणि के शिखर को स्पर्श कर नीचे की ओर बहती हो।[8] भगवान् के मुखमंडल पर सघन चिक्कन कुटिल चिकुर इस तरह विलुलित हो रहे हैं तथा रघुनाथ जी के हाथों से सवाले हैं मानो सर्प शिशुओं का समूह चंद्रमा से अमृत के लिए झगड़ रहा हो और उसे दो बड़े-बड़े सर्प समझाते हैं। वक्षस्थल पर गजमुक्ताओं की विशाल माला लटक रही है मानो नवीननीरद सर्गों पर दिनकर की कला देखकर उसे नक्षत्रों ने घेर लिया हो।[9] स्वच्छ पीताम्बर ऐसा लगता है जैसे मरकत मणि के पर्वत पर बहुत सी बिजलियाँ अपनी चंचलता छोड़कर छाई हुई हों।[10] और गजमुक्ताहार शोभायमान है मानो इन्द्रधनुष और नक्षत्रगण के बीच साक्षात् सूर्यदेव विराजमान हों।[11] सुन्दर कानों

१ गीतावली, बालकांड, ७४
२ वही, ६५
३. वही, १०८
४. वही, अरण्यकांड, २
५ वही, सुन्दरकांड, १७
६ गीतावली, लंकाकांड, १६
७ वही, उत्तरकांड, ३
८ गीतावली, उत्तरकांड, ४
९. वही, ५
१० वही, ६
११ वही, ८

मे मनोहर कुण्डलो की जोडी है। मे ऐसे लगते हैं मानो विधि ने सुन्दर चन्द्रमा के समीप सुवर्ण की मछलियो के सहित मरकत मणि की सीपियो को रचकर बनाया हो।[1] भगवान् के विशाल भाल पर बाँकी भृकुटियाँ हैं और उनके बीच मे तिलक रेखा शोभती है। मानो कामदेव ने अन्धकार को देखकर मरकत मणि के धनुष पर दो सुवर्णमय बाण चढाए हो। सुन्दर पलकयुक्त नेत्रो मे दो श्याम रग के तारे तथा रक्त श्वेतवर्ण कोए हैं—मानो पद्मकोष मे बद्ध दो भ्रमर बिन्धूक पुष्प की शय्या बनाकर उस पर शयन कर रहे हो।[2] श्रीकृष्ण की नीद बोभिल अलसायी आँखे ऐसी लगती हैं मानो चन्द्रमडल पर ब्रह्मा ने कुछ ललाई लिए हुए दो खजनो को सजाकर बना दिया हो। घुँघराली अलकें तो मानो कामदेव के फदे हैं।[3]

इस तरह महाकवि ने ऐसे ऐसे उपमानो को प्रस्तुत किया है कि जो सभव हो नही सकते। सोने के धनुष बन सकते हैं लेकिन मरकत मणि का पवत हो नही सकता।

४ पौराणिक

मन-क्रम-वचन से यह तुलसी आपकी शरण मे आया है। उसके भय रूपी समुद्र को सोखने के लिये आप अगस्त्य ऋषि के समान हैं।[4] मत्रजप के बाद प्रेमरूपी जल से तर्पण करना चाहिए तथा सन्देह रूपी समिध का क्षमा रूपी अनल मे हवन करना चाहिए।[5] पूजा की शास्त्रोक्त पद्धति वर्णित कर तुलसीदास तान्त्रिको के वशीकरण, मारण एव आकर्षण की भी चर्चा करते हैं। इसलिए यहाँ भी पापो का उच्चाटन, मन का वशीकरण, अहकार और काम का मारण एव ज्ञानरूपी सुख-सम्पत्ति का आकर्षण करना चाहिए।[6] पुण्य करने पर भी पापो का नाश नही होता और रक्तबीज की भाँति बढते ही जा रहे हैं।[7] जिस लीला से आपने उल्लू और कुत्ते का फैसला कर दिया था उसी तरह कलियुग से यह भी कह दीजिए कि तुलसी मेरा है।[8] इस उल्लू और गीध के झगडे तथा कुत्ते और तीर्थसिद्ध नामक ब्राह्मण की कथा पुराणो मे है जिसके आधार पर यह दृष्टान्त दिया गया है। जो भगवान् रामचद्र के प्यारे नहीं हो, उन्हे कोटि वैरी के समान त्याग कर देना चाहिए। जैसे

---

१ गीतावली उत्तरकाड ११
२ वही, १२
३ कृष्णगीतावली, २२
४ विनयपत्रिका, ५३
५ वही, १०८
६ वही, १०८
७ वही, १२८
८ वही, १४६

प्रह्लाद ने पिता हिरण्यकश्यपु को, विभीषण ने अपने भाई रावण को, राजा वलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य को तथा ब्रजांगनाओ ने अपने-अपने पतियो को छोड दिया था।[1] जैसे रावण ने विभीषण को मारा था उसी तरह मुझे भी महामोह मार रहा है।[2]

भगवान् जिस पर प्रसन्न हो गये वह स्वर्ग चला गया। गनिका, गीध, बधिक वाल्मीकि, गजराज कृकलास, राजा नृग, महर्षि विदुर, अर्जुन, अजामिल आदि हैं।[3] इस तरह पौराणिक उपाख्यानो की चर्चा तो विनयपत्रिका मे अत्यधिक हुई है। विश्वामित्र के आश्रम मे हाथो मे धनुषबाण लिये रामचद्र एव लक्ष्मण ऐसे सुशोभित होते हैं मानो यज्ञ के रोग-रूपी राक्षसो का विनाश करने के लिए सूर्य नारायण ने अग्निदेव के साथ अपने दोनो पुत्रो अश्विनीकुमारो को भेजा है।[4] इस उत्प्रेक्षा का आधार वाल्मीकि रामायण है। (१+४८ ०—३)। धातुओं से रगी गिरि-श्रेणियों पर मधुर घोर करते हुए मेघ ऐसे लगते हैं मानो देवो एव मुनियों से वेष्ठित आदि कमल हों जिससे ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई है। नभमडल मे बकपक्ति-शिखर को स्पर्श कर काली घटाओ से मिलती है मानो आदि वराह सागर मे क्रीडा कर दाँतो पर पृथ्वी धारण कर उससे बाहर निकले हो।[5] भगवान् के नेत्र कोकनद के सदृश विशाल हैं, मस्तक पर भृकुटि तथा तिलक और कानो मे श्रेष्ठ कुडलो की जोडी झूलती है मानो महादेव ने कामदेव को मार उसकी ध्वजा के दो मकरों को सुन्दर जानकर चन्द्रमा को दिया है और वही उसके दोनो ओर शोभायमान हो।[6] रामचरण तीरथराज होकर विराजमान है। श्री शकर के हृदय की भक्ति रूप भूमि पर प्रेममय अक्षयवट विराजमान हैं।[7] इस तरह न मालूम कितने पौराणिक, पुस्तकीय, परम्परा से प्रचलित आख्यानों को अपने अप्रस्तुत चित्रण, कथन समर्थन के लिए प्रयुक्त किये हैं।

५ शास्त्रीय उपमान

लडकपन अज्ञानता में बीता। जवानी रूपी ज्वर चढ़ने पर स्त्री रूपी कुपथ्य कर लिया और फिर जब सारे शरीर मे काम रूपी वायु भरा तो सन्निपात हो गया।[8] विनयपत्रिका के २०३वें पद मे भगवान के चरणारविंद के भजन की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की विधि बतलाई गई है। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण ऐसे प्रतीत होते हैं मानों सूर्यदेव के उत्तरायण मे गमन के समय पर चैत्र और वैसाख दोनों मासों को

१. विनयपत्रिका, १७६
२ विनयपत्रिका, १८१
३ वही, २४०
४ गीतावली, बालकाण्ड, ५१
५ वही, सुन्दरकाण्ड, ५०
६ वही, उत्तरकाण्ड, ७
७ वही १५
८. विनयपत्रिका, ८३

मूर्तियाँ विराजमान हो।[1] लका मे हनुमान की विचारणा है कि रावणरूप पारद को अन्य शूरवीर रूप रसो के सहित फूँककर लका रूप खरल मे घोटता और देवराज इन्द्र के लिए पुटपाक विधि से औषधि तैयार करता।[2] भगवान् के नेत्र ऐसे मालूम पडते हैं मानो मेष राशि की पूर्णिमा के चन्द्रमा विधाता ने दो कमल बना दिए हो।[3] मेष राशि का पूर्ण चन्द्र अधिक निर्मल होता है और इसका योग शरद्-पूर्णिमा को रहता है। जब से कृष्ण भी व्रज छोडकर गए है तभी से बिछोह रूपी वृष राशि पाकर विरह रूपी सूर्य एकरस उदित हो रहा है।[4] सूर्य मेष आदि बारह राशियो के तपते हैं। सोर मास के अनुसार वैशाख मे मेष राशि पर, ज्येष्ठ मे वृष राशि पर, आषाढ मे मिथुन राशि पर, श्रावण मे कर्कराशि पर, भादो मे सिंह राशि पर, क्वार में कन्या राशि पर, कातिक मे तुला राशि पर, अगहन मे वृश्चिक राशि पर, पूस मे धन राशि पर, माघ मे मकर राशि पर, फाल्गुन मे कुभ राशि पर और चैत मे मीन राशि पर सूर्य रहते हैं। वृष राशि के सूर्य अत्यन्त प्रचण्ड रहते हैं इसलिए इसकी उपमा दी गई है।

कही-कहीं महाकवि ने अपने ज्योतिष एव शास्त्रीय ज्ञान का समन्वय कर अप्रस्तुतो की झडी लगाई है। विशाल भाल पर अति सुन्दर श्रेष्ठ लटकन और केशावलि सुशोभित है। वे ऐसे जान पडते हैं मानो अन्धकार समूह दोनो गुरुओ (वृहस्पति, शुक्र) शनि तथा मगल को आगे कर चन्द्रमा से मिलने आये हो।[5] लटकन मे विभिन्न रग की मणियाँ लटकी रहती हैं। नक्षत्रविज्ञान के अनुसार भी बहुत से ग्रह-उपग्रह हैं जिनमे वृहस्पति, शुक्र, शनि और मगल प्रसिद्ध हैं। इनमे रग क्रमश स्वर्णवर्ण, धवलवर्ण, नीलवर्ण एव रक्तवर्ण माने गए हैं। इन लटकनो मे पोखराज, हीरा, नीलम, माणिक या लाल गुथे हुए हैं। बिखरे हुए केश तम-समूह हैं। तम-समूह चन्द्रमा से मिलने क्यो आए हैं क्योंकि अन्धकार और शशिकिरणो से वैर ही है, पटती नही है लेकिन शायद चन्द्रमा इनके महानुभावो के कारण सकोच से मेल-मिलाप कर ले। वृहस्पति चन्द्रमा के या सारे देवताओ के गुरु माने गये हैं। दैत्यो के गुरु शुक्राचार्य भी चन्द्रमा के उपकारी एव आदरणीय हैं लेकिन जब एक बार चन्द्रमा ने गुरु-पत्नि के साथ छल किया तो उस समय दानव और दानव-गुरु शुक्राचार्य ने उनकी सहायता की थी। यह कथा भागवत ९।१४ मे वर्णित है। शनि सूर्य भगवान् के पुत्र हैं। सूर्य भगवान् चन्द्र के मित्र या भाई हैं क्योंकि एक ही स्थान समुद्र से दोनो की उत्पत्ति हुई है इसलिए शनि के साथ भी चन्द्र का सबध अच्छा ही है। मगल भी चन्द्रमा

---

१ गीतावली, बालकांड, ४८
२ वही, सुन्दरकांड, १३
३ वही, उत्तरकांड, ६
४ कृष्णगीतावली, २६
५ गीतावली, बालकांड, २३

/

के मित्र माने गये हैं और इसीलिए सबको साथ लेकर अधकार चन्द्रमा के पास आया है कि आज मेल-मिलाप हो जाए। इसलिए इस उत्प्रेक्षा मे नखतला के का ज्ञान, भूगोल, ज्योतिष का अध्ययन, जौहरी की दृष्टि एव पुराणो का स्वाध्याय एक साथ ही सिमट गया है।

निष्कर्ष

ऊपर हमने तनिक विस्तार से तुलसी के अलकार विधान की चर्चा की है। गीतावली मे कवि अपने आराध्य की सुन्दरता देख अघाता नहीं इसलिए उन्होंने भाँति-भाँति की उत्प्रेक्षाओ, रूपको की योजना की है। उपमाओं के द्वारा उनके सौन्दर्य को आयत्त करने की चेष्टा की है। विनय के पदों मे उसका भक्ति-विह्वल हृदय एकमात्र राम-चरण की आशा करता हुआ पूरी भक्ति की आकाक्षा करता है। इसलिए वह विभिन्न उदाहरणो, दृष्टान्तो एव उपमाओ के माध्यम से ईश्वर को भी स्मरण दिलाता चलता है कि सबका आपने तो निस्तार किया, अब अकेला तुलसी ही क्यों बचा रहेगा। यह कहना ठीक ही है कि तुलसी के अलकार पैबन्द की तरह चिपकाये नहीं लगते और न दर्पण के मोरचे की तरह ही प्रतीत होते हैं वरन् सोने की अगूठी मे हीरे के नग की तरह सुन्दर बन पडे हैं। इन अलकारों के कारण न तो ये गीतिकाव्य जौहरी की दूकान की तरह मालूम पडते और न ये अलकार गीतों की सघुकाया के लिए कहीं भोर ही बन गये हैं वरन् कर्ण के कवच-कुण्डल की तरह उसके अस्तित्व से अभिन्न हो गये हैं।

भाषा

भाषा ही किसी कवि की वह दिव्य विभूति है जिसके द्वारा वह अपने भावों को, अपनी अनुभूतियो को प्रेषणीय बना पाता है। महाकाव्य में भाषा कथा निर्वाह, अलकरण आदि के लिए वाहनमात्र का कार्य सपादित करती है लेकिन गीतों में कवि का अन्तरतम ही भाषा के माध्यम से सहस्र-सहस्र स्रोतो मे बह निकलता है। भावनाओ के उच्छल उद्दाम वेग को बाँधने के लिए परमावश्यक है कि कवि को भाषा पर एकाधिकार हो। भाषा उसकी वश्या हो।

गोस्वामी जी को भाषा पर कैसा आधिपत्य है, इसका विश्लेषण विवेचनोपरात स्वत हो जाएगा। गोस्वामी जी ने अपने युग की प्रचलित दोनो काव्य भाषाओं पर समान प्रभुत्व दर्शित किया है। ये दो भाषाएँ हैं अवधी और व्रज।

(१) अवधी—रचना वर्ग में 'रामचरितमानस", रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वतीमगल, जानकीमगल तथा रामाज्ञा प्रश्न रखे जा सकते हैं।

(२) व्रजभाषा—रचना वर्ग मे श्रीकृष्णगीतावली, कवितावली, विनयपत्रिका गीतावली, दोहावली तथा वैराग्य सदीपनी आती हैं।[1]

---

१ तुलसीदास की भाषा। डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, पृ० ३८७

कवि ने महाकाव्य और खण्डकाव्य मे अपने अवधवासी अवधविहारी चरितनायक को उपस्थित करने के लिए अवधी भाषा माध्यम के रूप मे ग्रहण किया लेकिन गीतिकाव्य के लिए शायद उन्हें विवश होकर ही उस भाषा को ठुकराना पडा जिसके कण-कण से उनके इष्ट का परिचय था।

वस्तुत जो ब्रजभाषा शताब्दियो से अपनी रस-पेशलता के लिए ख्यात है, जिसमें श्रीकृष्ण की मनमोहन क्रीडाओं से, गोपबालाओ एव राधा की ललित मनुहारो से सातद्रता समाविष्ट हो गई है, जिसके एक एक पद मे काव्य और सगीत का गठबन्धन है, उसी ब्रजभाषा से कतराकर निकल जाना गोस्वामी जी के लिए भी सभव नहीं हो सका । इसलिए गीतिकाव्यो मे तुलसी ने ब्रजभाषा के शासन को शिरसावहन किया है।

ब्रजभाषा की इन रचनाओ के भी दो वर्ग हैं —

१ पश्चिमी ब्रजभाषा

२ *पूर्वी ब्रजभाषा*

पश्चिमी ब्रजभाषा की ये विशेषताएँ हैं। पूर्वकालिक कृदत के "य" सहित रूप जैसे चल्यो या चल्यो, "व" लगाकर क्रियात्मक सज्ञा बनाना जैसे चेलिबो, गे भविष्य जैसे "चलैगो, सहायक क्रिया के भूतकाल "हो" आदिरूप, उत्तमपुरुष, एकवचन सर्वनाम "हो" तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम का को रूप पश्चिमी ब्रजभाषा प्रदेश की कुछ विशेषताएँ हैं।[1]

उदाहरण—

तुलसी जो फिरिबो न बने प्रभु। तें हौं आयसु पावौं[2]

महाराज राम पहँ जाऊँगो।[3]

हौं जड़जीव ईस रघुराया। तुम मयापति हौं बस माया।[4]

गीतावली और विनयपत्रिका प्रथम वर्ग की रचनाएँ हैं। दूसरे वर्ग का प्रतिनिधित्व श्रीकृष्णगीतावली करती है।

पूर्वी भूमिभाग मे प्रचलित रूपों की ये व्याकरणिक विशेषताएँ हैं —

"पूवकालिक कृदन्त मे "य" का प्रयोग न होना—जैसे चलो, न लगाकर क्रियात्मक सज्ञा बनाना जैसे "चलना", हे भविष्य जैसे चलिहै, सहायक क्रिया के भूतकाल में "हतो" आदि रूप उत्तमपुरुष, एकवचन सर्वनाम "मैं" तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम "कौन"।[5]

---

१ ब्रजभाषा व्याकरण डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १६

२ गी० २, ७३

३ गी० ५ ३०

४ वि० १७७

५ ब्रजभाषा व्याकरण डा० धीरेन्द्र वर्मा

जैसे ठातो ग्वालि जानि पठये अलि, कह्यो है पछोरन छूछो।[1]

कहिबे कछू कछू कहि जैहै। रहौ आलि अरगानी।[2]

हुतो न सांचो सनेह मिट्यो मन को संदेह

हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई।[3]

लेकिन पूर्वी-पश्चिमी ब्रजभाषा का भेद ऐसा कुछ नहीं जो उनकी भाषा-शक्ति के लिए बहुत आवश्यक है। सम्पूर्ण गीतिकाव्य में तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग दीखता है।

१ संस्कृत-गर्भ भाषा

२ तत्समप्रधान भाषा

३ सामान्य-बोलचाल की भाषा

(१) देव मोहतम-तरणि, हर, रुद्र, शंकरशरण
हरण-भयशोक, लोकाभिरामं
बाल-शशि-भाल, सु विशाल लोचन-कमल
काम शतकोटि लावण्यधाम ॥
कंबु, कुन्देन्दु-कर्पूर-विग्रह रुचिर,
तरुण-रवि-कोटि तनु तेज भ्राजै
भस्म सर्वाङ्ग, अर्द्धाङ्ग शैलात्मजा
व्याल-नृकपाल-माला विराजै।[4]

(२) राजतराम काम सतसुंदर
रिपु रन जीति अनुज सग सोभित, फेरत चाप विसिख बनरुहकर
स्याम सरीर रुचिर श्रमसीकर, सोनित कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत निकर हरिहित गन भ्राजत मरकत सैल सिखर पर।[5]

(३) छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि के तू दे री मैया।
"लै कन्हैया" "सो कब ?" अबहि तात
सिगरिये हौं ही खैहौं, बलदाऊ को न दैहौं।
सो क्यों भटू तेरो कहा कहि इत उत जात।[6]

इस प्रकार लगता है कि सरल से सरल भाषा और कठिन-से कठिन भाषा का प्रयोग तुलसी ने किया है। गोस्वामी जी का शब्दज्ञान विस्तृत है और इतने

---

१ श्रीकृष्ण०, ४३
२ ,, ४७
३ ,, ३६
४. वि०, १०
५ गीतावली, ६, २६
६ श्री कृष्णगीतावली, २

वैविध्य भरे शब्दों का प्रयोग हिन्दी भाषा मे किसी ने नही किया है। तुलसीदास की शब्दावली मे तत्सम, अर्द्ध तत्सम, तद्भव, देशज, देशी भाषाओ एव विदेशी भाषाओं के शब्द प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं।

(१) तत्सम—जो सस्कृत शब्द हैं और जो अपने असली रूप मे हिन्दी मे प्रचलित हैं।[1] ऐसे शब्दो की सख्या इतनी अधिक है कि इसका उदाहरण देना अनावश्यक है। ऐसे शब्दो की सख्या विनयपत्रिका मे सर्वाधिक है।

जैसे ५१ वें पद के—रघुनाथ, तम, तरणि, तेजधाम, नीला, नव, वारिधर, पति, रत्न, मुकुट, मौलि, उद्योत, कुण्डल, भाल, तिलक, अम्भोज, लोचन, वक्त, आलोक, माररिपु, हृदय, मानस, मराल, चारु, कपोल, द्विज, व्रज, अधर, मधुर, हास, सुमन, विचित्र, मृदुल, उर आमोद, मत्त, मधुकर, निकर, भुजदण्ड, कोदड, कनक, तरु, तमाल आदि।

(२) अर्द्धतत्सम—उन सस्कृत शब्दो को कहते हैं जो प्राकृत भाषा बोलने वालो के उच्चरण से बिगडते बिगडते कुछ और ही रूप के हो गए हैं।[2] उदाहरण कुछ इस प्रकार हैं—

अगिन—बुझै न काम अगिन कहूँ तुलसी वहु वासना घृत से।[3]

राय—सुमिरु सनेह सो तू राम राय को।[4]

दई—पतित पावन हित आरत अनाथनि को
निराधार को आधार दीनबन्धु दई।[5]

दच्छ—साप बस मुनि वधू मुक्त कृत,
विप्रहित जय-रच्छन्न-दच्छ पच्छ कर्ता।[6]

(३) तद्भव—वे शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिन्दी भाषा मे आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा सस्कृत से निकले हैं।[7]

आली अनुचित उतरु न दीजै[8]
ललि, पहिचान प्रेम की परमिति उतरु फेरि नहिं दीजै।[9]
तुलसीदास पराए प्रीतम, तूहि प्रिय हाथ बिकानी।

तत्सम शब्दो के बाद ऐसे शब्दो की सख्या है।

---

१ हिन्दी व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृ० ३१
२ ,,
३. ,,
४ विनयपत्रिका, ६६
५ विनयपत्रिका, २५२
६ वही, ५०
७ हिन्दी व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृ० ३१६
८ श्रीकृष्णगीतावली, ४५
९ वही, ४६

(४) देशज—वे शब्द हैं जो किसी संस्कृत या प्राकृत मूल से निकले हुए नहीं जान पड़ते और जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं लगता।[1]

डाली—डाली ग्वालि जानि पठए, अलि, कहेयो है पछोरन छूछो।[2]

छरी—है निर्गुण सारी बारिक, बलि, छरी करो, मह जोही।[3]

छैंया—मथि मथि पियो वारि चारिक मे मूख न जाति अघाति न छैंया।[4]

खोरि—खेलत अवध खोरि,[5]

छगन—कहत मल्हार लाइ उर छिन छिन छगन छबील छोटे छैंया।[6]

खोंची—खायो खोंची मागि मैं तेरो नाम लियो रे।[7]

खेहर—मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सोनर खेहर खांड।[8]

देशी भाषाओं के कुछ शब्द भी इन गीति ग्रंथो में आ गए हैं।

राजस्थानी

परम साधु जियजानि विभीषन लंकापुरी तिलक सार्यो[9]

मूरति कृपाल मंजुमाल दे बोलत भई, पूजो मनकामना मावतोवरु, वरिके[10]

गुजराती

सुनि सग कहत अब ! मोंगी रहि सुमझि प्रेम पथ न्यारो।[11]

बंगला

मधुकर कहहु कहन जो पारो।[12]

बोलियों मे

बुंदेली

तो को मो से अति घन मो को सवे तु[13]

लखन लाल कृपाल, निपटहि डारिबी न बिगारि[14]

---

१ कृष्णगीतावली, ४७

२ हिन्दी व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृ० ३३

३ श्रीकृष्णगीतावली, ४३

४ वही, ४१

५ वही, १९

६ गीतावली, १, ४१

७ वही, १, १७

८ विनयपत्रिका

९ गीतावली ७, ३८

१० वही, १, ७०

११. वही, २, ६६

१२ श्रीकृष्णगीतावली, ३४

१३ विनयपत्रिका १५०

१४ गीतावली, ७, २१

मेरिश्रो सुधि ध्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ[1]
तुलसी सो तिहूँ भ्रन गाइबी नद भुवन सनमानी ।[2]

भोजपुरी

बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।[3]
समहि बिहस करि कुटिल करमचन्द मन्द मोल बिनुढोला रे ।[4]
मेरे बिसेषि गति रावरी तुलसी जाके सकल अमगल भाग ।[5]
जेहि निसि सकल जीव सूर्ताह तव कृपापात्र जन जागे ।[6]

खड़ी बोली

सुन मैया तेरी सौं करों याकी टेव लरन की सकुचबेचि सी खाई[7]
होहिं बिबेक बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे ।[8]
चिंता यह मोहि श्रपारा । अप जस नहिं होय तुम्हारा ।[9]
देखो रघुपति छवि अतुलित अति ।[10]

विदेशी भाषाओं के शब्द

तुलसीदास ने अरवी-फारसी के प्रचलित शब्दों को अपनी कृतियो में स्थान देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है। यवनों की तरह वे इन शब्दों को अस्पृष्ट नहीं मानते। अगर ऐसे हो तो राम-कथा मे समविष्ठ होकर उनकी "कलुषाई" मिट गई है। अरबी और फारसी शब्दों के प्राय सौ शब्दो मे कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

अरबी

श्रीकृष्ण गीतावली—गरीब (पद ६१), दगा (२४), वायनों (१०), बारीक (४१), बैरख (६२), साहिब (३५), आदि तकीब (३२)।

गीतावली—अबीर (१ ८१), गनी (५, ३६), दुनी (१, ४), बजाय (१, ६), मनी (५, ३६), सई (५, ३७), खामी (१, ८६), सूरति (२, १६) इत्यादि।

---

१ विनयपत्रिका, ४१
२. श्रीकृष्णगीतावली, ४८
३ विनयपत्रिका, १८६
४ वही, १८६
५. गीतावली, १,१२
६ विनयपत्रिका, २११
७ श्रीकृष्णगीतावली, ८
८ गीतावली, ७,१२
९ विनयपत्रिका, १२५
१० गीतावली, ७,१७

विनयपत्रिका—गनी (६६), कलई (१३६), सरम (१३१), कायर (१३५)

फारसी

श्रीकृष्णगीतावली—चारो (३४), चालाकी (४३), निवाजी (६१), राजी (६१)।

गीतावली—दरगजा (१, १), प्रदेसो (२, ८७), गच (६, १६), जहाज (४, २६), जरकसी (१ ९२) तरकसी (१, ४१), निसान (१, २), निहालु (१, ४०), पामा (२, ३२) पोच (१, ८६), सक (५, २६), सोर (५, २०) सीपर (६, ५), सजा (६, ३०) आदि।

विनयपत्रिका—कूच (१५६), कहरु (२५०), खास, सीस (२६०) खरगोस (१५६), गच (६०), तकिया (३३), दाग (७०) दाम (७१) दादि (१३६), दगाबाज (२६४) निवाजे (२४६), नीके (७६), निहाल (८०) बैरक (१४५), मिसकीन (२६२), सरम (२४६) सहूम (२५०), सिरताज (६७) सतरंज (२५६) आदि।

ठेठ देहाती शब्द—तुलसीदास ने साधारण ग्रामीण शब्दों को, जो शिष्ट भाषा में प्राय वर्जित-से हैं अपने गीतों में बडी कुशलता से पिरो दिया है। धूल में पडे फूल की तरह ये शब्द तुलसी जैसे पुजारी के द्वारा उठाए जाकर पूज्य के चरणों में शोभित हो गए हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे।

१ झाडबाड—जीहहु न जाप्यो नाम बक्यो झाडबाड में[1]

२ गालगूल—हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत[2]

३ फोकट—जोरे नये नाते नेह फोकट फीके।[3]

मिश्रित शब्द—तुलसीदास ने दो शब्दों को मिलाकर एक तीसरा शब्द बना लिया है। इस सक्षेपीकरण के कारण अमेरिका वाले प्रशंसित होते रहे हैं। जैसे किसी मोटर में होटल चलता हो तो वे मोटर और होटल मिलाकर मोटेल कह देंगे। इसी तरह हिंदी में धूल और धूप मिलाकर धूलप बना लिया गया है। तुलसी ने ऐसा प्रयोग बहुत पहले किया था। जैसे सलेल[4]—वैसा तेल जिसमें सल्ली की मात्रा अधिक हो। सलि+तेल को मिलाकर सलेल बना लिया।

एक ओर तुलसीदास ने बहुत से योगरूढ का प्रयोग कर अपने शब्द-कोष तथा शास्त्र ज्ञान का परिचय दिया है तो दूसरी ओर ग्रामीण बोलचाल के शब्दों का प्रयोग कर भाषा "बहतानीर" वाला स्वरूप को भी उपेक्षित नहीं किया है। पुन अनेकानेक

१ वि०, २६१

२ वि०, १३०

३ वि०, १०६

४ गुम सनेह सब दियो दसरथहि खरि सलेल दिरवनी, गी० १,४

क्रियाओं एवं कर्तृवाचक संज्ञाओं का निर्माण कर अपनी शब्द निर्माण-प्रतिभा का परिचय दिया है। इन गीति ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों की सूची उन्हें शब्द, शब्द की आत्मा, उसकी प्रवृत्ति, उसकी सीमा, उसका विस्तार, उसकी क्षमता सब अपूर्व ज्ञान की परिचारिका है।

शब्द-शक्तियाँ

प्रत्येक शब्द से जो अर्थ निकलता है वह अर्थबोध करानेवाली शब्दशक्ति है। शब्द और अर्थ का बड़ा विलक्षण संबंध है, जो लोक व्यवहार से संकेतग्रहण होने से उद्बुद्ध हो जाता है। इसके तीन भेद हैं—(क) अभिधा (ख) लक्षणा और (ग) व्यंजना।

जिसके द्वारा काव्य में शब्दार्थ का बोध-व्यापार होता है उसे शब्द शक्ति कहते हैं। ये अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीन प्रकार की हैं।

(१) साक्षात्—संकेतित अर्थ की बोधिका, शब्द की पहली शक्ति का नाम अभिधा है।[1] अभिधा शक्ति द्वारा जिन वाचक शब्दों का अर्थबोध होता है, वे प्रधानत तीन प्रकार के होते हैं। १-रूढ़, २ यौगिक और ३-योगरूढ़। किन्तु इन तीन प्रकार के वाचक शब्दों की संख्या का प्रयोग किसी भी कवि काव्य में सर्वाधिक हुआ है। इसका उदाहरण देना व्यर्थ ही है।

(२) लक्षणाशक्ति उसे कहते हैं, जिसके द्वारा मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन को लेकर मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ लक्षित हों।[2] इसी आधार पर लक्षक लाक्षणिक शब्द तथा लक्ष्यार्थ की कल्पना की गई है। वैसे तो लक्षणा के अनेकों भेद हैं लेकिन उसके दो मुख्य भेद हैं रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा। रूढ़ि लक्षणा में रूढ़ि या परम्परा के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाता है। जहाँ किसी उद्देश्य से ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिसमें मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित हो वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। प्रयोजनवती लक्षणा के भी भेद होते हैं—गौणी और शुद्धा। जहाँ सादृश्य-सम्बन्ध के आधार पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाय वहाँ गौणी प्रयोजनवती लक्षणा होती है और जहाँ सादृश्येतर सम्बन्ध के द्वारा लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाय वहाँ, शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा हुआ करती है। प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा के भी दो भेद हैं (१) उपादान लक्षणा (२) लक्षण लक्षणा। जहाँ मुख्यार्थ का सर्वथा परित्याग न होकर कुछ अन्य अर्थ मिलाकर लक्ष्यार्थ का बोध हो वहाँ उपादान लक्षणा होती है और जहाँ मुख्यार्थ बिलकुल नया अर्थ दे वहाँ लक्षण-लक्षणा हुआ करती है। इनका एक एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

---

१ तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा। विश्वनाथ साहित्यदर्पण, २, १०

२. मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो यया न्योऽर्थः प्रतीयते
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, २, १४

१ रूढ़ि लक्षणा – मुँह लावे मूड़हि चढ़ी, अन्तहु अहिरिनि तू सूधी [1]
२ गौणी लक्षणा – नवकंज लोचन कंजमुख कर कंजपद कंजारुणम् ।[2]
३ उपादान लक्षणा—तुलसीदास रनिवास रहस बस, भयो सबको मन भावो ।[3]
४ लक्षण-लक्षणा—तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सियारे
तहँ तुलसी के कौन को, काको तकिया रे ।[4]

व्यंजना

अभिधा और लक्षणा के अपना-अपना कार्य समाप्त कर चुकने पर जिस अन्य शक्ति के सहारे अभिप्रेत अर्थ का बोध होता है, उसी को काव्यशास्त्रीय भाषा में व्यंजना कहा गया है।[5] इसके मुख्य दो भेद हैं (१) शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है इसलिए हम आर्थी व्यंजना के एक उदाहरण से संतोष कर रहे हैं।

ससि तें सीतल मोको लागे माई री तरनि।
याके उँए बरति अधिक अंग अंग दव,
वाके उए मिटति रजनि जनित तरनि।[6]

श्रीकृष्ण के वियोग में गोपिका को चन्द्रमा से अधिक शीतल सूर्य प्रतीत होता है। रात जो प्रेमियों के मिलन का समय है—वियोग में दाहक प्रतीत होती है किन्तु सूर्य उदित होते ही जलन समाप्त हो जाती है।

कहने वाली नायिका स्वयं है। चन्द्रमा में तपन और सूर्य में ठण्डक मुख्यार्थ की बाधा है। व्यंग्यार्थ यह कि नायिका के विरह में ये उद्दीपक वस्तुएँ कष्टदायिनी हैं, असह्य हैं। वस्तु वैशिष्ट्ययोत्पन्न लक्ष्य सम्भवा आर्थी व्यंजना का यह उदाहरण हुआ।

इस संक्षिप्त प्रकरण में तुलसी की शब्द शक्तियों का अधिक उदाहरण देना सम्भव नहीं। लेकिन स्थाली पुलक न्याय के आधार पर हम इतना ही कहकर संतोष करना चाह रहे हैं कि तुलसी का शब्द शक्तियों पर भी पूर्ण अधिकार था और उनके गीतिकाव्य में इसके सारे भेदोपभेद मिल सकते हैं।

---

१ कृ० ८
२ वि० ४५
३ गी०
४ वि० ३३
५ विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥
विश्वनाथ साहित्यदर्पण २, २४
६ श्रीकृष्णगीतावली, १०

गुण

जो रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अचल है वे गुण कहे जाते हैं।[1] जैसे वीर से वीरता हटाकर कोई वीर नहीं कहला सकता है उसी प्रकार काव्य से गुण हटाकर काव्य की सज्ञा से कोई रचना भूषित नहीं हो सकती। गुण मुख्यतया तीन हैं। माधुर्य, (२) ओज, (३) प्रसाद।

सम्पूर्ण गीति कृतियो मे दो ही गुणो की प्रधानता है। वह है माधुर्य और प्रसाद। गीतावली मे तुलसी को अपने आराध्य की सुषमा और माधुरी का वर्णन करना है, इसलिए नैसर्गिक रूप से माधुर्य गुण टपका पडता है। इसके बाद प्रसाद गुण है। विनयपत्रिका, श्रीकृष्णगीतावली तथा गीतावली मे प्रसाद गुण प्रचुरता से मिलता है। विनय के दार्शनिक निगूढ तात्विक पदो में प्रसाद गुण का अभाव नहीं है। ओज गुण गीतावली के दो-एक स्थलो को छोडकर दृष्टिगोचर नहीं होता।[2]

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा के सौंदर्य मे सहायक होती हैं। चरितकाव्य मे मुहावरे और लोकोक्तियो के प्रयोग की जितनी छूट रहती है तथा कथोपकथन मे पात्रो के द्वारा प्रयुक्त भाषा की विद्वता प्रदर्शित करने के लिये उनकी अनिवार्यता रहती है, वैसी बात गीतिकाव्य मे नही होती लेकिन गीतो मे उसको उपस्थित कर भावो मे रोडा न अटकने देना बडे कौशल का प्रमाण है। कुछ मुहावरे और लोकोक्तियों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

श्रीकृष्णगीतावली

१ मैया इन्हहिं बानि पर गृह की, नाना जुगति बनावहिं ४
२ सहित देख्यो, तुम्हयो अब नाकहि आई ७
३ सुनि मैया तेरी सौं करो याकी टेव लरन की, सकुचनेंचि सी लाई ८
४ मुँह लाए मूडहि चढी अनहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई। ८
५ ग्वालिवचन सुनि कहत जसोमति "भलो न भूमि पर बादर छीवो।" ६
६ आयनो दियो घर नीके १०
७ नाहि राम रसिक रस चाख्यो, तातें डेल सो डारो ३४
८ मेरे जान और कछु न मन गुनिए ३६
६ ज्ञान विराग काल कृत करतब हमरेहि सिर धरिवे हो ३६
१० तुलसी कान्ह विरह नित नव जर जरि जीवन भरिवे हो ३६
११ ढाली ग्वालि जानि पठए, अलि कह्यो है पछोरन न छूमो ४३
१२ धान को गाव पयार ते जानिय ज्ञान विषय मन मोरे ४४

---

[1] "रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादय इवात्मन उत्कर्षहेतव ते स्यु अचलस्थितयो गुणा।" मम्मट काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, ८७

[2] राम को लका-प्रयाण तथा हनुमान का लक्ष्मण मूर्च्छा के उपरात कथन।

१३ तुलसी अधिक कहे न रहैं रसगूलरि को सो फल फोरे ४४
१४ तुलसी त्यो त्यो होइगी गरई ज्यों कामरि भीजे ४६
१५ पूछ सों प्रेम विरोध सौंग सो, यहि विचार हिनहानी ४६ ।
१६ मन के दसन कुलिस के मोदक कहत सुमत बोराई ५१
१७ सानुज भगन समचिव सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी ६१।

गीतावली

१ सुख के निधान पाये हिय के पिधान लाये,
ठक के से लाडू खाए प्रेम मद छाके हैं १।६२
२ एक बात वेग ही उड़ाने जातुधान जात,
सूखि गए गात है पतौआ भए बाय के १।६५
३ सोचत सत्य सनेह विवस निसि नृपत गनत गए तारे। १।६८
४ आना कानो कठ हँसी, मुँहाचाही होन लगी,
देखि दसा कहत विदेह बिलखाई के । १८२
५ बम इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं
६ जहँ तहँ मे अचेत, खेत के से धोखे हैं } १ । ८३
७ बाहु पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं
८ हाय मीजिबो हाय रह्यो—२।८४
९ देखो काम कौतुक पिपीलिकनि पख लागो । ५ । २४ । ३
१० भइ कूबर की लात विधाता राखी बनाइके । ५ । २८ । ३
११ नाहि न मोहि और कतहू कछु
जैसे काग जहाज के । ५ । २९ । ३
१२ जो मूरति सपने न बिलोकत
मुनि महेस मन मारि के । ५ । ३६ । ६
१३ दसमुख तज्यो दूध माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई । ५ । ३७
१४. सो दिन सोने को कहु कब ऐहै ? ५ । ५० । १
१५ तुलसिदास विदर्‍यो अकास सो
कैसे के जात सियो है । ६ । १८ । ८
१६ पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि
जेहि बन बिपति बँटाइ—६ । ६
१७ तात मरन तिय हरन गीध बध
भुज दाहिनी गवाइ ६ । ६
१८ तुलसी मे सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ६ । ६
१९ दसमुख बिबस तिलोक लोकपति
बिमल बिनाये नाक चना है । ७ । १३

विनयपत्रिका

१ ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की ७५
२ भीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि ७६
३ होइ न बाको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करे १३७
४ महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे १८७
५ दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व बिलोचन १८६
६ बाजीगर के सूम ज्यों, खल ! मेहु न खातो। १५१
७ बालिस बासी अवध को बूझिए न खाको १५२
८ कीजे दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ १५३
९ पढ़िबो पर्‌यो न छठी छमत, ऋगु जजुर, अथर्वन साम को १५५
१० तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को १५६
११ मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के १७६
१२ सीलसिंधु ढील तुलसी की बार खई है १८०।
१३ जासों सब नातो फुरै तासों न करी पहिचानि १९०
१४ नीच जन, मन ऊँचे, जैसी कोढ़ में की खाज २१६
१५ कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घायल घाय २२०
१६ मोहि तो सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरो २२६
१७ तुलसी ऐ अवलब नाम को एक गाँठ कई फेरे २२७
१८ इतनी जिय लालसा दास के कहत पान ही गहिहौं २३१
१९ अब तुलसी पूतरो बाँधि है सहि न जात मो पै परिहास एते २४१
२० जागत ही गई बीत निसा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो २४५
२१ छीन किए नाम-महिमा की नाव बोरिहौं २५८
२२ रावरि कहाँ हो जो पै हूँहौं माखी घीय की २६२
२३ राम को सो होम है, ऊसर कैसो बरसो २६४
२४ तुलसिदास अपनाए कीजे न ढील अब जीवन अवधि अति नेरे २७३
२५ महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो २७६
२६ कृपा गरीब निवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है २७९

सूक्तियाँ

कोई कवि जन-जीवन के अनुभवों से कितना समृद्ध है इसका मान उसकी रचनाओं में प्रयुक्त सूक्तियों से होता है। सूक्तियाँ काव्य मंदिर के द्वार पर जगमगाते हुए इन्द्रधनुष के विद्युत प्रदीप हैं। चाणक्य, वररुचि आदि केवल सूक्तिकार हैं इसलिए उनकी सूक्तियाँ कुनैन की गोलियों की तरह कड़वी लगती हैं। किन्तु तुलसी ने तो

गीत की सरस पंक्तियों के मध्य अनेक सूक्तियों का प्रवेश कर इहलौकिक एव पारलौकिक जीवन के परिमार्जन एव परिशोधन का सदेश तो दिया ही है उसकी मधुरता को भी कम होने नही दिया है।

श्रीकृष्णगीतावली

१ तुलसी है सनेह सुखदायक नहि जानत ऐसो को है ? ३५वां पद

२ प्रियतम प्रिय सनेह भाजन, सखि ! प्रीति रीति जन जानी ४६

३ नाहिन काहू लहो सुख प्रीति करि मग ५४

गीतावली

१ मूकनि बचन लाहु, मानो मघनि लहे हैं विलोचन तारे।
बालकांड, ६११

२ जनु सुनरेस देस-पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत।
बालकांड, ५०।

विनयपत्रिका

१ छुटे न बिपति भजे बिन्दु रघुपति, श्रुति सदेह निबेरो। ८७

२ तुलसिदास सब आस छाडि करि, होहु राम को चेरो। ८७

३ तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनिहि जनम सिरोयो। ८८

४ जेहि के भवन विमल चितामणि सो कत काँच बटोरे। ११६

५ जाको मन जासो बघो ताको सुखदायक सोइ। १६१

६ बुझै न काम अगिनि तुलसी कहूँ, विषय भोग बहु घीते। १६८

७ उमं प्रकार प्रेत पावक ज्यो धन दुखप्रद श्रुति गायो। १६६।

८ तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछताये। २०१।

९ छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु वृथा गँवाये। १६६

१० प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो। २२६

मान्त्रिकता[1]

कुशल कवि के द्वारा प्रयुक्त शब्द ही ऐसे होते हैं कि उनके श्रवण मात्र से शिराओं मे विद्युत धारा के स्पर्श सी झनझनाहट पैदा हो जाय। तुलसी के ये गीत उनके आत्ममथन के परिणाम है। वे आत्मनिवेदन तो करते है किन्तु साथ-साथ ही ऐसे शब्दो का भी प्रयोग करते हैं कि उन जैसे भक्तों के हृदय मे भगवान् के प्रति अतीव श्रद्धा एव उत्कटता उत्पन्न कर दें या दुराचारियों के मन में एक सशक्त आत्मग्लानि आक्रोश या क्षोभ। ऐसे शब्दों से उत्पन्न होने वाले जादू जैसे प्रभाव को हमने मान्त्रिकता की सज्ञा प्रदान की है। एक उदाहरण कथन के स्पष्टीकरण के लिए समग होगा। भगवान् राम की शरण मे आये हुए विभीषण के मन मे उठने वाले

१ Incartation

भावों का वर्णन है—

माहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के
आयो सरन सुखद पदपंकज चोंथे रावन बाज के।[1]

विभीषण साधारण प्रताडना पाकर प्रभु की शरण मे नही आया है वरन् वह तो रावण-बाज के द्वारा चोंथे जाने पर यहाँ उपस्थित हुआ है, "चोंथे" शब्द की जो अर्थव्याप्ति तथा व्यंजना है वह नोचना, खसोटना, मारना आदि शब्दों से व्याप्त नही हो सकती। "चोंथने" से चोंच को पेच की भाँति घुमा-घुमाकर अस्थि-मज्जा मे छिद्र करके, सांघातिक कष्ट देने की जो ध्वनि है उसका मानस साक्षात्कार कराना ही विभीषण का लक्ष्य है। भक्त के साधारण कष्ट को सुनकर जो त्राण के लिए तत्पर रहता है वह भला रावण बाज के द्वारा चोंथे जाने पर कृपा न करें ऐसा हो ही नही सकता।

दोष

भाषा सम्बन्धी अन्य सूक्ष्मताओं पर विचार कर लेने के उपरात दोष पर भी विचार कर लेना अप्रासांगिक नही होगा।

काव्यशास्त्रियों ने दोषों की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं—

१ काव्यास्वाद में जो उद्वेग पैदा करे वह दोष है।[2]

२ गुण का विपर्यय दोष है।[3]

३ दोष वह है जिससे मुख्य अर्थ का विघात या अपकर्ष हो।[4]

४ रस के अपकर्ष दोष हैं।[5]

*अत दोषों के कारण कभी काव्यास्वाद मे व्याघात पड़ता है, कभी काव्या*स्वर्य विनष्ट हो जाता है तथा कभी अर्थ के अस्पष्ट रहने के कारण काव्यास्वाद मे विलम्ब होता है।

तुलसीदास प्रथम श्रेणी के कवि हैं। उनकी रचनाओं मे दोषों का अन्वेषण एक बड़े दुस्साहस का कार्य है। उनकी भाषा बिलकुल रसानुकूल है। सम्पूर्ण गीत ग्रन्थों मे दोष गिनाने भर के लिए दोष मिल जाते हैं।

श्रुतिकटु

यथा पटतसु घट मृत्तिका सर्पस्रग दारु कनक कटकांगदादी[6]

---

१ गीतावली, सुन्दरकांड, २६

२ उद्वेगजनको दोषः।—अग्निपुराण, ३४७। ७

३ गुणविपर्ययात्मानो दोषाः
- काव्यालंकार सूत्र २-१, वामन

४ मुख्यार्थहतिर्दोषो, काव्यप्रकाश, ७७ वाँ उल्लास, ७१

५ रसापकर्षका दोषा, साहित्यदर्पण, सप्तम् परिच्छेद

६ विनयपत्रिका, ५४

अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

(क) अजन केस—दीपक अजनकेस सिखा

जुगती तहँ लोचन सलभ पठावौं।[1]

(ख) भुजग भोग सुंड भुजग भोग भुजदण्ड कंज दर चक्र गदा बनि आई[2]

किन्तु एक-दो दोषों से उनकी भाषा दूषित नहीं हो सकती। कभी-कभी पद-पद में शिथिलता का आ जाना किसी की रुग्णता अथवा निर्बलता का द्योतक नहीं।[3] भाषा की सुषमा चन्द्रिमा में एकाध दोष अपनी कालिमा खो बैठते हैं।

एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवांक ।[4]

---

१ विनयपत्रिका, १४२
२ वही, ६२
३ काव्य और कवि, श्री विश्वमोहन कुमार सिंह, पृष्ठ ७१
४ कुमार सम्भव, कालिदास, प्रथम सर्ग, ३रा श्लोक

: ५ :

तुलनात्मक अध्ययन

किसी भी साहित्यिक कृति का मूल्यांकन परम्परा के सातत्व में ही सम्भव है। परम्परा से नितान्त विच्छिन्न, बिलकुल शून्य में हम किसी कलाकृति का उचित मूल्यांकन नहीं कर सकते।[1] इसीलिए, प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलसी के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तुलसी और विद्यापति

विद्यापति शृंगार के कवि हैं या भक्ति के—यह आज तक निर्णीत नहीं हो पाया है। किन्तु तुलसी पूर्णतया भक्त-कवि हैं, यह निःसन्दिग्ध है। दोनों उत्कृष्ट गीतिकार हैं—यह भी प्रमाणित ही है।

विद्यापति की पदावली में वंदना, नखशिख वर्णन, प्रेमप्रसंग, दूती, नोक-झोंक, सखी-शिक्षा, मिलन, सखी सभाषण, कौतुक, अभिसार, छलना, मान मानभंग, विदग्ध विलास, वसंत, विरह, भावोल्लास, प्रार्थना नचारी जैसे विषयों के पद मिलते हैं।

तुलसी के भक्त्यात्मक गीतों के साथ तुलना के लिए विद्यापति के वंदना, प्रार्थना और नचारी विषयक पद (जो संख्या में ३० के लगभग हैं) उपस्थित किए जा सकते हैं। विद्यापति पंच देवोपासक हैं। वे देवी की स्तुति करते हैं, शिव की वंदना करते हैं और कृष्ण का प्रशस्ति गायन भी। एक-दो पदों में उन्होंने गंगा की स्तुति भी की है तथा एक पद में जानकी-वंदना भी। किन्तु इन पदों में विद्यापति का एकनिष्ठ मुखरित हुआ हो, ऐसी बात बिलकुल नहीं है। विद्यापति ने जब जिस

1 No poet, no artist of any art has his complete meaning alone. His significance, his appreciation is the appreciation his relation to the dead poets and artists. You can not value him alone, you must set him, for contrast and comparision, among the dead

—Tradition and the Individual Talent Selected prose —T S Eliot Page 23

देवी या देव की स्तुति की है उस वक्त ऐसा लगता है—उनके साथ वे तल्लीन-सा हो गए हैं। अमुक देव या देवी का स्तवन जैसे उनका साध्य ही रहा हो।

गोस्वामी ने भी विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की हैं। पंच देवों की स्तुतियों से ही उनके बारह ग्रन्थों में से छह (मानस, विनयपत्रिका, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू) प्रारम्भ हुए हैं। विनयपत्रिका के आरम्भ में गणपति, सूर्य, शिव, भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण, सीता, गंगा, चित्रकूट, यमुना आदि देवी देव नदियों देव स्थानों की स्तुति की गई है। किन्तु ये स्तुतियाँ तुलसी के लिए साधना मात्र हैं उनका एकमात्र साध्य है रामभक्ति-रामकृपा की प्राप्ति। उन्हें परम परमेश्वर रामचन्द्र अंगीकृत कर लें इसलिए अन्य देवी देवताओं से सम्बंधित स्तवन में उतनी तन्मयता नहीं आ पाई है। तुलसी की इन्हीं स्तुतियों से विद्यापति के पदों की तुलना सम्भव है और तब विचार करेंगे कि दोनों कितना सफल हुए हैं।

देवी-वंदना

विद्यापति ने देवी की वंदना इस प्रकार की है—

जय जय भैरवि असुर-भयाउनि
पशुपति-भामिनि माया।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया।
वासर रैनि सवासन सोभित
चरन, चन्द्रमनि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल
कतओ उगलि कैलि कूड़ा।

× × ×

विद्यापति कवि तुअ पद सेवक
पुत्र बिसरु जनि माता।[1]

एक दूसरा पद इस प्रकार है। देवी-स्तुति से सम्बन्धित जिसकी भाषा में मैथिलीपन कम, तन्मयता अधिक है।

कनक भूधर शिखर वासिनि
चन्द्रिका चय चारु हासिनि
दसन कोटि विकास, बंकिम
तुलित चन्द्रकले।

× × ×

समर बघ निदान मोदनि
चन्द्र भानु कृसानु लोचन

---

१ विद्यापति का पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी, पद संख्या ३

योगिनी गण गीत शोभित—
नृत्यभूमि रसे।
जगति पालन जनन मारण
रूपकार्य सहस्र कारण
हरि विरंचि महेश शेखर—
चुम्ब्यमान पदे।
सकल पापकला परिच्युति
सुकवि विद्यापति कृतस्तुति
तोषिते शिवसिंह भूपति
कामना फल दे।[1]

तुलसीदास ने भी देवी की स्तुति की है जो इस प्रकार है—

जय जय जगजननि देवी, सुर नर मुनि असुर सेवि,
भुक्ति मुक्ति दायिनी भयहरनि, कालिका
मंगल मुद सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश-वदनि
ताप तिमिर तरुन तरनि किरनमालिका।
× × ×
जय महेश भामिनि, अनेक रूप नामिनी
समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैल बालिका
रघुपति पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम
देहि ह्वै प्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका।[2]

विद्यापति ने देवी के सामने अपने को पुत्रवत् अपनाने की याचना की है। प्रथम पद में वे आत्मरक्षण चाहते हैं और दूसरे पद में अपने आश्रयदाता का रक्षण चाहते हैं। तुलसीदास ने तो किसी लौकिक पुरुष के लिए कुछ कामना की ही नहीं। वैसे भी देवी के साथ उनका सीधा सम्बन्ध नहीं दीखता। वे तो इसलिए उनकी स्तुति करते हैं कि उन्हें 'रघुपति पद परम प्रेम" उपलब्ध हो जाए। तुलसी के लिए देवी "अनेक रूप नामिनी" भले हों, "महेश भामिनी' भले हों किन्तु "हरि विरंचि महेश शेखर चुम्ब्यमान पदो" ऐसा नहीं मानते। विद्यापति की दृष्टि में देवी का स्थान बहुत ऊँचा है। तुलसी के समक्ष राम ही सबसे महान् हैं इसलिए वे देवी को इतना ऊँचा उठा भी नहीं सकते।

शंकर-स्तुति

देवी स्तवन के पश्चात् शंकर-स्तवन पर विचार किया जाय। शिव बड़े भोले हैं। उनका रहन-सहन भी बड़े साधारण ढंग का है। वे थोड़े प्रसाद के द्वारा ही वशी-

१ विद्यापति का पदावली रामवृक्ष बेनीपुरी, पद सं० २३०
२ विनयपत्रिका, १६

भूत किए जा सकते हैं—वे भानुतोष हैं। विद्यापति ने इसको इस प्रकार लिखा है—

बसन हरय दुःख मोर
हे भोलानाथ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब
सुख सपनेहु नहि भेल, हे भोलानाथ।
आछत चानन अवर गगाजल
बेलपात तोहि देब, हे भोलानाथ।
यहि भवसागर थाह कतहुं नहि
भैरव धए कर आए, हे भोलानाथ।
भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति
देहु अभयवर मोहि हे भोलानाथ। २४

इसी भाव को विनयपत्रिका में इस प्रकार हुई है—

देव बड़े, दाता बड़े, सकर बड़े भोरे
किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे
सेवा सुमिरन पूजिबो, पात आखत थोरे
दियो जगत जहं लगि सबं सुख गज रथ घोरे।[1]

विष्णु-शिव एकात्मभाव

विद्यापति विष्णु और शिव म कोई अन्तर नहीं मानते। एक ही रूप कभी पीत वसन धारण कर विष्णु रूप में उपस्थित होता है, कभी बघछला पहनकर शिव रूप में उपस्थित होता है। कभी चार भुजाओं वाला हो जाता है, कभी पाँच मुख वाला, कभी गोकुल मे गाय चराता है और कभी डमरू बजाकर भीख माँगता है।[2] विनयपत्रिका के ४६वें पद मे जिसे हरिशंकरी पद कहते हैं, तुलसी ने शिव और विष्णु के एकात्मभाव की स्थापना की है।

कृष्णार्पण

विद्यापति ने कई पदों में कृष्ण के प्रति अपनी दीनता प्रकट की है। वे उनके पद पल्लव का अवलम्बन चाहते हैं—ताकि उसके सहारे वे दुस्तर भव-सागर का संतरण कर जाए। वे कहते हैं—

माधव हम परिनाम निरासा
तहुं जगतारन दीन दयामय
अतय तोहर बिसवासा॥[3]

---

1 विनयपत्रिका, ६
2 विद्यापति पदावली, २१२
3 वही, २५४

ऐसे हैं जैसे घन मे दामिनी कौंध जाती है।[1] सारे नाते, सारे सम्बन्ध झूठे हैं। इसी को कबीरदास ने बड़े जोरदार शब्दों मे व्यक्त किया है। सम्पूर्ण विनयपत्रिका में ऐसे पदों का प्रभाव नहीं है जहाँ तुलसी ने कबीर की भांति ससार की क्षणिकता पर इस प्रकार न लिखा हो। कबीरदास कहते हैं—

मन रे तन कागद का पुतला।
लागे बूंद बिनसि जाइ छिन मे, गरब करै क्या इतना।
माटी खोदहि भींत उसारै, अंध कहै घर मेरा।
ग्रावै तलब बांधि लै चालै, बहुरि न करिहै फेरा।।[2]

हम हम करके, व्याकुल होकर धन सवारने से कोई लाभ नहीं। अन्त समय तो खाली हाथ जाना ही पड़ता है।[3] कबीर इसी को कहते हैं—

खोट कपट करि यहु धन जोर्‌यो, लै धरती में गाड्यो
रोक्यो घटि सांस नहिं निकसै, ठौर ठौर सब छाड्यो।[4]

पुन कबीर कहते हैं न कोई बंधु है, न कोई साथी।[5] तुलसी भी सुत-वनितादि को स्वारथरत मानकर ग्राज से ही त्यक्त करने का परामर्श देते हैं।[6]

भक्त और भगवान का सम्बन्ध वर्णन

भक्त विचारणा की भूमिका में ग्राराध्य और अपने बीच सम्बन्ध निश्चित करना चाहता है। तुलसी ने कई पदों मे सम्बन्ध की चर्चा की है। कबीर कहते हैं—

हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।[7]

तथा—

तुम जलनिधि मैं जल कर मीना
जल में रहौं जलहि बिन पीना
तुम प्यजरा मैं सुवनां तेरा
दरस न देहु भाग बड़ मोरा।[8]

भक्ति-मार्ग के विघ्न

भक्त काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारों से अपने को मुक्त रखना चाहता

---

१ विनयपत्रिका, ७३
२. कबीर ग्रन्थावली, १२ वां पद
३ विनयपत्रिका, ११८
४ कबीर ग्रन्थावली, १३ वां पद
५ वही, १००वां पद
६ विनयपत्रिका, ११८
७ कबीर ग्र थावली, ११७
८ कबीर ग्रन्थावली, १२०

है क्योंकि वह निष्कलुष रहकर ईश्वराधन में तल्लीन रहे। लेकिन ये सब बड़े उत्पात करते हैं। तुलसी के अन्तस्-मन्दिर में तम, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध आदि रिपुओं ने बड़ा उत्पात मचाना प्रारम्भ किया है। तुलसी इनसे बड़े खिन्न हैं। लेकिन जब तक रघुनाथ ध्यान नहीं देते तब तक वे तस्कर मानने को तैयार नहीं।[1] कबीर के आत्मखण्ड में भी पंच चोरों ने उत्पात प्रारम्भ कर दिया है। वे गढ़ को दिवस और साँझ लूटते रहते हैं। किन्तु अगर गढ़पति तैयार हो जाय तो उसे कोई लूट नहीं सकता। इसलिए हरिनाम लेना ही एकमात्र उपाय है।[2]

लेकिन काम, क्रोधादि ही गड़बड़ी नहीं मचाते। माया तो नग्न नृत्य करती है, जीवों को उलझाती फाँसती है। यह माया क्या है – मोर-तोर का भेद है। जब तक उसने मोर-तोर किया तब तक दुःख पाया। लेकिन यह माया खंडन उसी की कृपा दृष्टि से सम्भव है।[3]

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस और विनयपत्रिका में माया का स्वरूप कुछ इसी प्रकार निश्चित किया है।[4] वे भी मायापति कृपानिधान रघुराया से माया खंडन की प्रार्थना करते हैं।[5]

तुलसी की विनयपत्रिका में उनकी अनन्यता पद-पद पर परिलक्षित होती है। वे न तो दिगीश की सेवा करना चाहते हैं, न दिनेश, न गणेश, न गौरी और न वे अपना हित ब्रह्मा, विष्णु महेश को ही मानते हैं, उन्हें राम-नाम से ही प्रेम नेम सब कुछ है और सब देवी-देवता तो उनके लिए जहर के तुल्य हैं।[6] यह एकनिष्ठता की पराकाष्ठा है। कबीर के पदों में भी ऐसी निष्ठा का अभाव नहीं मिलता। इस पद में राम के प्रति कबीर ने गहरी आस्था प्रकट की है।

> अब मोहि राम भरोसा तेरा
>
> और कौन का करौं निहोरा।
>
> जाके राम सरीखा साहिब भाई,
>
> सो क्यूँ अनत पुकारन जाई॥
>
> जा सिरि तीनि लोक कौ भारा,
>
> सो क्यू न करै जन को प्रतिपारा॥
>
> कहै कबीर सेवौ बनवारी
>
> सींचौ पेड़ पीवै सब डारी॥[7]

---

१ विनयपत्रिका, १२५

२ कबीर ग्रन्थावली, २६२

४- मैं अरु मोर तोर तैं माया

५ विनयपत्रिका, १२३

६ सेइये न दिगीस न दिनेस, न गनेस गौरी, हित कै न मानै बिधि हरिउ न हरु।
रामनाम ही सों जोरे नेह, नेम प्रेम-नेम, सुधा से भरोसे एक, दूसरो जहरु॥

७ कबीर ग्रन्थावली, ११४

आराध्य के बिना संसार व्यर्थ

तुलसीदास जी राम के बिना सब फोटक[1] व्यर्थ मानते हैं। राम की महिमा अपार है। वे सर्वशक्तिमान हैं। राम प्राप्ति के अनेक साधन हैं, लेकिन प्रभु भाव से, भक्ति से ही अपनाए जा सकते हैं।[2] कबीर राम के बिना जन्म को मरण से भी बुरा मानते हैं।[3] कबीर भी कहते हैं ए राम तुम्हारी गति जानी नहीं जा सकती।[4] उनकी दृष्टि में कहना और बोलना सब जंजाल है, भावभक्ति से ही भगवान् को अपनाना चाहिए।[5]

नाम जप का महत्त्व

इसलिए तुलसी और कबीर दोनों नाम-जप, सुमिरन का बहुत महत्त्व देते हैं और उसी में रमते रहना पसंद करते हैं। कबीर का कथन है—

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई।
जा दिन तेरो कोई नहीं, ता दिन राम सहाई।
तंत न जानू मंतन जानू, जानू सुंदर काया।
मीर मालिक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया।
बेद न जानू भेद न जानू, जानू एकहि रामा।
पंडित दिसि पछिवारा कीन्हा, मुख कीन्हों जितनामा।
राजा अंबरीष के कारणि, चक्र सुदरसन जारै।
दास कबीर को ठाकुर ऐसो, भगत की सरन ऊबारै।[6]

जिस दिन कबीर अनाथ-आश्रयरहित था उस दिन उसके अशरण-शरण प्रभु ने अपना लिया तो भला उसे छोड़कर वह अन्य किसका वदन करेगा? तुलसी ने भी अनेकानेक पदों में असहाय सहायक राम की अभ्यर्थना की है। जिस हरि ने प्रह्लाद को बचाया, उस प्रभु को छोड़कर किसका भजा जाय?

हरि तजि और भजिए काहि?
नाहिंन कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि॥
कनक कसिपु बिरंचि को जन करम मन अरु बात।
सुतहि दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात॥
संभु सेवक जान-जग बहु बार दिए दस सीस।
करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हरक्यो ईस॥ ...

१ विनयपत्रिका
२ वही,
३ कबीर ग्रंथावली, १३२
४ वही, २००
५ वही, २०१
६ कबीर ग्रंथावली, १२२

और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीत।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत॥
कौन सेवत देवत देव सपति ? लोक हू यह रीति।
दास तुलसी दीन पर एक राम की प्रीति॥'

इस तरह और भी बहुत से प्रसग हैं जिनमे तुलसी और कबीर के भाव एक समान हैं जैसे गुरुवदना, सतसग महत्व, कथन कर्तव्य का वैभिन्य-प्रदर्शन, सासारिक आशा का परित्याग, साधु-चरण सेवा, अपने अवगुण की विस्मृति की प्रार्थना, शरण प्राप्ति की आकुलता अर्थात जो भक्ति पूरित हृदय के उद्गार हो सकते हैं उसमे दोनो के भाव मिलने-जुलते हैं। इसलिए योग माग प्रभावित एव रहस्यवादी पदो को छोडकर कबीर के पदो और तुलसी की विनयपत्रिका के पदो मे ऐसी भक्ति की धारा बहती है कि जिसमे स्नान कर कोई भी शान्ति का अनभव कर सकता है।

तुलसी और सूर

विनय के पदो की दृष्टि से सूर और तुलसी

महाकवि तुलसी निष्णात भक्त हैं। भक्त मे भी दास्यभाव के जिसमे भक्त अपने को लघुतम एव तुच्छतम मानता है तथा अपने भगवान को महत्तम घोषित करता है। तन मन सब कुछ वह इष्ट के चरणों मे अर्पित कर केवल उसका गुण-गान करता हुआ जीवन बिता देता है। सूर भी भक्त हैं लेकिन दास्य भाव के या सख्यभाव के यह विवादग्रस्त हैं। चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे उल्लेख है कि जब सूरदास वल्लभाचाय के दर्शनार्थ गउघाट पहुँचे तो उन्होने "प्रभु हौं सब पतितन को टीको" पद गाया। इस पर आचाय जी ने कहा "जो सूर ह्वै के ऐसो घिघियात काहे को है" इससे लोग अनुमान करते हैं कि वल्लभाचार्य की भक्ति दास्य भाव की न थी। इसलिए उनके मना करने के बाद से ही सूरदास ने दीनता निमज्जित पदों की रचना छोड दी, 'घिघियाना' छोड दिया और लीला पदो का सृजन प्रारम्भ किया। ये दीनता के पद वस्तुत वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पूर्व के हैं किन्तु यह कथन बिल्कुल निराधार है। उन्होंने दास्यभक्ति और दासभाव सेवा का भी विधान अपनी भक्ति पद्धति मे रखा है।[2] कृष्णाश्रय ग्रथ मे आचार्यजी ने दासभाव के साथ स्वदैन्य प्रकाशन, भगवान् के प्रति विनय, प्रार्थना तथा दैन्य के भाव धारण करते हुए उनकी शरण और रक्षा का आवाहन किया है।[3] पुन सुबोधिनी फलप्रकरण, अध्याय ४ की कारिका में वल्लभाचार्य जी ने दैन्यधारण को दृष्टि तुष्टि के लिए सबसे बडा उपाय

१ विनयपत्रिका, २१६
२ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय · डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ६००
३ वही, पृष्ठ ६००

कहा है।[1] इसलिए प्राय सभी पदों में आत्मदीनता का भाव लिपटा हुआ है। और इस मूल दृष्टि से वस्तुत तुलसी और सूर भक्ति के समधरातल पर अवस्थित हैं।

वस्तुत तुलसी और सूर दो ही सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य में ऐसे भक्त कवि हैं जितना प्राण-स्पंदन एक सम है। इसलिए दोनों के भक्त्यात्मक गीत अधिकाधिक अंश में साम्य रखते हैं।

तुलसी रामोपासक हैं, सूर कृष्णोपासक लेकिन ये दोनों तात्त्विक दृष्टि से राम और कृष्ण में भेद नहीं मानते। जो राम हैं, वे ही कृष्ण, जो कृष्ण हैं—वे ही राम हैं। राम ईश्वर हैं—कृष्ण ईश्वर हैं। इस तरह सूरसागर के विनयपदों और विनयपत्रिका में ऐसे अनेकानेक पद उद्धृत किए जा सकते हैं जो मेरे इस कथन को पुष्ट करते हैं।

राम और कृष्ण का एकीभाव

सूरदास के राम भक्तवत्सल हैं। वे जातिगोत्र, रक-राजा का कुछ विचार नहीं करते। वे अस्मिता के शत्रु हैं। रघुवंशी राघव जिन्होंने कृष्ण होकर गोकुल वास किया उनके भक्ता की महिमा बखानी नहीं जा सकती। ध्रुव क्षत्रिय थे, विदुर दासी पुत्र थे, किन्तु प्रभु ने किसी से भेद-भाव नहीं रखा। उनका सुयश यही फैला है कि वे अपने भक्त के हाथ बिके हुए हैं—

> राम भक्तवत्सल निज बानौं।
> जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिं, रक होइ कै रानौं।
> सिव ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिं जानौं।
> हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यों मानौं?
> प्रगट खभ तें दए दिखाई, जद्यपि कुल को दानौ।
> रघुकुल राघव कृष्न सदा ही गोकुल कीहौं थानौं।
> बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारबार बखानौं।
> ध्रुव रजपूत, विदुर दासी सुत, कौन कौन अरगानौ।
> जुग जुग विरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ।
> राजसूय में चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ।
> सूरदास प्रभु की महिमा अति, साखी वेद-पुरानौ॥[2]

पुन सूरदास जी कहते हैं गोविन्द सबकी प्रीति स्वीकार करते हैं। भक्तजन जिस सेवा से उनकी आराधना करते हैं उस भाव के अनुरूप (हृदय की बात जानकर) व्यवहार करते हैं। शबरी ने कटु बेर को छोड़कर चख-चख कर मीठे बेर इकट्ठे किए। भगवान् ने उसे जूठा न मानकर बड़े प्रेम से खाया। भक्त सखा

[1] अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय डा० दीनदयालु गुप्त, ६०६

[2] सूरसागर, पद ११

श्यामसुन्दर ने विदुर के यहाँ केले का छिलका खाया। कौरवों के कारण दुर्वासा पाडवों को शापित करने चले थे लेकिन शाक का पात खाकर उन्होंने ऋषि को सतृप्त कर दिया, अपने भक्त की रक्षा की। सचमुच प्रभु तो करुणानिधि है। युग-युग से भक्त रक्षा उनका विरद है। पद इस प्रकार है।

गोविंद प्रीति सबनि की मानत।
जिहिं जिह भाइ करत जन सेवा, अत की गति जानत।
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु सक न मानी, भच्छ किए सत-भाई।
सतत भक्त मीत हितकारी स्याम बिदुर के आए।
प्रेम-बिकल, अति आनद उर धरि, कदली छिकुला खाए।
कौरव काज चले रिषि सापन, साक पत्र सु अघाए।
सूरदास करुनानिधान प्रभु, जुग जुग भक्त बढ़ाए॥[1]

तुलसी भी राम और कृष्ण मे कोई भेद नही मानते इसलिए उन्होंने राम को मुरारी रूप मे सम्बोधित किया है। वे कहते हैं—

कस न करहु करुना हरे! दुखहरन मुरारी!
त्रिविध ताप सदेह - सोक - ससय - भय - हारि॥[2]

इस पद मे राम और ईश तथा कृष्ण मे पार्थक्य विलुप्त हो गया। आज राम ने न मालूम क्यों अपनी कृपा विस्मृत कर दी है। वे तो दीन-दुखियो के आर्त्तनाद सुनकर तुरत दौड पडते है। सभा मध्य जब द्रौपदी की रक्षा कोई नृप नही कर सका तो वस्त्र बढाकर भगवान राम ने ही उसकी रक्षा की। पद इस प्रकार है—

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ?
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन दुख धावत हो तजि धाम।
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलब न कीन।
दिति सुत त्रास त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी।
भूप सदसि नृप सब बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर नारी।
बसन पूरि, अरि दरप दूर करि भूरि कृपा दनुजारी॥
एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर॥

---

१ सूरसागर, पद १३, राम और कृष्ण के अभिन्नत्व स्थापित करने वाले सूरसागर के पद स० ३४, ५७, ६१, ७१, ६०, ६२, १८, २४, २६, २७, ३५, ३६, ११६, १२३, १५८

२ विनयपत्रिका पद स० १०६

लोभ ग्राह, दनजेस क्रोध, कुरराज बधु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भजहु राम उदार ॥[1]

कल्मष प्रदर्शन

तुलसी की स्थिति बडी दयनीय है। वह महान् पापी है। उसके कल्मष की परिगणना सभव नही। वह महा निर्लज्ज, नीच, निर्धन, निर्गुण है।[2] हरि भक्ति छोड़कर उसका कामलोलुप मन इधर-उधर चक्कर काटता है। दम्भ इकट्ठा करना उसका काम है।[3] अगर यमराज सारा काम छोड़कर उनकी अघ गणना करें तो भी उनके सारे अघो की गणना नही हो सकती।[4] उसके एक एक क्षण के कालुष्य को गिनने मे श्रमित शारदा और शेषनाग पराजित हो जाएँगे।[5] किन्तु सूरदास अपने को तुलसी से एक तो कम पापी सिद्ध करना नही चाहते। वे तो सब पतितन को टीको[6], "पतित[7] सिरोमणि" "पतितनि पतितेस"[8], "पतिन को राजा"[9] आदि न मालूम क्या-क्या हैं। यदि पर्वतराज हिमालय को स्याही न बनाकर, समुद्र मे घोलकर स्वयं ब्रह्मा कल्पवृक्ष की कलम हाथ मे लेकर सारी पृथ्वी पर उनके अवगुणों को लिखें तो उसका अत सम्भव नही।[10] इस प्रकार दोनो भक्त कवि अपने कल्मष प्रदर्शन मे किसी से घटकर नही हैं।

कहते हैं "एक तो करेला तीत, दूजो नीम चढो"। स्वय तो पाप का भडार और ऊपर से माया और अविद्या का यह प्रकोप। माया के कारण ही स्वरूप विस्मृत कर अनेक दारुण दुःख सहन करने पड रहे हैं।[11] उसकी विपत्ति की कोई सीमा नही। इस हृदयरूपी भवन मे अनेकानेक चोर आकर बस गए हैं, ये बरजोरी करते हैं और मना करने पर भी नही मानते। अज्ञान, मोह, मद, अहंकार, क्रोध, ज्ञान—रिपु काम ये ही वे चोर हैं। ये बडा ऊधम मचाते हैं और अनाथ जानकर कुचलना चाहते हैं।

---

१ विनयपत्रिका पद ६३, दैन्य प्रदर्शित करने वाले विनयपत्रिका के अन्य पद ११३, ११४, ११५, ११६, ८८ ६६, १०१, १०६, ११२, २१३, २१४, २३६, २४०
२ विनयपत्रिका, १५३
३ वही, १५८
४ ,, ६५
५ ,, ६६
६ सूरसागर, १३८
७ वही, १३६
८ ,, १४१
९ ,, १४४
१० सूरसागर, १११
११ वही, १३५

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्री रघुबीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
अति कठिन करहिं बर जोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहंकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु, मारा॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा॥
मैं एक अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा॥[1]

सूरदास की दशा तुलसीदास से अच्छी नहीं है। माया नटी हाथ में लकुटी लेकर नाना नाच नचाती है, लोभ के कारण वह स्थान पर घूमती है और अनेक प्रकार के स्वाँग धारण किया करती है। हे प्रभो! मेरी बुद्धि को भ्रम में डालकर आपके प्रति कपट कराती है। मन में लालसा तरंग उठाकर असत्य रूपी निशा में मुझे जगाती है। स्वप्न की तरह मिथ्या सम्पत्ति दिखलाकर उन्मत बनाती है। मन-मोहिनी कुटिल मार्ग में लगाती है जैसे कुटिला कुलीन कन्या को बहकाकर पर पुरुष के निकट उपस्थित करती है।

बिनती सुनौ दीन की चित दै, कैसे तव गुन गावै?
माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष-तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने मे ज्यौं सपति, त्यौं दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै।[2]

शरणागति

इसलिए इन दुष्टों से मुक्ति का एक ही उपाय है कि भगवान् के प्रति अनन्य भाव से आत्मनिवेदन। इसलिए सबकी आशा छोड़कर तुलसीदास कहते हैं—

कहाँ जाउँ? कासों कहौं? को सुनै दीन की?
त्रिभुवन तुहीं गति सब अंगहीन की॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को।
मोसे दो-दोस पोसे, तोसे माय जायो को।

१- विनयपत्रिका, १२५
२ सूरसागर, ४२

मोसे कूर कायर कपूत कौड़ी आध के।
किये बहुमोल तैं करैया गीधश्राध के॥

तुलसी की तेरे ही बनाए, बलि, बनेगी।
प्रभु की विलम्ब-अंब दोष दुख जनेगी॥[1]

मुनि, सुर, नर, नाग, असुर आदि अनेक[2] स्वामी हैं लेकिन तुम जैसा दयालु और कोई नहीं है। इसलिए तुलसी अब तेरी शरण छोड़कर कहीं नहीं जाएगा। सूरदास की यही अनन्यता दर्शनीय है। संसार में और कोई अनुकूल आश्रयदाता उपलब्ध होने पर सूर कभी भी उनकी शरण में नहीं जाता। शिव, ब्रह्मा, देवता, असुर, नाग, मुनि इन सबसे तो वह याचना कर आया। पिपासाकुल मृग की भाँति भटकता रहा, किन्तु किसी ने श्रम-परिहार नहीं किया।[3] इसलिए वह उसी को भजना चाह रहा है—

सब तजि भजिये नंद-कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार।
जिहिं जिहिं जोनि जन्म धार्यो, जोर्यो अघ को भार।
तिहिं काटन कौं समरथ हरि, को तीछन नाम कुठार।
बेद, पुरान, भागवत, गीता, सब को यह मत सार।
भव-समुद्र हरि पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार।
यह जिन जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाई यह समौ लाहु दुर्लभ फिरि संसार।[4]

उपालम्भ

लेकिन इस अनन्यता और दीनता प्रदर्शन से भी प्रभु भक्त की खबर नहीं लेगा, उसका पाप-प्रक्षालन नहीं करेगा, उसका दोष मार्जन नहीं करेगा तो अब उलाहना देने के अतिरिक्त और उसके पास उपाय ही क्या है? उसके देखते-देखते हजारों पापियों का उद्धार हुआ है किन्तु तुलसी के समय यह ढील क्यों? यह हील हवाला क्यों? इसलिए वे कह उठते हैं—

बाँकुरे बिरद बिरदैत केहि केरे॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम कें।
करत नहिं कान बिनती बदन फेरे।

१ विनयपत्रिका, १७६
२ विनयपत्रिका, ७८
३ सूरसागर, २०१
४ वही, ६८

तदपि हौं निडर हौं कहौं, करुनासिंधु !
क्यो व रहि जात सुनि बात बिन हेरे ॥[1]

इतनी उलाहना दी। अगर इससे भी आप नहीं मानेंगे तो तुलसी आपके नाम की पूतरी बाँधकर आपकी बदनामी का ढिंढोरा पीटेगा।[2]

सूरदास तो और भी मुँह लगे सेवक की तरह उपालंभ देने में कुशल हैं। अनेकानेक पदों में उन्होंने अपने भगवान् के समक्ष अपनी माँग जोरदार शब्दों में रखी है—

प्रभु हौं बड़ी बेर को ठाढ़ो।
और पतित तुम जैसे तारे तिनही में लिखि राखौ।
युग युग यही बिरद चलि आयो टेरि कहत हौं यातें।
मरियत लाज पाँच पतितनि में, हौं अब कहौ घटि कातें ?
कै प्रभु हारि मानि कै बैठो, कै करो बिरद सही।
सूर पतित जो भूठ कहत है, देखो खोजि बही ॥[3]

इसके अतिरिक्त जहाँ तक विनय की सप्तभूमिकाओं (दीनता मानमर्षता, भयदर्शना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण) एवं प्रपत्ति के षडंगों (अनुकूल संकल्प प्रातिकूल्य वर्जन, रक्षियतीति विश्वास, गोप्तृत्व वरण, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य) का प्रश्न है—उसके पर्याप्त उदाहरण सूरसागर और विनयपत्रिका में उपलब्ध हो जा सकते हैं। अपने कथन की पुष्टि के लिए दोनों ग्रन्थों के कुछ पदों को उपस्थित कर रहा हूँ।

दीनता

(क) तुम तजि और कौन पै जाउँ ?
काकै द्वार सिर नाउँ, पर हथ कहाँ बिकाउँ।
ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिएँ अघाउँ।
अंत काल तुम्हरें सुमिरन गति, अनन्त कहूँ नहिं दाउँ।
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय पद ठाउँ।
कामधेनु, चिंतामनि, दीन्हौं, कल्पवृच्छ-तर छाउँ।
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन में अधिक डराउँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाउँ ॥[4]

(ख) जौ तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागौं।
परिहरि पाँय काहि अनुरागौं ॥

१ विनयपत्रिका, २१०
२ वही,
३ सूरसागर १३७
४ सूरसागर, पद १६४

सुखद सप्रभु तुमसो जग माहीं।
स्रवन नयन मन गोचर नाहीं॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया।
तुम मायापति हौं बस माया॥
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता।
हौं कुपूत, तुमहीं पितु माता॥
तौं पै कहुँ कोउ बूझत बातो।
तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो॥[1]

भर्त्सना

(क) ऐसें करत अनेक जन्म गए, मन संतोष न पायौ।
दिन दिन अधिक दुरासा लाग्यो, सकल लोक भ्रमि आयौ।
सुनि-सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल, तहाँ तहाँ उठि धायौ।
काम-क्रोध मद लोभ अगिनि तैं कहूँ न जरत बुझायौ।
सुत तनया बनिता बिनोद रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ।
मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै जरत माँझ घृत नायौ।
भ्रमि भ्रमि अब हार्‌यौ हित अपनैं, देखि अनल जग छायौ।
सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा बिनु, कैसें जात नसायौ।[2]

(ख) मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करुनेह सबहीं तें।
अंतहुँ तोहि तजेंगे, पामर! तू न तजै अबहीं तें॥
अब नाथहिं अनुराग जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी ते॥[3]

आनुकूल्य संकल्प

(क) जैसें राखहु तैसें रहौं।
जानत हौ दुख-सुख सब जन के, मुख करि कहा कहौं?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक चढ़ौं तुरग, महा गज, कबहुँक भार बहौं।

---

१ विनयपत्रिका १०१
२ सूरसागर, १५४
३ विनयपत्रिका, १९८

कमल-नयन, घन स्याम मनोहर, अनुचर भयो रहौं।
सूरदास-प्रभु भक्त कृपानिधि, तुमरे चरन गहौं ॥[1]

(ख) जो मन लागै रामचरन अस।
देह, गेह, सुत, वित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस।
द्वन्द्व रहित, गत-मान, ज्ञानरत, विषय-विरत खटाइ नाना रस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्व प्रसन्न कहु क्यों न होहि बस ?
सर्व भूतहित निर्व्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एक-रस।
तुलसिदास यह होइ तबहि जब द्रवै ईस जेहि हतो सीस दस।[2]

प्रातिकूल्य वर्जन

(क) सोइ कछु कीजै दीन-दयाल।
जातें जन छन चरन न छाँडै करुना-सागर, भक्त रसाल।
इन्द्री अजित, बुद्धि विषयारत, मन की दिन दिन उलटी चाल।
काम-क्रोधमद लोभ-महाभय, अह निसि नाथ रहत बेहाल।
जोग-जुगति, जप तप, तीरथ व्रत, इनमें एकौ अंक न भाल।
कहा करौं, किहि भाँति रिझावौं हौं तुमको सुन्दर नदलाल।
सुनि समरथ, सरवज्ञ, कृपानिधि, असरन सरन, हरन जग जाल।
कृपानिधान, सूर की यह गति कासों कहैं कृपन इहिं काल।[3]

(ख) जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँडि ए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भए मुदमगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो ॥[4]

गोप्तृत्व वरण

(क) दीन नाथ अब बारि तुम्हारी।
पतित उधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सँवारी।
बालापन खेलत ही खोयो जुवा विषम रस मातें।

---

१ सूरसागर, १६१
२ विनयपत्रिका, २०४
३. सूरसागर, १२७
४ विनयपत्रिका, १७४

वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोकों, दुखित पुकारत तातें।
सुतनि तज्यो तिय तज्यो, भ्रात तज्यो तन तें त्वच भई न्यारी।
स्रवन न सुनत, चरन गति थाकी, नैन भए जलधारी।
पलित केस, कफ कंठ बिरुध्यो, कल न परति दिन-राती।
माया मोह न छाड़ै तृष्ना, ये दोऊ दुख घाती।
अब यह बिथा दूरि करिबे कों और न समरथ कोई।
सूरदास-प्रभु करुना सागर, तुमतें होइ सो होई॥[1]

(ख) नाथ कृपा ही को पथ चितवत दीन हौं दिन राति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति॥
सगुन, ज्ञान, बिराग, भगति सुसाधननि की पाँति।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ-अवगुननि की थाति॥
अति अनीति कुरीति भइ भुईं तरनि हू तें ताति।
जाउँ कहँ बलि जाउँ? कहूँ न ठाउँ मति अकुलाति॥
आप सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति।
स्यामघन सींचिए तुलसी सालि सफल सुखाति॥[2]

कार्पण्य

(क) नाथ सको तो मोहिं उधारो।
पतितनि में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारो।
बड़े पतित पासंगहु नाहीं, अजामिल कौन बिचारो।
भाजे नरक नाम सुनि मेरो, जम दीन्यो हठि तारो।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करो जिय गारो।
सूर पतित कौं ठौर नहीं, तो बहुत बिरद कत भारो।[3]

(ख) ताहि तें आयो सरन सबेरे।
ज्ञान बिराग-भगति साधन कछु सपनेहु नाथ न मेरे॥
लोभ मोह, मद, काम, क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरे।
तिनहिं मिलेमन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे॥
दोष निलय यह बिषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे।
जानत हू अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥
बिष पियूस सम करहु, अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि पाइहौं हेरे॥

---

[1] सूरसागर, ११८
[2] विनयपत्रिका, २२१
[3] सूरसागर १३१

यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो तुमहि सों बनै निबेरे ॥'

इस तरह राम-कृष्ण ऐक्य, पौराणिक संकेतों, आत्म मालिन्य अनन्यता, दैन्य निवेदन-नाम-माहात्म्य, मधुर उपालभ मे तुलसी-सूर एक तरह हैं। लेकिन बहुत सूक्ष्मता से विचार करने पर पार्थक्य की एकाध रेखाएँ भी उभर कर सामने आती हैं। तुलसी का ध्यान स्तुति पर है। सूर का ध्यान व्याज स्तुति पर। तुलसी ससार की क्षणभगुरता शरीर की अनित्यता, कौटुम्बिक असारता पर अधिक कहते हैं—सूर आत्म निन्दा से अघाते नहीं। तुलसी अपने इष्टदेव की उदारता-महानता-उदात्तता के लिये विशेषणों को प्रस्तुत करते हैं, तो सूर ससार के सारे अपवादों को अपने लिये सुरक्षित करा लेना चाहते हैं। तुलसी अपनी बात कहने मे सकोच का अनुभव करते हैं किन्तु सूर को एकदम झिझक नहीं।

तुलसी और मीरा

तुलसीदास भगवान् रामचन्द्र के शील, शक्ति और सौंदर्य पर मुग्ध होनेवाले दासानुदास भाव के प्रगाढ-भक्त हैं। मीरा भगवान् की अनुपम माधुरी पर सर्वस्व न्योछावर कर देने वाली उत्कृष्टतम उपासिका हैं। मीरा कृष्ण की आराधिका हैं या राम की, उनके ऊपर सगुण मतवाद का प्रभाव अधिक है या निर्गुण मत, उनकी शब्दावली के ऊपर नाथों और कबीर की पदछाप है अथवा नहीं, उन्हें योग-साधना का ज्ञान था या सगुणोपासना का, इसे हमें विवेचित विश्लेषित करना नहीं है। हम इतना ही कहना चाह रहे हैं कि तुलसी के ऊपर जिस प्रकार भक्ति का गहरा रंग चढ़ा था, उसी प्रकार मीरा को हरि की "लगन" लग गई थी और उसी "लगन" के रंग मे वह मृत्युपर्यन्त रंगी रही।

पारिवारिक परिस्थितियाँ

तुलसी के माता पिता ने उनको जन्मग्रहण करते ही परित्यक्त कर दिया। द्वार-द्वार की ठोकर खाने वाले आश्रयहीन तुलसी को किसी लौकिक व्यक्ति की शरण न मिली, आखिर परम पिता परमात्मा ने अपना लिया। इसलिए तुलसी को ससार की कटुता का, उसकी असारता का अनुभव है। मीरा को बाल्यकाल मे ही अपनी माता के स्नेह से वंचित होना पडा। विवाहोपरान्त तो पति और श्वसुर से दुत्कार-फटकार, अपमान-प्रवचना, सूली-हलाहल ही उपलब्ध होते रहे और इसलिए मीरा भी ससार के कण-कण की यथार्थता से पूर्णतया अभिज्ञ हैं। इसलिए तुलसी और मीरा के जगत सम्बन्धी दृष्टिकोण प्राय एक समान हैं।

जगत-संबंधी धारणा

तुलसी कहते हैं—ऐ ससार मैंने तुम्हें जान लिया है। बाहर के कमनीय हो किन्तु भीतर से कुछ नहीं। जैसे कदलीतरु ऊपर से सारयुक्त प्रतीत होता है किन्तु

१ विनयपत्रिका, १८७

भीतर से पूर्णतया निस्सार। तेरे लिए अनेक जन्म लिए लेकिन तुमने बार-बार महा-मोह के मृगतृष्णा-नद में मुझे डुबाया।

मैं तोहि अब जान्यो ससार।
× × ×
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किए बिचार।
ज्यों कदली तरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार।
महामोह मृगजल सरिता महँ बोर्यो हौं बारहिं बार॥[1]

मीरा के लिए यह ससार दुर्बुद्धि का वर्णन है जिसमे साधु सगति अच्छी नही लगती। साधु की निंदा और कुसगति मे मनुष्य पडता है—राम नाम के बिना मुक्ति नही मिल सकती। पुन चौरासी लाख योनियो मे भटकता फिरता है। जैसे तुलसी को अनेक बार जन्म ग्रहण करना पडता है।

यो ससार कुबुधि रो भांडो, साध सगत णा भावाँ।
साधा जणरी निंद्यां ठाणां, करमरा कुगत कुमावाँ।
राम नाम बिनि मकुति न पावा, फिर चौरासी जावाँ।
साध सगत मां भूल णा जावाँ मूरख जनम गमावाँ।[2]

प्रभु-शरण

ससार की असारता का, उसके कुचक्र का जिसे सम्यक् ज्ञान उपलब्ध हो गया वह प्रभु की शरण के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं जा ही नहीं सकता। भक्त को अब उसी जगतपति के चरणों का भरोसा है। तुलसी की अभिलाषा है—

कबहिं देखाइहौं हरि चरन ?
समन सकल कलेस कलिमल, सकल-मगल-करन॥
सरदभव सुदर तरुनतर अरुन बारिज बरन।
लच्छि लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन॥
गग जनक, अनग-अरि-प्रिय, कपट बटु बलि-छरन।
बिप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन॥
सिद्ध सुर-मुनि बृद-बदित सुखद सब कहँ सरन।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन तरन॥
कृपासिधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति हरन।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन॥[3]

---

1 विनयपत्रिका, १८८
2 मीराबाई की पदावली : श्री परशुराम चतुर्वेदी, पद १५६
3 विनयपत्रिका २१८

सचमुच मे इस चरण की इतनी विशेषता है कि इसने न मालूम कितनो का उद्धार किया है तो भला तुलसीदास का इसके दर्शन से कैसे परित्राण नही होगा ? मीरा की प्रभु चरण की ओर उन्मुखता और एकाग्रता भी दर्शनीय है—

(1) मण थे परस हरि के चरण।
सुभग सीतल कवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
इण चरण प्रहलाद परस्यां, इन्द्र पदवी धरण।
इण चरण ध्रुव अटल करस्यां, सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्माण भेद्यां, नखसिखा सिरी भरण।
इण चरण कालिया नाथ्यां, गोपीलीला करण।
इण चरण गोवरधन धार्यो, गरब मघवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण।[1]

चरणो के प्रति भक्त की ऐसी अनुरक्ति हो जाती है कि उसके सिवा अन्य कुछ तीनो लोक और चौदहो भुवनों मे उसका इष्ट हो ही नही सकता। तुलसी को रघुपति के सिवा अन्य किसी की गति ही नहीं है। क्योकि निलज्ज, नीच, दरिद्र के लिए आपको छोडकर और कौन सहारा देगा ? अन्य मालिकों का अभाव ससार मे नहीं है लेकिन वे सब बडे स्वार्थी हैं। तुलसी के लिए बारह वधु और विभीषण रक्षक के सिवा और कोई नही।[2] पुन तुलसीदास बडे जोरदार शब्दो मे कहते हैं कि यदि तुलसीदास यह कहे कि वह रामचन्द्र को छोड किसी अन्य का है तो उसकी जीभ गल जाय। वह उनके सिवा दूसरे का सेवक हो ही नही सकता पक्तियाँ इस प्रकार हैं —

गरैगी जीभ जो कहौं और को हौं।
जानकी जीवन ! जनम जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं॥
तीनि लोक तिहु काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं॥
तुम्हसो कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहो नरक घोर को हौं॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियो भौंतुवा भौंर को हौं॥
तुलसिदास सीतल नित यहि बल बडे ठेकाने ठौर को हौं।[3]

मीरा के भी गिरधर गोपाल को छोड़कर तीनों लोको मे और दूसरे कोई नही हैं। उसने ससार तथा सारे सम्बन्धो को उनके सम्बन्ध के कारण ही छोड दिया है। वह उस सच्चे "प्रीतम" जिसके "सावरे रग" मे रगी हुई है के सिवा अन्य की अपेक्षा नही करती।

---

१ मीराबाई की पदावली परशुराम चतुर्वेदी, पद सख्या, १
२ विनयपत्रिका, १५४
३ वही, २२८

म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरो णा कूयां
दूसरा णां कूयां साधां सकल लोक जूयां
भाया छाड्यां, बन्धा छोड्यां, छाड्या सगां सूयां।
साधां ढिग बैठ बैठ, लोक लाज खूयां
भगत देख्यां राजी ह्यायां जगत देख्यां रूयां
असवां जल सींच प्रेम बेल बूयां।
दूध मथ घृत काढ़ लयां डार दया छूयां
राणा विसरो प्याला भेज्यां, पीय मगण हूयां
मीरा री लगण लग्यां होणा हो जो हूयां ॥[1]

अनन्यता

इसलिए ऐसे प्रियतम का जो आदेश होगा उसे वह सहर्ष स्वीकार करेगी, जहाँ वह बैठा देगा, मीरा वही बैठ जाएगी। अगर बेच दे तो मीरा बिकना भी पसंद करेगी। सावरो ही उसका "उमरण" सावरो ही उसका "सुमरण" तथा सावरो ही उसका ध्यान है।[2] इस तरह तुलसी और मीरा मे भक्ति की अनन्यदशा के दिग्दर्शन होते हैं।

प्रभु की महत्ता

तुलसी अपने प्रभु की महत्ता कभी विस्मृत नही कर पाते। वह अशरण शरण है वह पतितपावन है, अधम-उद्धारक है। वह दलितो का रक्षक है। गज, गणिका, अजामिल, न मालूम कितने शीर्षस्थ पापियो का एव अहल्या, ध्रुव, प्रहलाद जैसे असहायों का उन्होने उद्धार किया है। ऐसा प्रभु तुलसी को कभी-न कभी याद कर लेगा तो उसका भी बेडा पार ही हो जाएगा। उनका कहना है—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतितपावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?
कौने देव बराय बिरद हित हठि हठि अधम उधारे ?
खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप, जड जमन कवन सुन तारे ?
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपन पो हारे ?[3]

मीरा भी ठीक इसी प्रकार की वर्णन पद्धति, इसी प्रकार के पौराणिक सकेतो एव शब्दावली का सबल लेकर अपने भाव व्यक्त करती हैं। मीरा भी अपने को अविनाशी चरण कमल भजने को प्रेरित करती है।[4] क्योकि उसके प्रभु भी ऊँच नीच का

१ मीराबाई की पदावली, पद १८
२ वही, २०, २१
३ विनयपत्रिका, १०१
४ मीराबाई की पदावली, १६५

भेद न मानकर "प्रेम की प्रतीति" जानते हैं। वे पतित पावन हैं।[1] दयालु भी कम नही हैं। *तीन मुगुली तंदुल के बदले उन्होंने अपार-हीरा मोती का दान दिया।*[2] उन्होने अपने जनो की पीर हरण की है। चीर बढाकर द्रोपदी की लाज रखी। भगत हेतु नर शरीर धारण किया। बूडते गजराज को बचाकर आनन्दित किया।[3] इसलिए अब बाँह गहे की लाज मीरा के खातिर भी निभा दीजिए ऐसा वह अपने प्रभु से प्रार्थना करती है। आप 'असरण-सरण" हैं। आपका प्रण पतितो का उद्धार करना है। इस भवसागर मे इनके अतिरिक्त और कोई आधार नही। तुमने युगो से भक्तो की विपदा हरण की है, उन्हे मोक्ष प्रदान किया है। मीरा भी शरण मे आयी है इसलिए शरणागत की लज्जा का निर्वाह तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है।[4] इसलिए हे दीनानाथ जरा पलक उघाड कर मीरा की ओर भी देखो—

> थे तो पलक उघाडो दीनानाथ।
> मैं हाजिर-नाजिर कब की खडी।
> साजनियाँ दुश्मन होय बैठया सबने लगूँ कडी।
> तुम बिन साजन कोई नहीं है, डिगी नाव मेरी समदेउडी।
> दिन नहि चैन रैण नहिं निदरा, सूखूँ खडी खडी॥
> बाण बिरह का लग्या हिये मे, भूलूँ न एक घडी॥
> पत्थर की तो अहल्या तारी, बन के बीच पडी।
> कहा बोझ मीरा मे कहिये, सौ पर एक घडी॥[5]

इस विनम्र दैन्य-प्रदर्शन और मधुर उपालम्भ सिक्त कविता मे मीरा का भक्त हृदय तुलसी की ऊँचाई पर पहुँच गया दीखता है।

नाम-जप

अत तुलसी और मीरा दोनो के लिए प्रभु का नाम-जप, उसका अहरह स्मरण ही सर्वोत्तम साधन है जिसके आधार पर उसे अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है, वशीभूत कर सकता है। तुलसी कहते हैं—

> रामनाम जपु जिय सदा सानुराग रे!
> कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग रे।
> राम सुमिरन सब बिधि ही को काज, रे।
> राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज, रे!
> रामनाम महामनि, फनि जगजाल, रे।

---

१ मीराबाई की पदावली, १८६
२ वही, १८७
३ वही, ६१
४ वही, ६२
५. मीराबाई की पदावली, ११८

मनि बिना फनि जियै व्याकुल बियाल, रे।
राम नाम कामतरु देत चारि, रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि, रे।
राम नाम प्रेम परमारथ को सार, रे।
राम नाम तुलसी को जीवन अधार, रे।[१]

इसी स्वर मे स्वर मिलाती हुई मीरा गा उठती है—

रामनाम रस पीजै मनुआँ, रामनाम रस पीजै।
तज कुसग सतसग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मह कहूँ, वहा चित्त से दीजै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रग मे भीजै॥[२]

इस प्रकार भक्ति-भावना मे उन्मुक्तता एकाग्रता, अनन्यता महत्त्व अप्र्प्य नाम-गुण गान की दृष्टि से तुलसी और मीरा समस्तरीय हैं किन्तु कुसा प्रदर्शन मे तुलसी अधिक मुखर और उत्कट हैं। इसकी जगह पर मीरा के भक्ति पदो मे सहज विश्वास है, प्रेमी भक्त का आग्रह छलकता दीखता है।[३]

तुलसी : भारतेन्दु

तुलसी रामानन्दी वैष्णव भक्त हैं, भारतेन्दु वल्लभसंप्रदाय मे दीक्षित उनके कुल के गीत दास हैं।[४] तुलसी का व्यक्तित्व एकविध है—उनकी समग्र चेतना, समग्र आराधना भगवान राम की ओर उन्मुख हुई है। लेकिन भारतेन्दु के भक्तिकाव्य के कई आयाम हैं—ईशभक्ति, सगुणभक्ति, निर्गुण भक्ति, राम-भक्ति, कृष्णभक्ति, देशभक्ति, शासकभक्ति आदि।

गुरु वदना

तुलसी ने अपने साहित्य मे या भक्ति गीतो मे अपने आचार्य का नाम स्मरण तक नहीं किया है और न तो उस सप्रदाय से सबन्धित पदो का निर्माण किया है। लेकिन भारतेन्दु ने अनेकानेक पदो मे आचार्य वल्लभ का स्मरण कर उनके प्रति अपना हार्दिक विश्वास प्रगट किया है, तथा उस सप्रदाय से सबन्धित पदो का भी सृजन किया है उनके बारे मे भारतेन्दु कहते हैं—

वल्लभनदन भक्ति-भाग प्रगटन वुध बोधक।
भावाश्रय रसपुष्ट विष्णु स्वामी पथ शोधक।
वैष्णवजन मन हरन भक्तकुल कमल प्रकासक।
विद्वन् मडन करन वितराडावाद विनासक।

---

१ विनयपत्रिका, ६७
२ मीराबाई की पदावली, १६६
३ मीराबाई—डॉ० श्री कृष्णलाल, पृष्ठ
४ हम तो मोल लिए या घर के, दास दास श्री वल्लभ कुल के।

विट्ठल विट्ठल सोइ भाखिए सक तजे "हरिचंद" जिमि
तुम नाम पवर्गी पाइकै प्रभु अपवर्गी गति देत कमि।[१]

इस तरह वल्लभाचार्य के प्रशस्ति-गायन एवं महिमा स्थापन के पद चालीस के करीब हैं।[२]

अवतार वर्णन

तुलसी ने भी अवतारो का वर्णन महज एक पद मे किया है किन्तु भारतेन्दु ने विभिन्न अवतारो का वर्णन लगभग ५७ पदो मे किया है।

तुलसी अपने इष्ट को छोड अन्य कहीं उलझते नहीं, अवतारो की चर्चा प्रसगवश[३] या प्रसगातर मे आ गई है लेकिन भारतेन्दु ने इस पर अधिक सतर्कता बरती है।

समन्वयवादिता

तुलसी समन्वयवादी हैं। "हरिशंकरी पद"[४] या अन्य पद इसके उदाहरण स्वरूप उपस्थित किए जा सकते हैं। भारतेन्दु के कत बहुरुपिया हैं।[५] आप न्यारा रहकर जग को वेश बदलकर ठगना चलता है। राम कृष्ण, महावीर, बुद्ध, शाक्त-शैव का भेद व्यर्थ है। इसलिए वे कहते हैं—

नहि इन झगडन मे कछु सार।
क्यों लरि लरिकै मरो बावरे बादन फोरि कपार
कोड पायो कै तुमही पै हो सो भाखो निरधार
"हरीचद" इन सब झगडन सों बाहर है वह यार।[६]

इस तरह जैन कुतूहल के ३६ पदो मे भारतेन्दु ने सारे मत मतान्तरो के समन्वय की चेष्टा की है। वह प्रिय केवल प्रेम के द्वारा प्राप्त हो सकता है। न ज्ञान की आवश्यकता है, न ध्यान की, न कर्म की और न व्रत की। महाभारत, रामायण, मनुस्मृति तथा वेदो मे उसका मिलना सभव नहीं। झगडे और मतवाद मे भी वह मिल नहीं सकता। उसके लिए न मंदिर चाहिए, न पूजा और न घन्टा ध्वनि। सबकी प्रीति की डोर मे बधकर वह डोलता फिरता है।[७]

रामकाव्य

तुलसी की परम्परा मे भारतेन्दु ने रामकाव्य भी लिखा है। रामनगर की रामलीला से अनुप्रेरित होकर भारतेन्दु ने "श्रीरामलीला" नामक एक लघु चपू का

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली, अपवर्ग पचक, पृष्ठ ७५६
२ वही, अपवर्ग अष्टक
३ विनयपत्रिका पद ५२
४ विनयपत्रिका, ४९
५ जैनकुतूहल १६, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ १३७
६ " २८, वही, पृष्ठ १४०
७ " १३, वही, पृष्ठ १३६

प्रणयन किया। ग्यारह पृष्ठों की यह रचना बाल और अयोध्या इन दो काडों की कथा को ही आयत्त करती है। बालकाड के अतर्गत जन्म, जनकपुर पर्यटन पुष्प-वाटिका प्रसग, धनुर्यज्ञ, विवाह, बारात जेवनार तथा नगर वधुओं का गाली देना वर्णित है। "गीतावली" मे तुलसी ने गाली वाले अमर्यादित प्रसग को छोड दिया है।

अयोध्या काड मे राम वियोग वर्णित है। श्री रामचन्द्र के वनगमन करते ही करुणा रस का समुद्र उमड चला। ६ पदों मे भारतेन्दु ने विरह विद्ध व्यक्तियों की अनुभूतियों को वाणी दी है।

राम बिन सब जग लागत सूनो।
बिनु हरि पद रति और बादि सब जनम गँवावत रीतैं।
नगर भूरि धन धाम काम सब धिक्धिक बिमुख जौन सियपीतैं।
"हरीचद" चलु चित्रकूट भजु भव भय बाधक चीतैं।[1]

राम के वियोग मे तुलसी की कौशल्या कहती हैं—

कैकयी करी धौं चतुराई कौन ?
राम लखन सिय बनहि पठाए, पति पठए सुरभौन।
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन तन दौन।
सुरबासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहूँ तो देखति हौं न।
कौसल्या दिन रात बिसूरति बैठि मनहि मन मौन।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गये सग जौन।।[2]

भारतेन्दु ने मिथिला यात्रा के उपरान्त श्री सीतावल्लभस्तोत्र की रचना की। ३० श्लोकों मे जानकी, माडवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, सुनयना, जनक विश्वामित्र आदि की स्तुतियाँ हैं। जगज्जननी सीता के प्रति ये उद्गार बडे प्रगाढ दीखते हैं।

खादन् पिबन् स्वापन् गच्छन् स्वसन्स्तिष्टन् यदातदा।
यत्र तत्र सुखे दुःखे सीतैव स्मरणे स्तु मे।
रात्रौ सीता दिवा सीता सीता गृहे वने।
पृष्ठ अग्रे पार्श्वयो सीता सीतैवास्तु गतिर्मम्
इद सीता प्रिय स्तोत्र श्री रामप्रीति वल्लभम्
श्री हरिश्चन्द्रजिह्वाग्रे स्थित्वा वाराया विनिर्मिताम्
य पठेत् प्रातरुत्थाय साय वा सुसमाहित
भक्तियुक्तो भावपूर्ण स सीतावल्लभो भवेत्।[3]

---

१. भारतेन्दु ग्रथावली, पृष्ठ ७८०
२. तुलसी ग्रथावली, गीतावली, २, ८३
३. सीतावल्लभ स्तोत्र, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ७६६

राम-स्तुति

इसके अतिरिक्त राग-संग्रह में रामकाव्य के अंतर्गत विनय के पद हैं। श्रीरामनवमी और दशहरा के अवसर पर गायन के लिए भारतेन्दु ने इसकी रचना की थी। पद इस प्रकार है—

जयति राम अभिराम छवि धाम
पूरन काम श्याम बपु बाम सीता विहारी।
चंड-कोदंड बल खंड कृत दनुज बल
अनुज सह सहज सुभ रूपधारी।
रसकुल अनल बल प्रबल पर्जन्य सम
धन्य निज जन पक्ष रक्षकारी।
अवध भूषन समर बिजित दूषन
दुष्ट बिगल दूषन चतुर धर्मचारी।
स्वर प्रखर अगिनि लंक दृढ़ दुर्ग
दल सलमलन वाहुमारीच मारी।
वंशवन अनुज घट-श्रवन रावन शमन
शमन मय-दमन, "हरिचंद" वारी।[1]

तुलसी ने भगवान् राम की स्तुति विभिन्न पदों में की है। एक पद इस प्रकार है—

जयति सच्चिद्व्यापकनंद परब्रह्म विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
बिकल ब्रह्मादि सुर-सिद्ध संकोचवश विमल गुण-गेह-नरदेहधारी।
जयति कोशलाधीश-कल्याण, कोशलसुता कुशल, कैवल्य फल-चारु चारी।
वेदबोधित कर्म-धरणी-धेनु-विप्र सेवक-साधु मोदकारी॥
जयति ऋषि-मख पाल, शमन सज्जनसाल, शापवश-मुनिवधू-पापहारी।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी॥
जयति धार्मीक धुर धीर-रघुवीर[1] गुरु मातु पितु बंधु-बचनानुसारी।
चित्रकूटाद्रि विंध्याद्रि दंडकविपिन-धन्यकृत, पुन्यकानन-विहारी॥
जयति पाकारि सुत काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त गोपित विराधा।
दिव्य-देवी बेष देखि लिखि निशिचरी जनु बिडंबित करी विश्वबाधा॥
जयति सर निशिर दूषण चतुर्दशसहस सुभट-मारीच संहारकर्त्ता।
गृध्र-शबरी भक्ति विवश करुणासिंधु, चरित निरुपाधि त्रिविधार्ति हर्त्ता॥
जयति मद अंध कुकबंध बधि, बालि-बलशालि बधि, करण सुग्रीव राजा।
सुभट-मर्कट-भालु कटक संघट सजत नमत पद रावणानुज निवाजा॥

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ४५१, रागसंग्रह, ३६

जयति पायोधि-कृत सेतु कौतुक-हेतु, काल मन-अगम लई ललकि लंका।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रण, लोक-लोकप किए रहित शंका ॥
जयति सौमित्र सीता सचिव सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी।
दास तुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप, बैदेहि रानी ॥[1]

राधा-कृष्ण-प्रेम

लेकिन भारतेन्दु का मन सूर की तरह राधा-कृष्ण के प्रेम मे अधिक रमता है। उन्होने अपनी पदावली के सर्वाधिक अश मे राधा-कृष्ण प्रेम, पूर्वराग, उपालभ, युगल विहार, प्रवास आदि का वर्णन किया है। कृष्ण के मथुरा-प्रवास पर गोपियो की दशा का भारतेन्दु ने बडा सुन्दर चित्र खीचा। बेचारे उद्धव तो गोपियों के आडे हाथो पडे हैं। गोपियां उद्धव से कहती हैं—

ऊधो जो अनेक मन होते।
तो इक श्यामसुन्दर को देते इक लै जोग सजोते।
एक सों सब गृह-कारज करते इक सों धरते ध्यान।
एक सों स्याम रग रगते तजि लोक लाज कुल कान।
को जप करै जोग को साधै को पुनि मूँदे नैन।
हिये एक रस स्याम मनोहर मोहन कोटिक मैन।
ह्यो तो हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई।
'हरीचद" कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई।[2]

शुद्ध विनय की दृष्टि से

लेकिन इन पदो को छोडकर ऐसे पद सख्या मे पौने दो सौ के लगभग हैं जो विशुद्ध विनय के हैं जिनमे अनुनय, दैन्य आदि का प्राधान्य है। ये पद सूर के विनय सम्बन्धी पदो एव तुलसी की विनयपत्रिका की परम्परा मे है।[3] इन पदो मे भारतेन्दु ने अपने को सब ओर से हटाकर ईश्वराधन ही अपना अभीष्ट समझा है। ये पद भारतेन्दु ग्रथावली में विभिन्न शीर्षकों के अतर्गत बिखरे पडे हैं।[4]

ससार की क्षणभगुरता

गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि मे यह जग आकाश मे प्रफुल्लित वाटिका के समान मिथ्या है। धूम के महल की तरह क्षणभगुरता एव छलने वाला है।[5] ससार

---

१ विनयपत्रिका, ४३
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ६५, प्रेममालिका, ६८
३ भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि—किशोरी लाल गुप्त, पृष्ठ ५?
४ विनयप्रेम पचासा, प्रेमफुलवारी, प्रेममालिका, प्रेमप्रलाप, कृष्णचरित, रागसग्रह, स्फुट कविताएँ, दैन्य-प्रलाप, उरहना शीर्षक में
५. विनय० ६६

के और सम्बन्धों को ऐसा ही समझना चाहिए जैसे बादल मे बिजली।[1] भारतेन्दु की दृष्टि मे यह ससार भी चार दिनो का मेला है। यह ससार एक सराय है जिसे ईश्वर की भठियारी माया ने बनाया है। यह पद देखें—

हरि माया भठियारी ने क्या अजब सराय बसाई है।
जिसमे आकर बसते ही सब जग की मति बौराई है।
होके मुसाफिर सबने जिसमे घर सी नेंव जमाई है।
भांग पड़ी कुएं मे जिसने पिया बना सौदाई है।
सौदा बना भूर का लड्डू देखत मति ललचाई है।
खाया जिसने वह पछताया यह भी अजब मिठाई है।
एक एक कर छोड रहे हैं नित नित खेप लदाई है।
जो बचते सो यही सोचते उनकी सदा रहाई है।
अजब भंवर है जिसमे पडकर सब दुनिया चकराई है।
"हरीचद" भगवत भजन बिनु इससे नहीं रिहाई है।[2]

मन की स्थिति

तुलसी अपने मन के बारे मे कहते हैं कि वह अपना हठ नही छोडता। प्रत्येक दिन लाख समझाने पर भी अपने स्वभाव के अनुसार ही आचरण करता है। जिस प्रकार युवती प्रजनन काल मे अत्यत कष्ट का अनुभव करती है, और अपने पति के पास न जाने की दृढप्रतिज्ञ होती है लेकिन पुन वह मूर्खा उसी के निकट पहुँचती है। जैसे लोलुप श्वान जहा जाता है वहीं जूते खाता है लेकिन फिर भी उसी रास्ते भटकता है। यही दशा उस मन की है। लाख दुख-कष्ट पीडन प्राप्त करने पर भी अपनी आदत नही छोडता। पद इस प्रकार है—

मेरो मन हरि ! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ ! देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाव निजै ॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यो जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ लजै ॥
हौं हारयो करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै।
तुलसिदास, बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥[3]

भारतेन्दु के मन की भी यही स्थिति है। उसे कहीं विश्राम नही है। तृष्णातुर इधर-उधर दौडता फिरता है।

१ विनयपत्रिका, ७३
२ विनयप्रेम,पचासा, पद स० ४२
३ वि० प० पद ८८

मन मेरो कहुँ लहत विश्राम।
तृष्णातुर धावत दूर तें उत पावत कहुँ नहिं ठाम।
कबहुँक मोह-फांस मे बांध्यो धन-कुटुम्ब मूल जो है।
तिनहुँ सो जब लहत अनादर तब व्याकुल ह्वै मोहै ॥[1]

इसलिए सारी उम्र रोते-रोते बीत गई ऐसा भारतेन्दु कहते हैं—

बैस सिरानी रोअत रोअत।
सपनेहुँ चौंकि तनिक नहिं जाग्यौ बीति सबही सोअत।
गई कमाई दूर सबै छन रहे गाँठ को खोजत।
औरहू कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोअत।
स्वाद मिलो न मजूरी को सिर टूट्यौ बोझा ढोअत।
"हरीचद" नहिं भर्‌यौ पेट पै हाथ जरे दोउ पोअत।[2]

तुलसीदास की भी यही दशा है—

ऐसेहि जन्म समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल-साने।
सूखत बदन प्रसंगत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने ॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पांय पिराने।
सदा मलीन पथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ॥
यह दीनता दूरि करिबे को अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥[3]

नाम-स्मरण

इसलिए तुलसी अब भगवान नाम स्मरण पर ही अपने को आश्रित कर देना चाहता है। मात्र एक ही साधन से सारा अघ वृन्द तिरोहित हो जाता है।

रुचिर रसना तू राम राम क्यों न रटत।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ अमंगल घटत ॥
बिनु स्रम कलि-कलुष जाल कटु करास कटत।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर तोम फटत ॥
जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ अटत।
बाधिबे को भवगयद रेनु की रजु बटत ॥

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ६१४, कृष्णचरित, पद ३०
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ५४२ (विनयप्रेमपचासा, १८)
३ विनयपत्रिका, २३५

परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत ॥[1]

इसी स्वर में स्वर मिलाकर भारतेन्दु कहते हैं —

रसने रटु सुन्दर हरिनामा।
मगल करन हरन सब असगुन करन कल्पतरु काम।
तू तो मधुर सलोनो चाहत प्राकृत स्वाद मुवाम।
"हरीचद" नहि पान करत क्यों कृष्ण अमृत अभिराम।[2]

मधुर उलाहना

लेकिन भक्त जब अपने को पूर्णतया अपने भगवान के प्रति उत्सर्ग कर देता है फिर भी उसके कष्टों का अत नहीं होता, उसकी दुख रात्रि कटती नहीं, उसे उसका आराध्य अपनाता नहीं वरन् दुरकारता चलता है। इसलिए कभी-कभी भक्त मधुर उलाहना देता है मैं बड़ा पतित हूँ इसलिए तुम्हें पतितपावन जानकर तुम्हारी शरण में आया हूँ—देखें तुम अपने पतितपावन विरद् का निर्वाह करते हो अथवा नहीं?

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने।
व्याध, गनिका, गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने।
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राखिये आपने ॥[3]

भारतेन्दु ने कौन-सा कसूर किया जो अब तक ढील दिया जा रहा है—

हम में कौन कसर पिय प्यारे।
अजामेल में का अवगुन जे नहि तन माँहि हमारे।
जानो और पतित के माथे सींग रहो ह्वै भारी।
ता बिन हमहिं देखि नहिं तारक वृंदा बिपिन बिहारी।
जो पापहि करिबे भों जग मे जीव पतित कहवावैं।
तो हमसो बढ़ि कै कोउ नाहीं को मेरी सरि पावै।
कछु तो बात होइ है जासो तारत हम कहे नाहीं।
बाहीं तो "हरीचद" पतित पति ह्व हम क्ति बचि जाहीं

१ विनयपत्रिका, १२६
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ५७, (प्रेममालिका ३६)
३ विनयपत्रिका १६०
४ भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ८३६, स्फुट कविताएँ २७

भगवान पर आस्था

लेकिन भगवान तो भक्त वत्सल हैं वे तो कभी अपनाएँगे ही इसी आस्था से भक्त कहता है—

जो पै हरिजन के अवगुन गहते।
× × ×
जो सुतहित लिये नाम अजामिल के अमित न दहते।
तौ जमभट साँसति हर हम से वृषभ खोजि खोजि नहते।
जौ जग विदित पतित-पावन अति बाँकुर विरद न बहते।
तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से सपनेहुँ सुगति न लहते।[1]

भारतेन्दु कहते हैं—

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी॥
जो ऐसो सुभाव नहिं हो तो क्यों अहीर कुल भायो।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा-हार धरायो॥
कीट मुकुट सिर छोडि पखौआ मोरन को क्यों धार्यो।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यों स्वाद बिसार्यो॥
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस।
जग-निंदित "हरीचन्दहु" को अपनावहिंगे करिदास।[2]

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतेन्दु ने तुलसी के भक्ति-गीतो की परम्परा मे अपने को स्थापित किया है। इदन्तया तथा इयत्तया उत्कर्षापकर्ष का अंतिम निर्णय देना उतना सरल नहीं।

तुलसीदास और निराला

तुलसीदास-साहित्य मे जितनी सामाजिक चेतना जन-जीवन की प्रतिच्छाया, मानवरूपों की सम-विषम राग-रागिनी, क्रान्तिकारिता एव क्रान्तिदर्शिता उपलब्ध होती है उतनी निराला को छोड़कर हिन्दी के किसी अन्य कवि की कृतियो मे कदापि नहीं परिलक्षित होती है। लेकिन यह भी अविवाद्य ही है कि तुलसी और निराला प्रवृत्तया और मूलतया भक्त हैं। यह नहीं विचार करना है कि भक्तिभाव के क्षेत्र मे किसने पहले पदार्पण किया, किसने बाद मे, किन्तु दोनो के अधिकाश गीतो मे भक्ति की मदाकिनी प्रवाहित होती है।

वैयक्तिक जीवन

तुलसी को अबोध बचपन से ही द्वार द्वार बिलखना पड़ा। घना के बार

---

[1] विनयपत्रिका, ९७

[2] भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ४७८, प्रेम फुलवारी, ६

दानो को चतुर्फल की तरह स्वीकार करना पडा।[1] जब माता-पिता ने छोड दिया विधि ने भाल में कुछ भलाई नही लिखी तो बेचारे के भौतिक दुख के पारावार का क्या कहना?[2] निराला भी बाल्यकाल से जीवन-रण मे जूझते रहे और अत मे पराजय ही मिली।[3] सरोज के निधन ने तो उन्ह और भी हतदर्प-हतप्रभ कर दिया। बडी पीडा के साथ उन्होने लिखा है—

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो न कही।[4]

सचमुच इस भग्न तन, रुग्ण मन और विपण्ण जीवन से क्या होने वाला है। दह क्षीण क्षीण हो गई। गेह जीर्ण है। प्रलय मेह घिर आए हैं। हाथ चलता नही और कोई साथ देता नही इसलिए वह विनत माथ होकर प्रभु की शरण मे उपस्थित हुआ है।[5]

यह स्थिति ठीक तुलसी की स्थिति है। सब ओर से द्वार बन्द देखकर, हताश निराश होकर प्रभु की शरण मे आ गया है। इसलिए वे कहते हैं—

जयति वैराग्य विज्ञान-वारांनिधे नमननमद पाप ताप हर्त्ता।
दास तुलसी चरण शरण सशयहरण देहि अवलम्ब वैदेहि भर्त्ता॥[6]

तुलसी ने अनेकानेक देवी-देवताओ, तपपूत सरिताओ एव तीर्थ स्थानो का स्तवन इसलिए किया है कि उन्ह राम-भक्ति का अनुपम वरदान मिल जाय।[7] निराला ने भी सुरसरि[८]-स्तवन एव वाणी-वदन[९] किया है लेकिन उन्होंने किसी से भी राम भक्ति का उल्लेख तक नही किया। तुलसी ने अनेकानेक देवो की स्तुति कर, राम से अभिन्न दिखलाकर, पुन राम को सर्मोपरि सिद्ध किया जो अनन्य भक्ति का उत्कृष्टतम अभिसाध्य है।[10] निराला ने भी अनेको बार नामोच्चारित किया। उन्होंने कृष्ण-कृष्ण, राम-राम हजार नाम जपे हैं।[11] उन्होन काम-प्रशमन राम तथा अरि-दल-दलन कारि शकर की एक साथ स्तुति की है।[12] इस पद में तो शिव-विष्णु, कृष्ण तथा राम

---

१ कवितावली ७ ७३
२ वही, ७, ५७
३ हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार—अनामिका
४ अनामिका, सरोज-स्मृति
५ आराधना, गीत सख्या, ६२
६ विनयपत्रिका, पद ४८
७ विनयपत्रिका, १, २ आदि
८ अचना
९ गीतिका १
१० विनयपत्रिका ४, ६३, १३१, ३
११ आराधना १२
१२ अचना १००

सबको समन्वित कर दिया गया है—

जय अजेय, अप्रमेय।
जग जग के परम पार।
जय जीवों के जप के।
तप के तनु सूत्रधार।
गरल-कंठ हे अकुण्ठ
बैठक बैकुण्ठ धाम।
जय जय शिव, जय विष्णु विष्णु
शंकर, जयकृष्ण राम
शतविध नामानुबन्ध
बाधव हे निराकार।
जय अजेय अप्रमेय
जग जग के परम पार।[1]

किन्तु जिस प्रकार तुलसी ने राम के प्रति अपने भक्ति पूरित हृदयोद्गार समर्पित किए हैं—ठीक उसी तरह निराला ने राम के चरणों में ही अपनी द्रवित आस्था का अर्घ्यदान दिया है। वे कहते हैं—

अशरण-शरण राम
काम के छवि धाम।
ऋषि मुनि मनोहंस
रवि वंश, अवतंस
कर्मरत - निश्शंस
पूरो मनस्काम।[2]

भक्त और भगवान्

ऐसे भक्ति-परक गीतों के सृजन के मूल में कुछ सर्वश्रेष्ठ भावनाएं बीजरूप में अंकुरित होती हैं कि उनका आराध्य सर्वश्रेष्ठ है, सर्ववंद्य है और वह सर्वनिकृष्ट एवं सर्वोपेक्षित। अगर उसका स्वामी अकलुष पावन धवल है तो वह पाप-कर्दमित, अपावन-मलिन। लेकिन जहाँ तुलसी के भगवान और भक्त का अन्तराल हिमालयवत् है वहाँ निराला के भगवान और भक्त की मध्यरेखा अपेक्षाकृत लघु। तुलसी ने ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध की भी चर्चा की है और निराला ने भी लेकिन वहाँ भी वैभिन्य स्पष्ट है।

---

1 आराधना, ६७
2 आराधना, ४८

तुलसी की धारणा है—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं, भिखारी
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी।[1]

× × ×

हौं जड़ जीव, ईस रघुराया
तुम मायापति, हौं बस माया
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता
हौं कपूत, तुमहीं पितु माता।[2]

निराला की उक्ति है—

तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति, प्रेम-जंजीर
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति[3]

प्रभु प्राप्ति के अनेक साधन

तुलसी ने प्रभु-प्राप्ति के कई साधन बतलाए हैं। ये ज्ञान भक्ति नामक साधन मान्य हैं, झूठ नहीं लेकिन प्रभुकृपा सर्वोपरि है।[4] पुनः वे रघुपति को सर्वाधिक सुलभ एवं हितकारी बताकर उनकी भक्ति करने की सीख देते हैं।[5] निराला भी भक्ति योग कर्म, ज्ञान सबको एक ही मानते हैं। लेकिन फिर भी उनके प्रभु ने भक्ति के भावनामय प्रेम पिपासुओं को अतिशय पवित्र से वात्सल्य प्रेम का उपदेश दिया।[6]

सत्संग की महत्ता

भक्ति के साधन के रूप में सत्संग का बड़ा महत्व है। तुलसी तो सत्संग के बिना भक्ति का होना मानते ही नहीं।[2] निराला भी सत्संग की कामना करते हुए कहते हैं—

दो सदा सत्संग मुझको
अनृत से पीछा छुटे
तन हो अमृत का रंग, मुझको।

---

१. विनयपत्रिका ७९
२ वही, १७७
३ परिमल, पृष्ठ ८६
४ विनयपत्रिका ११६
५ विनयपत्रिका १३६, १०
६ परिमल, पंचवटी, प्रसंग
७ अर्चना, २१

× × ×

शान्त हों कुल धातुएँ ये
बहे एक तरंग
रूप के गुण गगन चढ़कर
मिलूं तुमसे, ब्रह्म[१]

प्रभु की अपरिमित शक्ति

तुलसी का प्रभु अशरण शरण है, काम क्षरण है। वह मायाभंजक है। वह चाहे तो जगत के सारे क्लेश दूर हो जाए, वह चाहे तो षड्विकारों को हर ले। वह ऐसा पतितपुनित और दीनहित है कि उसके खग, गणिका, गज-व्याध का पाप-प्रक्षालन कर दिया। तुलसी को इस काम ने बड़ा सताया है और वह चाहे तो उसका कष्ट समाप्त हो जाय।[२] कलियुग में राम नाम कल्पवृक्ष है। वह दारिद्रय, दुर्भिक्ष, दुख-दोष, सांसारिक घन-घटा तथा ताप-संताप का विनाश करने वाला है।[३] प्रभु की माया ऐसी है कि लाखों उपाय करके पच मरो, लेकिन जब तक उसकी कृपा नहीं होती तब तक इसके पार जाना असंभव है।[४] तम, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध, अज्ञान तथा काम अति उपद्रव करते हैं और तुलसी को अनाथ जानकर मरदने की चेष्टा करते हैं।[५] वह जरा डॉट-डपट दे तो फिर इन तस्करों का कुछ न चलेगा।

निराला भी अशरण-शरण हैं, इसलिए भगवान् से हाथ गहने की प्रार्थना करते हैं।

दुरित दूर करो नाथ
अशरण हूँ, गहो नाथ।[६]

× × ×

भग्न तन, रुग्न मन
जीवन विषण्ण बन

× × ×

चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दोषरण।[७]

---

१ विनयपत्रिका ६४
२ वही, २४७
३ वही, २५६
४ विनयपत्रिका ११६
५ वही, १२५
६ अर्चना ६
७ आराधना, १४

प्रभु कामरूप हैं—इसलिए काम रहने की प्रार्थना करता है—

काम रूप,हरो काम
जपूँ नाम, राम-राम ।[1]

पुन माया-खडन के लिए कह उठते हैं—

भव सागर से पार करो हे
गह्वर से उद्धार करो हे ।
× × ×
रहूँ कहीं मैं न ठौर न पाकर
माया का सहार करो हे ।[2]

निराला को भी ये शत्रु समुदाय छोडते नही और इससे उद्धार की कामना भी इन पक्तियो मे है—

मानव का मन शात करो हे
काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ से
जीवन को एकात करो हे ।[3]

मुक्ति कामना में अन्तर

भगवान के भक्त चार-प्रकार (अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी) के तथा पुण्यात्मा और उदार हैं ।[4] *किन्तु राम के सच्चे उपासक मुक्ति की कामना नहीं* करते । मुक्ति के अनेक पथ, अनेक उपाय हैं किन्तु तुलसी दिन रात राम का भजन करना चाहता है ।[5] उसने कही भी स्पष्ट शब्दो मे मुक्ति की याचना नही की । लेकिन निराला भव सागर पार कर देने के लिए लालायित उत्कठित दीख पडते हैं—

तरणि तार दो
अपर पार को
खे-खेकर थके हाथ
कोई भी नहीं साथ
श्रम शीकर भरा माथ
बीच धार मो ।[6]

---

१ अर्चना ७
२ अर्चना ७
३ ,, ४८
४ रामचरितमानस १, २१, ३
५ विनयपत्रिका १६२
६ अर्चना ७२

इष्ट पर अखंड विश्वास

अपने इष्ट के प्रति विश्वास की मात्रा तुलसी और निराला में प्राय एक समान है। तुलसी को भी विश्वास है कि इतनी भक्ति के पश्चात् उनका आराध्य उसे ठुकरायगा नहीं और अंत में उसने अपनी अर्जी पर सही करा ही ली।[1] निराला कहते हैं—

> तुम ही हुए रखवाल
> तो उसका कौन होगा ?
> फूली-फली तरुडाल
> तो उसका कौन होगा ?[2]

इस तरह तुलसी और निराला हरि-भजन को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान लेते हैं—

> सुमिरु सनेह सों तू नाम रामराय को
> सबर निसबर को, सखा असहाय को[3]
> हरि भजन करो भू भार हरो।[4]

इस प्रकार *विनयपत्रिका तथा अर्चना-आराधना तथा गीतगुंज* के भक्तकवि भाव की पीन-धारा में एक प्रकार बहते दीखते हैं। क्या आशा, क्या विश्वास, क्या दर्शन, क्या आचार—दोनों का धरातल एक सम है। किन्तु तुलसी का ध्यान स्वदोष-कथन पर अधिक है, प्रभु के महात्म्य-वर्णन पर अधिक है, वहाँ निराला का ध्यान अपनी असहाय अवस्था और व्यक्तित्व उद्घाटन पर अधिक है। तुलसी ने अपने को दुत्कारा फटकारा बहुत है लेकिन निराला ने उतना नहीं। तुलसी में अनन्यता पराकाष्ठा का स्पर्श करती है तो निराला में विशुद्ध वेदना का औदात्य सीपबिंदु पर प्रतिस्थापित है।

अब तक हमने तुलसी के भक्त्यात्मक गीतों की तुलना तुलसी के पहले और बाद के विशिष्ट कवियों के भक्त्यात्मक गीतों से की है। यहाँ तुलसी की अपनी कृतियों का पारस्परिक विवेचन हमारा उद्देश्य है। विषय एक रहने पर भी काव्यरूप की भिन्नता के कारण जो परिवर्तन उपस्थित हुआ है—इसका समीक्षण आगे हम कर रहे हैं।

विनयपत्रिका तथा गीतावली

उत्स एक, शैली भिन्न

विनयपत्रिका तथा गीतावली दोनों तुलसीदास के ही गीत-ग्रंथ हैं। दोनों की

---

१ विनयपत्रिका २७९

२ अर्चना, ४६

३ विनयपत्रिका ६६

४ आराधना ५१

भक्तिभावना, दर्शन, भावधारा एवं रचना पद्धति एक समान है। किन्तु विनयपत्रिका विशुद्ध गीतिकाव्य है तो गीतावली कथात्मक गीतिकाव्य। विनयपत्रिका में तुलसी का उत्तम पुरुष अभिव्यक्ति है तो गीतावली में अन्यपुरुष। विनयपत्रिका में कवि ने अपने हृदय की सारी भक्ति को नारंगी की फाँक की तरह निचोड कर रख दिया है किन्तु गीतावली में प्रभु जीवन से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं को स्वयमानुभूत जैसा कवि ने उसे वर्णन किया है। विनयपत्रिका में कवि के सामने प्रभु का भक्तवत्सल रूप, तारण-तरण रूप ही अधिक स्पष्ट है। किन्तु गीतावली में उनके प्रभु का विश्व-मोहक सौंदर्य ही चित्रित हो पाया है।

इस प्रकार सूक्ष्म भावधारा पर विचार करने पर दोनों में ईषत् अंतर दीख पडने लगता है। गीतावली के अधिकांश पद विनयपत्रिका के पदों से इसलिए तुलनीय हो सकते हैं कि दोनों का मूलाधार भक्ति ही है भले एक में त्वम् प्रधान है तो दूसरे में अहम्। वैसे तो गीतावली के कुछ पद विनयपत्रिका के पदों के समान ही भक्त्यात्मक गीतों में सहजता से परिगणित किए जा सकते हैं। ये पद हैं सुन्दर काड के २५ वें पद से ४६ वें पद तक। यानी इन २२ पदों में विभीषण शरणागति को कवि ने बडे मनोयोग से उपस्थित किया है।

विभीषण-शरणागति और तुलसी का आत्म-निवेदन

इन गीतों और विनयपत्रिका के गीतों में इतना ही अंतर है कि एक का निवेदक विभीषण है और दूसरे का तुलसीदास। भक्तिभावना की दृष्टि से तुलसीदास और विभीषण में कोई अंतर है भी नहीं। ये दोनों आर्त्त एवं निष्काम भक्त हैं। आर्त इसलिए कि विभीषण रावण के सताये जाने पर भगवान् की शरण में आता है, तुलसी कलिकाल रूपी रावण से पीडित होने पर राम की शरण में आते हैं। निष्काम भक्त इसलिए कि प्रभु पदपंकज को देखते ही उसका दुःखदोष दूर हो गया तथा मन में कोई साध रही नहीं।[1] अगर कोई साध मन में रही तो वह प्रभु की चरण सेवा ही। इसी प्रकार तुलसी को अर्थ या मुक्ति कुछ नहीं चाहिए वरन् उन्हें राम की भक्ति मिले, भगवान के पाद-सेवन मात्र का अधिकार मिल जाय। इसलिए विभीषण और तुलसी का पार्थक्य बाह्य है, आंतरिक नहीं। तुलसी ने विनयपत्रिका की अपनी भक्ति भावना ही गीतावली में विभीषण पर प्रक्षेपित की है।

मेरी यह स्थापना और स्पष्ट हो जाएगी जब हम गीतावली के इन पदों में से थोडे पदों की भावधारा की तुलना विनयपत्रिका के पदों से करें।

(१) भगवान् राम माया-जीव, जगत्-जाल, स्वभाव, कर्म और काल-सबके शासक हैं। जो सब में व्याप्त हैं, जिसमें सब स्थित हैं तथा जिनके नाम का ब्रह्मा जैसे रचयिता, विष्णु जैसे पालक और शंकर जैसे संहारक जपते रहते हैं।[2] इसी

१. गीतावली ५, ३१

२ वही, ५, २५

प्रकार का भाव विनयपत्रिका के १३५ वें पद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई
सोइ जानकी पति मूरति मोदमय मंगल मई।

(२) राम और शिव में कोई विरोध नहीं। सुमेरु पर्वत पर महादेव जी ने ही विभीषण को बतलाया कि तुम भगवान राम की शरण में जाओ। उनका नाम ही क्लेश रूप सागर को सोखने के लिए अगस्त्य ऋषि के समान है। विनयपत्रिका के ८६ वें तथा अन्य पदों में यह भाव अनुस्यूत है।

(३) प्रभु को छलछिद्र भाता नहीं। जो भक्त निष्कपट भाव से उनकी शरण में पहुँच गया उसका उद्धार ध्रुव है। वे अवढर दानी तथा आशुतोष हैं।[१] उनके सदृश दीनों का रक्षक संसार में कोई नहीं।[२] वे सकोची इतने हैं कि जिस राज्य को रावण ने करोड़ों बार अपने सिर कटाकर पाया था उसी राज्य को उन्होंने विभीषण को अनवसर का अतिथि जानकर तृणासन के समान लज्जित होकर दिया।[४] उनके नाम की महत्ता का कहना ही क्या। एक बार नाम लेने से कितने पापियों का बेड़ा पार हो गया।[५] इस प्रकार के कार्पण्य से पूर्ण पदों की संख्या विनयपत्रिका में इतनी अधिक है कि समता प्रदर्शन के लिए उन्हें उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

गीतावली के कुछ पद तो ऐसे हैं कि उनको अगर विनयपत्रिका में सम्मिलित कर लिया जाय तो कभी भी प्रक्षेप जैसा नहीं दीख पड़ेंगे। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। इस कथन के समर्थनार्थ कुछ पद उद्धृत किए जाते हैं—

(१) गये राम सरन सबको भलो।
गनी-गरीब, बड़ो छोटो, बुध, हलोबल अति बलो।
पगु अंध निरगुनी निसलब जो न लहै जाँचे जलो।
सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चलो।
नाम-प्रताप दिवाकर कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुत हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल सो खलो।
प्रभुपद प्रेम प्रनाम काम तरु सद्य विभीषन को फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ जल थलो।[६]

१ गीतावली ५, २७
२ वही, ५, ४१
३ वही, ५, ३८
४ वही, ५, ३८
५ गीतावली ५, ४०
६ गीतावली ५, ४१

(२) सुजस सुनि स्रवन हौं नाथ । आयौं सरन ।
उपल केवट गीध सवरी ससृत-समन,
सोक स्रमसीव सुग्रीव आरतिहरन ।
राम राजीव लोचन विमोहन विपति,
स्याम नव तामरस-दामबारिद बदन ।
लसत जट जूटि सिर चारु मुनि चीर कटि,
धीर रघुबीर तूनीर-सर धुनि-धरन ।
जातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम
बधु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन ।
पतितपावन प्रनतपाल करुनासिंधु
राखिए मोहि सौमित्र -सेवित चरन ।
दीनता प्रीति सङ्कलित मृदु बचन सुनि
पुलकि तन प्रेम, जल नयन लागे भरन ।
बोलि, लङ्केस कहि अंक भरि भेंट प्रभु,
तिलक दियो दीन दुख दोष-दारिद-दरन ।
रातिचर जाति आराति सब भांति गत,
कियो सो कल्यान-भाजन सुमगल करन ।
दास तुलसी सदय हृदय रघुबसमनि
पाहि कहे काहि कीन्हो न तारनतरन ?[१]

(३) दीन हित बिरद पुराननि गायो ।
आरत-बधु, कृपाल, मृदुल चित जानि सरन हौं आयो ।
तुम्हरे रिपु को अनुज बिभीषन, बस निसाचर जायो ।
सुनि गुन सील सुभाउ नाथ को मैं चरननि चितु लायो ।
जानत प्रभु दुख सुख दासनि को तातें कहि न सुनायो ।
करि करुना भरि नयन बिलोकहु तब जानो अपनायो ।
बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो ।
भेंटयो हरि भरि अंक भरत ज्यों लकापति मनभायो ।
कर पङ्कज सिर परसि अभय कियो, जन पर हेतु दिखायो ।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो ?[२]

(४) नाहिन भजिबे जोग बियो ।
श्रीरघुबर समान आन को पूरन कृपा हियो ।

---

१ गीतावली ५, ४३

२ वही, ५, ४४

कहहु कौन सुर सिला तारि पुनि केवट मीत कियो ?
कौने गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो ?
कौन देव सबरी के फल करि सलिल पियो ?
बालित्रास-बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाँह लियो ?
भजन प्रभाउ बिभीषन भाष्यो सुनि कपि कटक जियो ।
तुलसिदास को प्रभु कोमलपति सब प्रकार बरियो ॥[1]

विनयपत्रिका और रामचरितमानस

रामचरितमानस एक महाकाव्य है जिसमें कवि का ध्यान घटनाओं के घात प्रतिघात, वस्तु के फैलाव तथा चरित्रों के बहुविध क्रियाकलापों की ओर लगा है। कवि इन वाह्य चित्रणों में अधिकाधिक निर्वैयक्तिक होने की चेष्टा करता है लेकिन विनयपत्रिका तो आत्मनिष्ठ गीतिकाव्य है जिसमें कवि स्वानुभूतियों को ही अभिव्यक्ति प्रदान करना चाहता है। एक में उसका ध्यान राम, राम परिवार तथा उनसे सम्बन्धित अनेकानेक पात्रों की ओर है तो दूसरे में वह अपने अंतस्तल में झाँककर अपने कालुष्य और कदर्य का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार दोनों ग्रंथों के प्रेरणा स्रोत और लक्ष्य में अन्तर होने पर भी समानता की भी अनेक रेखाएँ मिलती हैं और उसका प्रधान कारण है कि दोनों एक ही भक्त कवि की रचनाएँ हैं।

आरम्भ

तुलसीदास ने विनयपत्रिका का आरम्भ गणेश स्तुति से किया है और उसके अनन्तर सूर्य, शिव, देवी, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता तथा राम की स्तुति की है। इन विभिन्न स्तुतियों के अनन्तर कवि ने अपनी पत्रिका का मूल अंश प्रारम्भ किया है। रामचरितमानस का आरम्भ भी वाणी विनायक की स्तुति से ही हुआ है तथा बीच बीच में उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं, स्थानों, राम-परिवार के सदस्यों तथा स्वयं राम की स्तुतियाँ की हैं या करायी हैं।

रामचरितमानस में आरम्भ में ही उन्होंने लिखा है—

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।

तुलसी के राम स्वयं कहते हैं जो शिवद्रोही उनका दास अपने को मानता है, वैसा मनुष्य उन्हें सपने में भी अच्छा नहीं लगता। शंकर विमुख जो उनकी भक्ति की कामना करते हैं वे परम पातकी एवं मूढ़ हैं।[2] इसलिए अगर तुलसी राम की भक्ति चाहते हैं तो उन्हें शिव की महिमा का बखान करना ही चाहिए। रामचरित-

---

[1] वही, ८, ४६

[2] रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा १, पृष्ठ ४०३

मानस क प्रारम्भ में शिव-कथा का इन्होंने विस्तार से वर्णन किया है और विनय पत्रिका के १२ पदो में शिव के गुणों का वर्णन है।[1]

तुलसी ने मानस के बालकांड में ही सबकी वदना का क्रम रखा है।
बदेऊ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलिकलुप नसावनि।
बदौ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।

× × ×

बदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद
बिछुरत दीन दयाल, प्रिय तनु त्रिय इन परहरेउ।
प्रनवौं परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।
प्रनवौं प्रथम भरत के चरना। जासु नेम व्रत जाइन बरना।
रामचरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इवतजैन पासू।
बदौ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।
सेष सहस्त्रासीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमिमय टारन।
सदा सो सानुकूल रह मोपर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर।
रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी।
महावीर बिनवौं हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना।

× × ×

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते।
सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिबर विज्ञान विसारद।
जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
ताके युगपदकमल मनावौं। जासु कृपा निरमल मति पावौं।

× × ×

बदौ नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।
विधि हरिहर मय वेद प्रान सो। अगुन अनुपम गुननिधान सो।[2]

विनयपत्रिका में तुलसी ने अयोध्या, दशरथ, विदेहनारद आदि की वदना नहीं की है लेकिन अन्य मुख्य देवी-देवताओं की वदना बडे विस्तार के साथ की है। रामचरितमानस में की गई वदना में वैसी तल्लीनता नहीं है जैसी कि विनयपत्रिका में। चूंकि कवि वहाँ कथा की भूमिका में वदना का परपरा पालनमात्र कर रहा है—यहाँ रामभक्ति के लिये इन सहायकों की स्तुति की जा रही है। तुलसी को यहाँ भय भी लगा रह सकता है कि अगर स्तुति मे किसी प्रकार की कमी रह गई है तो फिर उनके प्रभु के पास इनकी पत्रिका पहुचाने मे या उस पर प्रभु का हस्ताक्षर कराने

१. विनयपत्रिका ३ से १४ वें पद तक
२. मानस, बालकाड, पृष्ठ १२, १३

से वे सब ढील दे देंगे। अतः इन वंदनाओं में मानस से अधिक सफलता स्वाभाविक ही है।

रामचरितमानस के आरम्भ और अंत के अतिरिक्त बीच-बीच में अवसर ढूँढकर इन्होंने अपने इष्टदेव की प्रार्थना की है। कहीं वे स्वयं उनकी प्रार्थना या गुणगान करते हैं और कहीं ऋषि, मुनि, देवगण उनकी स्तुति करते हैं। बालकांड में मनु शतरूपा स्तुति[1], ब्रह्मा स्तुति[2], अहल्या स्तुति[3], परशुराम स्तुति[4], अयोध्याकांड में वाल्मीकि स्तुति[5], अरण्यकांड में अत्रिस्तुति[6], सुतीक्ष्ण स्तुति[7], गीधस्तुति,[8] लंका कांड में देवताओं की स्तुति[9] तथा उत्तरकांड में सनक सनंदन स्तुति हैं। इन सारी स्तुतियों का सार इतना ही है कि राम ब्रह्मा-विष्णु-महेश से ऊपर हैं। उनकी महानता और उदात्तता का वर्णन पार्थिव व्यक्ति के लिए कदापि सम्भव नहीं। वे भक्तों पर अकारण दया करने वाले, उनके अगणित पापों का प्रक्षालन करने वाले सर्व समर्थ पुरुष हैं। उदाहरण के लिए देखें—

> जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
> अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं माया रहित मुकुंदा।
> जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा।
> निसिबासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा।
> सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा।
> जो भवभय भंजन मुनिमन रंजन गंजन बिपतिबरूथा।
> मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकलसुर जूथा।[10]

विनयपत्रिका की स्तुतियों में भी सर्वत्र यही भाव देखा जाता है। विनयपत्रिका का पद देखें—

> जयति सच्चिद्व्यापकानंद परब्रह्म विग्रह व्यक्त लीलावतारी।
> विकल ब्रह्मादि सुर-सिद्ध संकोचवश विमल गुणगेहँ नरदेहधारी।
> जयति कोसलाधीस कल्याण, कोसलसुता कुसल कैवल्य फल चारु चारी।
> वेद बोधित कर्म धरणी धेनु विप्र सेवक साधु मोदकारी।[11]

---

1. मानस बालकांड, पृष्ठ ७१, १४६वां दोहा
2. वही, पृ० ९३, १८५
3. वही, पृ० २०५, २१०
4. मानस, पृष्ठ २०६, १२६वां
5. वही, पृष्ठ २३२
6. वही, पृष्ठ ३२०
7. वही, ३२७
8. मानस, पृष्ठ ३४४
9. वही, पृ० ४०३
10. मानस, पृ० ९६
11. विनयपत्रिका ४३वां पद

इस प्रकार मानस और विनयपत्रिका की स्तुतियो के छदोविधान एव शब्द सघटन मे तो अन्तर दिखाई पडे लेकिन भावधारा की दृष्टि से कोई अन्तर नही प्रतीत होता।

प्रभु के शील, शक्ति एव सौदर्य का वर्णन

रामचरितमानस मे कथाप्रवाह के अतर्गत ऐसे अनेक अवसर तुलसी ने अपने प्रभु के सौन्दर्य, शील, शक्ति एव उनकी भक्ति उद्धारिए वर्णन किया है। जनकपुर मे या मार्ग पथ मे पदयात्रा करते हुए राम का सौन्दर्यवर्णित है। किष्किधाकाड के २४वें दोहे मे उनके शील का सुन्दर वर्णन किया गया है। लकाकांड मे उनका शोणित श्लथ स्वरूप का बडा भव्य चित्रण हुआ है और स्थल स्थल पर उन्हे एकमात्र भजनीय माना गया है। विनयपत्रिका मे स्तुतियो मे ही उनके शील, सौन्दर्य और शक्ति का वर्णन किया गया है तथा उनकी महिमा स्थापन की दृष्टि से विनयपत्रिका का कोई भी पद उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

दर्शन

रामचरितमानस मे तुलसीदास ने दर्शन के निगूढ तत्वो का सयोजन किया है। ईश्वर, जीव और जगत के स्वरूप का उन्होंने बडी विशदता से विचार किया है। विनयपत्रिका मे इतनी विशदता के साथ दार्शनिक तत्वो का विवेचन नही हुआ है लेकिन जहाँ कही भी हुआ है वहाँ उसका मानस के दर्शन के साथ पूरा मेल है जिसे हम गीतिकाव्य मे दर्शन उपशीर्षक मे दिखला चुके हैं। विनयपत्रिका मे उनका पूरा भक्त रूप है अत वे अपने को दार्शनिक गुत्थियो मे उलझाना नही चाहते। विनयपत्रिका मे उनका एकमात्र दर्शन है ईश्वर का गुणगान तथा उसकी कृपा पर आस्था। इसलिए मानस मे अनेक स्थलो पर अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म के अवतार ग्रहण करने के नाना कारणो की चर्चा की है वहाँ पर विनयपत्रिका के एकाध स्थल पर ही उनके अवतार ग्रहण करने के कारण का निर्देश किया गया है।

ज्ञान तथा भक्ति

रामचरितमानस के उत्तरकांड मे ज्ञान दीपक और भक्ति-मणि के प्रसग मे ज्ञान और भक्ति के पारस्परिक पार्थक्य पर विचार किया है। ज्ञान का पथ कृपाण की धारा है जिस पर चलना बडा कठिन है। लेकिन सेवक सेव्य भाव बिना ससार-सागर से सतरण सभव नही लेकिन रामभक्ति सुन्दर चितामणि के सदृश है।[1] वह मणि जिसके अतर मे बसती है वह दिन-रात परम प्रकाशस्वरूप रहता है। दीपक के लिए तेल चाहिए, अनुकूल हवा, स्थान तथा जलाने के लिए दूसरे की आवश्यकता पडती है किन्तु मणि तो स्वयमेव प्रकाशित है। इस सिद्धान्तवाक्य की पुष्टि तुलसी ने विनयपत्रिका में भी की है। उन्हे ज्ञान का अवलब नही चाहिए और वे भक्ति की

१ मानस, पृ० ५६० दोहा ११६

कामना करते हुए अपने इष्ट की भक्ति मे सदा तल्लीन रहते हैं। रघुपति की भक्ति सुलभ सुखकारी है उससे भवतापुष्पशोक तथा सब प्रकार के भय का निरसन होता है।[1]

नाम-महिमा

मानस के प्रारम्भ मे ही तुलसीदास ने कलियुग के ताप से बचने के लिए प्रभु नाम स्मरण ही सर्वोत्तम साधन माना ह। राम नाम सुन्दर करतारी है जिससे सशय रूपी छि स्तुति जाता है। इतना ही नही—

नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला।
राम नाम कलि अभमत दाता। हित परलोक पितु माता।
नहिं कलि करम भगति बिबेकू। राम नाम अवलब न एकू।
कालिनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू।
राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकालु
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलिसुरसालु।
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जाप मगल दिसि दसहूँ।[2]

× × ×

इतना ही नही—

ब्रह्म राम ते नामु बड़ बर दायक बर दानि
रामचरित सात कोट महँ लिये महेस जिय जानि।[3]

विनयपत्रिका के कई पदो (६६, ६७, ६८, ६६, १२६, १३०, १३१,) आदि पदो मे बड़े विस्तार से नाम महिमा गाई गई है। रामचरितमानस मे कथन कथनमात्र या सूक्ति मात्र मालूम पडता है लेकिन विनयपत्रिका के ये पद कवित्त की गरिमा से गौरवान्वित हैं। जैसे—

रुचिर रसना तू राम नाम क्यों न रटत
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ अमगल घटत।
बिनु स्याम कलि कलुष जास कटु कराल कटत।
दिनकर के उदय जैसे तिमिरतोम फटत।
जोग, जाग, जप बिराग, तप, सुतीरथ अटत।
बोंधिये को भवगयद रेनु की रजु बटत
परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत
लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहिं हटत।[4]

रामचरितमानस मे कवि को प्रथम पुण्य म आने का अवसर कम मिला है

१ विनयपत्रिका १३६
२ रामचरितमानस, पृ० १७, दोहा सख्या २६
३ वही, पृ० १६, दोहा सख्या २५
४ वही, विनय पद १२८

इसलिए वह अपने अंतर की कालिमा को खुलकर प्रकट नहीं कर सका है। वे इतना ही कहते हैं—

जौं अपने अवगुन सब कहउँ। बाढ़ै, कथा पार नहि लहउँ।[1]

अगर वे स्वदोष कहते ही रह जाते तो उनके प्रभु की जीवन कथा आगे बढ़ नहीं पाती या अत्यधिक संक्षिप्त हो जाती लेकिन विनयपत्रिका में यह खतरा नहीं है इसलिए उन्होंने अनेकानेक पदों में अपने कालुष्य, अपनी नीचता तथा अपनी पातक प्रवृत्तियों का वर्णन किया है।

मानस में विभिन्न भक्तों ने भगवान् के समक्ष अपनी दीनता और असहायता का दिग्दर्शन किया है। वहाँ तुलसी की अपनी दीनता ही भरत और हनुमान की दीनता के माध्यम से व्यक्त हुई मालूम पड़ती है। फिर भी रामचरितमानस का दैन्य-प्रदर्शन आरोपित या प्रक्षेपित है इसलिए उसमें वह उलहना और खिन्नता नहीं है जैसी कि विनयपत्रिका के पदों में। भरत प्रभु के समक्ष कहते हैं—

कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब विधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥
अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥
पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥
जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥

जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारु। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारु॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥

---

१. मानस, पृ० ६, ११ वाँ दोहा के बाद

सानुज पठइग्र मोहि बन कीजिग्र सबहि सनाथ।
नतरु फेरिग्रहिं बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥
नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिग्र सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिग्र सोई॥
देव दीन्ह सबु मोहि ग्रभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न ग्रारत कें चित चेतू॥
उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
ग्रस मैं ग्रवगुन उदधि ग्रगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥
ग्रब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सतिभाउ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥
प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि ग्रायेसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सब मिटिहि ग्रनट ग्रवरेब॥[1]

विनयपत्रिका का पद तुलना के लिए देखें—

काहे तें हरि मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे ग्रघ, तदपि न नाथ सँभारो॥
पतितपुनीत दीनहित ग्रसरन सरन कहत श्रुति चारो।
हौं नहिं ग्रधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारो ?
खग-गनिका-गज ब्याध पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो।
ग्रब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो॥
जो कलिकाल प्रबल ग्रति हो तो तुव निदेस तें न्यारो॥
तौ हरि रोष भरोस गुन तेहि भजते तजि गारो॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम करहु प्रभाव तुम्हारो।
यह सामर्थ्य ग्रछत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं ग्रति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो॥[2]

इस तरह जहाँ तक ग्रान्तरिक भावधारा का प्रश्न है उसमें रामचरितमानस और विनयपत्रिका सम धरातल पर स्थित हैं। लेकिन काव्यत्व की दृष्टि से रामचरितमानस को सक्षिप्त ग्रंश श्लाघ्य हो सकता है। लेकिन विनयपत्रिका के बारे में ऐसी बातें नहीं कही जा सकती। ग्रगर रामचरितमानस के पच्चीस प्रतिशत पदों में काव्यत्व है तो विनय में ग्रस्सी प्रतिशत पदों में।

दूसरी बात यह है कि मानस में दोहा-चौपाई की पद्धति ग्रपनाई गई है—विनयपत्रिका गीतों का संग्रह है ग्रतएव भाव-सम्प्रेषण या प्रभावोत्पादन की दृष्टि से

१ मानस ग्रयोध्याकांड, दोहा २६६—२६६ तक
२ विनयपत्रिका, ९४

गीतों की सरलता निसर्ग सिद्ध है। तीसरी बात यह है कि रामचरितमानस की भाषा में वैसा कसाव और मार्जन नहीं जैसा विनयपत्रिका में। इसलिए रामचरितमानस की पहुँच साधारण से साधारण साक्षर व्यक्ति तक संभव है—लेकिन विनयपत्रिका की पहुँच साहित्यिकों या भक्तों तक ही। मानस में तुलसी ने लिखा है 'आवत एहि सर अति कठिनाई'' यह बात विनयपत्रिका पर ही पूर्णतया चरितार्थ होती है।

गीतावली और रामचरितमानस

यद्यपि गीतावली और रामचरितमानस कथानकबद्ध रचना है किन्तु रामचरितमानस में कवि राम-जीवन की घटनाओं का सांगोपांग वर्णन करता है लेकिन गीतावली में उन्हीं स्थलों को अवतरित करता है जो अधिकाधिक मार्मिक और मोहक हैं। इसलिए दोनों ग्रन्थों की कथावस्तुओं के ऊपर कई प्रकार से विचार किया जा सकता है।

१—मानस की विस्तार से वर्णित कथा गीतावली में संक्षिप्त की गई है।

२—मानस के संकेतित स्थल गीतावली में विस्तारित हुए हैं।

३—मानस की बहुत घटनाएं गीतावली में व्यक्त हुई हैं।

४—मानस की अनुल्लिखित घटनाएं गीतावली में वर्णित हुई हैं।

१—रामचरितमानस में विश्वामित्र यज्ञरक्षा, पुष्पवाटिका प्रसंग, चित्रकूट सभा, शूर्पनखा निवास आदि का कुकर्म, लक्ष्मण मूर्छा आदि का वर्णन विस्तृत रूप में हुआ है। किन्तु गीतावली में इनका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन हुआ है।

२—मानस के जिन स्थलों को तुलसी ने संकेतित करके छोड़ दिया है उनका सविस्तार कवित्वमय वर्णन गीतावली में हुआ है।

(क) राम के बालरूप का वर्णन मानस के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के काकभुशुण्डि संवाद में हुआ है लेकिन गीतावली के बालकाण्ड के प्रारम्भिक चालीस पदों में हुआ है। भगवान् के बालरूप वर्णन से मानस में कवि की तृप्ति नहीं हो पाई और उसकी तृप्ति गीतावली में हुई है।

(ख) मानस के अयोध्याकाण्ड में राम के वनगमन के अवसर पर चतुर्दिक अवधवासियों की दशा बड़ी दयनीय हो गई है। कौशल्या और दशरथ का क्या कहना, पशु-पक्षी भी राम के वियोग में विकल हो रहे हैं। राम को पहुँचाकर लौटते हुए घोड़े हिनहिनाकर रह जाते हैं और उनकी दशा देखकर निषाद और भी विषाद विवश हो जाते हैं।[2] लेकिन गीतावली में घोड़ों[3] के विषाद का वर्णन बड़ा सुन्दर हुआ है। पक्षी में सारिका के हृदयस्थ भाव की व्यंजना पूरे पद में की गई है।[4] राम और सीता

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड ३७ वाँ दोहा

२ मानस, पृ० २९१, दोहा ९९

३ वही,

४. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद ६६

का सौंदर्य वर्णन विवाह प्रसंग में हुआ है लेकिन गीतावली के बालकाण्ड और उत्तर काण्ड में। सुन्दरकाण्ड में विभीषण शरणागति का ४१वें दोहे से ५०वें दोहे तक वर्णन हुआ है। गीतावली में इसी का वर्णन २१ पदों में (२६वें पद से ४६वें पद) किया गया है और इसमें विभीषण के आन्तरिक भावों की बड़ी विशद व्यञ्जना हुई है। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में रामागमन पर अयोध्या की श्री समृद्धि का उल्लेख किया गया है। लेकिन गीतावली के उत्तरकाण्ड में एक लम्बे पद की चालीस पंक्तियों में अयोध्या की रमणीयता का वर्णन किया गया है। इस तरह गीतावली में राम-जीवन के जिन प्रसंगों पर प्रकाश कम पड़ पाया था उनका गीतावली में वर्णन कर एक प्रकार से मानस के अभाव की पूर्ति की है।

(ग) यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मानस की कितनी घटनाएँ गीतावली में छोड़ दी गई हैं—यह चूँकि गीतिकाव्य है इसलिए मानस की विराट् कथावस्तु को इसमें सँजोना भी सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए बालकाण्ड में शिव पार्वती विवाह, नारदमोह, अयोध्या में मन्थरा की मन्त्रणा, कैकेयी आन्तरिक प्रसंग, मातृत्व, दशरथ मरण, अरण्यकाण्ड में अत्रिस्तुति, अनुसूया प्रसंग, वन, शास्त्र उपदेश, सूर्पणखा।

नारद मनु संवाद किष्किन्धाकाण्ड में मारुतिमिलन, सुग्रीव मिताई, बालि-वध, सीतान्वेषण-त्रास, वर्षा शरद् वर्णन, सुन्दरकाण्डमें सिंधु लाँघने की कथा, अशोक-वाटिका में विध्वंसात्मक दहन लंका काण्ड में सेतु बंध, कुम्भकर्ण, मेघनाथ रावण वध आदि, उत्तरकाण्ड में अतिथियों की विदाई का प्रसंग कलियुग वर्णन आदि छोड़ दिया गया है।

गीतावली और मानस की घटनाओं में अन्य काण्डों में ऐसी बात देखने को नहीं मिलती जैसी गीतावली के उत्तरकाण्ड में। कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख है जिनका उल्लेख रामचरितमानस में नहीं है। जैसे रामहिंडोला, दीपोत्सव, सीता-वन-वास एवं लवकुश जन्म। ये चार ऐसी मुख्य घटनाएं हैं जो मानस में वर्णित नहीं हैं—इसलिए कथावस्तु के नवीन विस्तार की दृष्टि से यह उल्लेखनीय है।

प्रभाव

रामचरितमानस के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस पर अन्य रामायणों की अपेक्षा अध्यात्म रामायण का प्रभाव स्पष्ट है। लेकिन गीतावली पर, उत्तरकाण्ड पर विशेषत वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है। तुलसीदास ने सीता परित्याग के द्वारा मानस को दुःखान्त बनाना नहीं चाहा लेकिन गीतावली में उन द्रवीभूत करने वाली घटनाओं को आखिर उपस्थित कर ही दिया है।

दूसरी बात है रामचरितमानस में कवि ने शिष्टता और मर्यादा का ध्यान सर्वत्र रखा है लेकिन गीतावली पर कृष्णकाव्य का प्रभाव स्पष्ट है अब वे राम के

हिंडोला का वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण का रस-वर्णन परम्परित है लेकिन राम का हिंडोला पर झूलना, होली, फाग, विलास-वर्णन, नख शिख वर्णन आदि ठीक नहीं जचता। फिर राम में शील और शक्ति की विशेषता है इसलिए उनके चरित्र का मुख्य अंग नहीं है। श्रीकृष्ण के अमित लावण्य पर गोपियाँ मन्त्र मुग्ध होती रही हैं इसलिए राम के रूप का ऐसा वर्णन भी कृष्ण काव्य का प्रभाव ही घोषित करता है।

रामचरितमानस पर संस्कृत स्रोतों और छन्दोयोजना का प्रभाव भी स्पष्ट है किन्तु गीतावली में कवि प्राप्त गीति परम्परा तथा लोक काव्य की धारा से अधिक प्रभावित दीख पड़ता है। चाचर आदि छन्दों के चयन का यही रहस्य है।

दर्शन

गीतावली में न तो सांगोपांग कथा ही है और न पूर्णतया आत्माभिव्यक्ति ही। इसलिए गीतावली दार्शनिक तत्त्वों की दृष्टि से मानस की समता नहीं कर सकती। इसमें ब्रह्म माया, जीव भक्ति के साधन, प्रकार आदि का ऊहापोह करना व्यर्थ है। किन्तु राम सर्वज्ञ हैं और तुलसी की सम्पूर्ण श्रद्धा उनके प्रति ही अर्पित है।

काव्यत्व

(क) रामचरितमानस काव्यत्व की दृष्टि से अत्यधिक सफल रचना है या गीतावली इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है। मानस में काव्यहीन पंक्तियाँ बहुत निकाली जा सकती हैं किन्तु गीतावली के बारे में ऐसी बातें कही नहीं जा सकती।

(ख) रामचरितमानस म नव रसों के उत्तमोत्तम उदाहरण दिए मिल जाते हैं किन्तु गीतावली में वात्सल्य और शृंगार, वीर रस तथा शान्तरस को छोड़कर अन्य रसो के उदाहरण ढूँढ लेना कष्ट कल्पना ही है। वात्सल्य वर्णन में तथा कौशल्या के विशेष वर्णन में गीतावली के तुलसीदास ने रामचरितमानस के तुलसीदास को पीछे छोड़ दिया है। लेकिन—

(ग) एक बात ध्यान देने योग्य है, रामचरितमानस में कथाक्रम की परिवर्तनशीलता तथा अनुकरण की प्रसंगगत नवीनता पाठकों को ऊबने नहीं देती लेकिन गीतावली में कथा सूत्र तथा अनुकरण की आवृत्ति कभी-कभी ऊबा देती है।

(घ) रामचरितमानस की नैतिकता सामाज है वहाँ गीतावली की भावाधारा गैरता उस ऊब को कम कर देती है।

रामचरितमानस में समाज-दर्शन, राजदर्शन, युग दर्शन आदि बहुत सारी बातें मिल जाती हैं किन्तु गीतावली के अध्ययन से उस युग के समाज, राजनीति, रहन सहन आदि का पता नहीं चलता इसलिए शुद्ध कला के पारखी को गीतावली अच्छी नहीं लगती।

किन्तु फिर भी रामचरितमानस और गीतावली का क्षेत्र पृथक होते हुए भी एक दूसरे से उत्कृष्ट बीज बतलाना आसान नहीं है।

गीतावली तथा श्रीकृष्णगीतावली

ये दोनों कृतियाँ एक ही कवि हमारे गोस्वामी तुलसीदास की हैं। ये दोनों ही कथापरक गीतकाव्य हैं। लेकिन विचार करना यह है कि कवि को सर्वाधिक सफलता किस काव्य में मिली है और उसका कारण यदि कुछ हो सकता है तो क्या है।

आलम्बन

गोस्वामी जी भगवान् राम के अनन्य भक्त हैं। वैसे उन्होंने राम-कृष्ण का समन्वय किया है किन्तु प्रमुखत उनके उपास्य या इष्टदेव राम ही हैं। भक्ति में आलंबन के परिवर्तन के फलस्वरूप चित्रणीय तल्लीनता का अभाव स्वाभाविक है। सूर ने रामकाव्य लिखा लेकिन उनके आराध्य कृष्ण हैं, राम नहीं। इसलिए कृष्ण काव्य की छाया भी उनका रामकाव्य नहीं छू सका है। गोस्वामी जी के साथ ये बात सोलहों आने नहीं है जो सूर के साथ लेकिन मात्रा का अन्तर तो है ही।

तुलसीदास ने राम के जीवन की घटनाओं को स्वयमानुभूत कर, उनको गीतों में ढाल दिया है। उन गीतों में तुलसी की आत्मा का रस निचुड़ गया दीखता है। श्रीकृष्णगीतावली में श्रीकृष्ण के जीवन को छिटपुट रूप में आत्मानुभूत-सा उपस्थित किया गया है इसलिए इसमें तल्लीनता और अतलता का अभाव स्पष्ट दीखता है।

रूप-वर्णन

तुलसीदास ने राम का सौन्दर्य वर्णित किया है और कृष्ण का भी। लेकिन दोनों स्थलों पर एक-सा माधुर्य नहीं टपकता। तुलसी ने राम-प्रवास पर दशरथ वियोग एवं कौशल्या वियोग को प्रस्तुत किया है तथा श्रीकृष्ण प्रवास के अनन्तर गोपियों के वियोग का भी। माँ बाप के वियोग से प्रेयसी के वियोग में अधिक द्रवण-शीलता की अपेक्षा की जाती है लेकिन तुलसी का राम के प्रति अटल प्रेम ही इस विपर्यय की सृष्टि कर सका है। इन दो स्थलों में वर्णित पदों को उदाहृत कर देने पर बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। राम का सौन्दर्य वर्णित करते हुए तुलसी कहते हैं—

> रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटिमयन,
> करुनारस अयन चमन रूप भूप, माई।
> देखो सखि अतुलित छवि, सत कज-कानन-रवि
> गावत कल की रत कवि कोविद समुदाई॥
> मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबसवीर,
> सेवत पद कमल धीर निरमल चित लाई।
> ब्रह्ममडली-मुनींद्रवृंद मध्य इन्दुवदन
> राजत सुखदमन सोकलोचन सुखदाई॥

विथुरित सिरसिरूह-बरूथ कुंचित बिच सुमन जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि अनीक ससि समीप आई।
जनु सभीत दै अकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई॥
ललित भृकुटि तिलक भाल अधर द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई।
मधुकर जुग पङ्कज बिच सुक बिलोक नीरज पर
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई॥
सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाला उरसि,
तुलसिका प्रसून-रचित बिबिध बिधि बनाई।
तरुनमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीरपांति रुचिर,
हेमजाल अन्तर परि तातें न उड़ाई॥[1]

अर्थात् राजीव नयन रामचन्द्र कोटि कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाले, करुणारस के आगार तथा आनन्द स्वरूप हैं। वे अतुलित छवि वाले सत समुदाय रूपी पङ्कज वन के लिये सूर्य तुल्य हैं। उनका यश कवियों का समुदाय गाता है। वे स्नान करके सरयूतीर पर खड़े हैं। उनके चरणकमलों की सेवा मनस्वी भक्तगण कर रहे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकों के नेत्रों को रंजित करने वाले भगवान राम मुनिमंडली एवं ब्राह्मण समाज के मध्य विराजमान हैं। कुंचित केशराशि के मध्य फूलों का स्तबक ऐसा दीखता है मानो मणियों के साथ बालभुजंगों का झुंड चन्द्रमा के निकट आया हो और उनसे भयभीत चन्द्रमा ने आत्मरक्षा के लिए दो मोरों को फुसलाकर रख छोड़ा है और उन मोर रूप कुंडलों की शोभा देखकर सर्पवृन्द(अलकावली,चोर सकुचा गए हों। (यहां भगवान के मुख के लिए चन्द्रमा केशकलाप सर्पबालक हैं गुंथे हुए फूल उनकी मणियां और कानों के दो कुण्डल मोर हैं)। उनकी भृकुटि सुन्दर है, माथे पर तिलक है तथा चिबुक अधर दन्तावली बड़ी सरस है। उनकी हंसी बड़ी ही मनमोहिनी तथा कपोल और नासिका बड़े ही सुघड़ हैं। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि मानो नेत्ररूप कमलों पर भ्रकुटिरूप दो भौंरे बैठे हैं तथा मुख पंकज पर अलकावलि रूप भ्रमरों को लड़ते देख नासिका रूप शुक ने बीच बचाव किया हो। भगवान के शरीर पर अत्यन्त सुन्दर पीताम्बर तथा वक्षस्थल पर वनमाला शोभित है मानो तमालवृक्ष (श्याम शरीर) के बीच में (वनमाला) तिरंगे शुकपक्षियों की मनोहर पंक्ति हो जो (पीताम्बर रूप) सुवर्णजाल के भीतर पड़ जाने से उड़ नहीं सकती हो।

इस तरह एक नहीं वरन् अनेकानेक पदों में तुलसी ने भगवान् राम के

---

१ गीतावली, ७, ३

अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण का रूप वर्णन भी उन्होंने श्रीकृष्ण-गीतावली के एक पद मे किया है—

देखु सखी हरिबदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवलि छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥
बाल भुअंगिनि-निकर मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर॥
अरुन बनज लोचन, कपोल सुभ, स्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर।
मनहुँ सिंधु निज सुतहिं मनावन पठए जुगुल बसीठ बारिचर॥
नन्दनंदन मुख की सुंदरता कहि न सकत स्रुति सेष उमाबर।
तुलसिदास त्रैलोक्य बिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध सूलहर॥[1]

अर्थात् श्यामसुन्दर के मुख पर घुंघराली अलकें इस प्रकार मालूम पड़ती हैं मानो बाल नागिनियो के झुंड ने चंद्र को अमिय रूप जानकर घेर लिया है। पर वे न तो छोड़ ही सकती हैं, न अमिय-पान ही कर सकती हैं। श्यामसुन्दर के नेत्र कोकनद की तरह हैं, कपोल सुन्दर तथा कानो मे कुंडल हैं। ये ऐसे दीखते हैं मानो सिंधु ने अपने सुत चन्द्रमा को मनाने के लिए दो दूत भेजे हो (यहाँ मुख चन्द्र, कुंडल-दूत)। नन्दनन्दन के मुख की सुंदरता अवर्णनीय है। न उसका बखान वेद कर सकते हैं, न महादेव। उनका रूप लोक-विमोहन तथा त्रयतापहारी है।

रूप वर्णन में अन्तर

दोनो पदो की पारस्परिक तुलना से ये बातें स्पष्ट होती हैं—

(१) तुलसी का ध्यान राम के रूप वर्णन पर ही नही वरन् उनकी वृत्तियों तथा स्थितियो के वर्णन पर भी है। रूप-वर्णन मात्र उतना तल्लीन नहीं कर सकता, जितना क्रिया-वर्णन या वृत्ति वर्णन। तुलसी ने अपने इष्ट के एक एक क्रियाकलाप पर दृष्टि रख उनका सामंजस्य उनके सौन्दर्य के साथ किया है। किन्तु श्रीकृष्ण के रूप वर्णन मे उनका ध्यान बाह्यरूप तक ही सीमित रह गया।

(२) तुलसी जब राम के सौन्दर्य का वर्णन प्रारम्भ करते हैं तो उत्प्रेक्षाओ, उपमाओं तथा रूपको के प्रकार जुटाने मे अघाते नही। परिणाम यह हुआ है ये सारे पद बड़े लम्बे हो गए हैं किन्तु श्रीकृष्ण की जब बारी आती है तो "वे क्या कहा जाय" कह कर ही सतोष कर लेते हैं।

वियोग-वर्णन

गोस्वामी जी ने अपने इष्टदेव के वनवास के उपरांत दशरथ और कौशल्या के माध्यम से मानो अपने अन्तस का करुणा-सागर ही बहा डाला है। उनके आराध्य के विरह मे दशरथ जब मूर्छित होकर गिरे तो फिर जागे नहीं मानो

[1] श्रीकृष्णगीतावली, २१

कर्मरूपी चोर राजा रूपी पथिक को मारकर रामरत्न रूपी रत्न लेकर भाग गया।[1] जब-जब कौशल्या राम से शून्य भवन को देखती है तब तब वह और विकल होती है।[2] वह तो राम-वनगमन का स्मरण कर चित्रलिखी-सी हतचेत खड़ी रह जाती है।[3] उनके जीवन में तो हाथ मलना ही लिखा है। चित्रकूट से वह भी वन चली जातीं, अयोध्या में क्या रखा था कि वह रह गयी। पतिसुरपुर, राम-लक्ष्मण वन और भरत ने मुनिव्रत धारण कर लिया। वही श्मशान की अग्नि की तरह मृत्यु रूपी मृतक को जलाकर निश्चित हो गई है। गोस्वामी जी ने यहाँ पर करुणा को मूर्त्त कर दिया है।

हाय मीजिबो हाथ रह्यो।
पति सुरपुर, सिय राम लखन बन, मुनिब्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोई मृतक दह्यो॥
मेरोइ हिय कठोर करिबे कहे विधि कहुँ कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ?[4]

इतना ही नहीं ग्रामवासी की आयु अवधि रूपी अबु में मीन हो रही है।[5]

मानवों की कौन कहे प्रभु के वियोग में सारिका व्याकुल है।[6] उनके घोड़ों के नेत्रों से अश्रुकण प्रवाहित होते रहते हैं। सबने खान-पान तक छोड़ दिया है और चुपचाप पड़े रहते हैं। उनका नाम सुनते ही शोकाकुल हो उठते हैं।[7] इस प्रकार तुलसी ने भगवान के वियोग में "एको रस करुण एव" की सार्थकता सिद्ध कर दी है।

तुलसी ने अरण्यकाण्ड[8] में सीता के वियोग में राम की आकुलता तथा सुन्दरकाण्ड[9] में राम के वियोग में सीता की विकलता का बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन किया है। इन वर्णनों में कवि की आत्मा पूर्णतया रम पाई है। सीता की विरह व्याकुलता देख जब पौरुषावतार हनुमान की ऐसी दशा हुई जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से तपी हुई भूमि पर तिलमिलाते हुए पथिक की हो तो स्वयं सीता की अवस्था कैसी दुःसह रही होगी, इसका अनुमान तो सहृदय पाठक कर ही सकते हैं।

---

१. गीतावली, २, १२
२ वही, २, ५४
३ वही, २, ५२
४ वही, २, ८४
५ वही, २, २८
६ वही,
७ वही, २, ८६
८ वही, ३, ६, १०, ११
९ वही, ५, १५

किंतु श्रीकृष्णगीतावली मे श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर तुलसी ने यशोदा का विलाप वर्णित नही किया है। जो श्याम आखों का तारा था, वही कंस के यहाँ जा रहा है। इससे क्या यशोदा का हृदय विदीर्ण नही होता होगा? लेकिन गोस्वामी के चूंकि श्रीकृष्ण अपने इष्ट नहीं हैं, इसलिए उन्होने उस विकलता को स्वतः अनुभूत नही किया। जब माँ यशोदा का क्रदन ही नहीं चित्रित हो पाया है तो गोकुल निवासियों, वहाँ की श्रीकृष्णपालित गायो और बछडो की दु खित अवस्थाओ का वर्णन कौन करता है?

गोपियों का विरह वर्णन गोस्वामी जी ने श्रीकृष्णगीतावली के ३६ पदों मे अवश्य किया है[1] किन्तु उसमे उपालम, परिहास, वाक्चातुर्य, तर्कना एव अलकरण की मात्रा ही अधिक है विदग्धता और सरसता कम ही समाविष्ट हो पायी है। सूरसागर के विरह-पदो मे जो रस की चासनी है वह श्रीकृष्ण गीतावली मे बिलकुल नही है।

इस प्रकार आलबन के अन्तर से वर्णन मे अन्तर पड गया है और गीतावली की सफलता के समक्ष, श्रीकृष्णगीतावली ठहर नही पाती।

कृष्ण काव्य की पृष्ठभूमि

दूसरी बात यह है कि श्रीकृष्णचरित्र पर, उसकी सागोपाग प्रेम पद्धति पर सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियो ने इतना अधिक लिख दिया था कि तुलसी ने अपनी समन्वयात्मक भावना की परितुष्टि के लिए श्रीकृष्णचरित्र को स्पर्शित भर कर दिया, उसे तल्लीनता से ग्रहण नही किया। श्रीकृष्णगीतावली का लघुकाय (मात्र ६१ पद) इस कथन की पुष्टि करता है। जिस श्रीकृष्ण चरित्र पर सूरदास ने हजारों पदों की रचना की उसी पर तुलसी ने कुछ लिख भर दिया, अत जब कवि उसमें ठिकाने से डूब नहीं पाया तो उसके वर्णन की सफलता सदेह युक्त रह ही जाएगी।

निष्कर्ष

लेकिन तुलसीदास महाकवि और भक्त शिरोमणि हैं। इसलिए उन्होंने जिसे छू दिया वह सब सोना भले न बना हो, किन्तु महार्घ अवश्य हो गया है।

इन्हीं दो कारणो से दोनों ग्रथों की विशिष्टता मे थोडा अन्तर हो जाना स्वाभाविक ही है।

●

---

१ श्रीकृष्णगीतावली—पद संख्या २४ से ५९ तक
(पुस्तक के आधे भाग से अधिक में)

: ६ :

गीतिकाव्यों की लोकप्रियता तथा जनमानस पर प्रभाव

उपसंहार

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का उत्तरी भारत के घर-घर मे आदर है, इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है—"इसे ९ करोड व्यक्तियो की बाइबिल कहा गया है और निश्चित रूप से उत्तरी भारत के प्रत्येक हिन्दू के बीच इसका प्रचलन औसत अंग्रेज किसान के बीच बाइबिल के प्रचलन से अधिक है। समग्र भारत का एक भी ऐसा नहीं चाहे वह राजकुमार हो या पर्णकुटीवासी जो उसकी प्रसिद्ध चौपाइयो को नही जानता है तथा जिसकी सामान्य बोलचाल भी इससे अलंकृत न होती हो।"[1] रेवेरेण्ड एडविन ग्रीव्स का कथन है 'वह हमारे प्रशंसा के पात्र नही, प्रेम के ही हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका ज्वलन्त उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी मे ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रसाद से लेकर एक निर्धन की कुटिया तक इतना अधिक प्रसार हो।'[2] डा० के ने अपने इतिहास मे लिखा है "उत्तरी भारत के हिन्दू समाज के सभी वर्गों में, अपवाद स्वरूप कुछ संस्कृत पंडितो को छोडकर यह ग्रन्थ सर्वत्र, चाहे निर्धन हों या धनी, युवा हो या वृद्ध, विद्वान हो या मूर्ख, प्रशंसित और आदृत है तथा कभी-कभी इसे

---

१ It has been described as the Bible of ninety millions of people, and is certainly more familiar to every Hindu of Northern India than our Bible is to the average English peasant. There is not a Hindu of Hindostan proper, whether prince or cottar, who does not know its most famous verses and whose common talk is not coloured by it.

—Grierson—Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 12. Page 471

२. कल्याण, रामायणांक, पृ० ३४२

उत्तरी भारत के हिन्दुओं की बाइबिल कहा गया है।"[1] महात्मा गांधी ने कहा है, "भारत में यदि कोई ग्रंथ झोंपड़ियों से महलों तक में स्थान पा सका है, वह तुलसीकृत रामायण है।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाहे विदेशी विद्वान हों या भारतीय सबने एक स्वर से रामचरितमानस को भारतवर्ष में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रसार प्राप्त पुस्तक माना है। लेकिन उनके गीतकाव्यों की लोकप्रियता पर विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया है।

तुलसीदास के गीतकाव्य विशेषतः विनयपत्रिका का प्रचार और प्रसार भारतवर्ष के कोने कोने में रहा है, और है, इसे मान लेने में भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कई स्रोतों से गृहीत प्रमाणों के आधार पर हम इस विषय पर विचार करना चाह रहे हैं।

१ रागकल्पद्रुम—स्वामी कृष्णानन्द व्यास ने अखिल भारतवर्ष का पर्यटन कर करीब ६५० संगीतज्ञ कवियों के १३८९२ गीतों को अपने विश्वकोषात्मक ग्रंथ रागकल्पद्रुम में संकलित किया। जनप्रचलन के आधार पर ही ये गीत लिपिबद्ध किए गए हैं। अतः यह पुस्तक प्रमाणित करती है एक सौ वर्ष पहले ही ये गीत किस प्रकार जनता के प्रिय हो गए थे।[3]

व्यास जी ने तुलसी के गीतों का उल्लेख कल्पद्रुम के पचास पृष्ठों पर किया है।[4] उनमें विनयपत्रिका गीतावली और श्रीकृष्ण गीतावली—तीनों के पद हैं। अधिकांश पद तुलसी नाम के हैं, हमारे कवि तुलसीदास के नहीं हैं। किन्तु फिर भी यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि संगीत प्रिय जनता में तुलसी के गीतों का

१ Almost all classes of the Hindu community in North India, with the exception perhaps of a fiew sanskrit pandits, it is to day every where appreciated and venerated whether by rich or poor, old or young, learned or unlearned, and it has sometimes been called the Bible of the Hindu people of North India

—A History of Hindi Literature by F E Keay Page 53 Wesleyan Mission Press, Mysore City, 1920

२. गांधी जी की सूक्तियां, पृ० ८४

३ १८८४ ई० में जब वे दतिया वसु से भेंट हुई थी व्यास जी की तब उनकी अवस्था ६० वर्ष की थी। अगर २५ वर्षों से भी वे संकलन का कार्य कर रहे हों तो एक सौ वर्ष मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। —भूमिका, पृ० ८

४ प्रथम भाग—६७, ६८, ६६, २०६, २४५, २५२, २५६, ३२८, ३३०, ३४६, ३५८, ३६३, ४०३, ४२१, ४२२, ४२५, ४७८, ४८२, ४८३, ४८८, ४८६, ५००, ५०१, ५०६, ५३२ ५५३, ५६३, ५७६, ५८८, ६३३, ६६६

द्वितीय भाग—५५, ५६, ८१, १४८, २१६, २७४, २७५, ३४१, ३६४, ३६५।

तृतीय भाग—८७, १०२, १०५, १३३, १३४, १६६, १८६, १६८

प्रचार बहुत था। अगर तुलसी लोकप्रिय गीतकार नहीं होते तो तुलसी के नाम से गीत लिखने वालों की यह उदारता भी नहीं दर्शित होती।

३ संगीतज्ञों के मध्य—तुलसीदास के गीत संगीतज्ञों के बीच भी कम प्रचलित नहीं। चाहे कोई शास्त्रीय संगीतज्ञ हो या साधारण गवैया वह विनयपत्रिका के गीतों को बड़ी तल्लीनता के साथ गाता है। कोई भी कीर्तन मंडली बिना "गाइये गनपति जगबन्दन" से अपना कार्य प्रारम्भ ही नहीं करती। इससे स्पष्ट होता है कि मांगलिक अनुष्ठान के लिए तुलसी की विनयपत्रिका का यह प्रथम गीत आवश्यक उपकरण बन गया है। संगीत के शास्त्रीय ज्ञाता भी राग-रागनियों तथा स्वरलिपियों में तुलसी के गीतों को भी अन्य गीतिकारों की तुलना में कम बांधना नहीं चाहते। "संगीत" जैसी पत्रिका इसका प्रमाण है। संगीत के संत अंक में तुलसी के ८, सूर के १२, कबीर के ३ तथा मीरा के १२ गीत स्वर लिपियों में बांधे गये हैं। सूर के प्रमाणिक पदों की संख्या पांच हजार[1] के करीब है, कबीर के चार सौ[2], मीरा के दो सौ[3] तथा तुलसी के छह सौ अड़सठ पद।[4] इन पदों पर अनुमानतः विचार करें तो यह स्पष्ट है कि संगीत के आचार्यों में तुलसीदास समादर मीरा के बाद है। मैंने बहुत से संगीतज्ञों से इस विषय पर बातचीत की है और उनका कहना है कि स्वरलिपियों में गीतों को बांधने की दृष्टि से मीरा सबसे अधिक सफल हैं इसलिए मीरा के पदों की कुछ अधिक संख्या स्वाभाविक ही है। लेकिन अन्य कवियों में तुलसीदास सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

४ आकाशवाणी और चलचित्र—आकाशवाणी के भजनामृत, भजनावली आदि कार्यक्रमों में तुलसी के गीत अवश्य प्रसारित किये जाते हैं और इससे भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रुचि वालों को तुलसीदास सर्वत्र आकृष्ट करते हैं। चलचित्रों के द्वारा सामान्य जनता का मनोरंजन होता है। ९० प्रतिशत फिल्मों में प्रेम—सस्ते प्रेम—की चर्चा रहती है और वहां पर तुलसी के भक्तिपरक गीत प्रयुक्त नहीं हो सकते लेकिन जो पूर्णतया भक्तिपरक चित्र हैं उनमें विनयपत्रिका के कुछ गीत अवश्य सुनने को मिलते हैं।

५ मंदिरों या भक्तगृहों में—रामभक्तों में तुलसी के गीतों का अत्यधिक प्रचार है। ऐसे साधुओं, संत तथा तपस्वी विनय के गीतों को प्रति दिन गाते हैं और उस रस में अपने को डुबोये रहते हैं। भारतवर्ष के अधिकांश मंदिरों में "आरती" के समय "श्री रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरण भव भय दारुण"[5] अवश्य गाते हैं।

---

१. सूरसागर, सं० नन्ददुलारे वाजपेयी, दोनों भाग
२ कबीर ग्रन्थावली, सं० श्यामसुन्दर दास
३ मीरा की पदावली, सं० परशुराम चतुर्वेदी
४ तुलसी ग्रन्थावली, सं० ना० प्रचारिणी सभा, काशी, दोनों भाग
५ विनयपत्रिका, पद संख्या ४५

"ऐसो को उदार जग माहीं",[1] 'राम राम रमु राम रटु राम राम जीहा",[2] "रुचिर रसना तू राम राम क्यों न रटत'[3] आदि पद तो उनकी जिह्वा पर चढ़े ही रहते हैं। जहाँ रामचरितमानस की कथा चलती हो वहां भी कथा की समाप्ति के उपरान्त वे भक्तगण विनय के उन पदों को भक्ति पूरित कंठ से गा-गाकर सम्पूर्ण वातावरण को भक्तिमय कर देते हैं। शिव-भक्तों को "बावरो रावरो नाह भवानी", या "दानी कोउ शंकर सम नाहीं"[4] बड़े प्रिय हैं। मैंने अनेक शिवोपासकों को देखा है जो घंटों 'दानी कोउ शंकर सम नाहीं" का अति तल्लीनता के साथ जप किया करते हैं। तुलसी हिन्दी के एकमात्र ऐसे गीतकार हैं जिनके गीत रामभक्तों और शिव भक्तों को समान रूप से प्रिय हैं।

६ काव्यरसिकों और विद्वानों के बीच—काव्य रसिकों और विद्वानों के बीच तुलसी के गीतों का भी कम प्रचार नहीं है। इसका एक ज्वलंत प्रमाण यह है कि जिस पुस्तक को लोग अधिक पढ़ते हैं उस पर अधिक टीका टिप्पणी, विवेचन-विश्लेषण और भाष्य लिखे जाते हैं। हिन्दी में तीन ही ग्रंथ ऐसे हैं जिस पर सर्वाधिक टीकाएँ लिखी गई हैं (१) रामचरितमानस, (२) बिहारी सतसई और (३) विनय-पत्रिका। विनयपत्रिका पर तो एक दर्जन से अधिक टीकाएँ ऐसी मिलती हैं जो सुन्दर हैं और अधिकारी पंडितों और विद्वानों के द्वारा लिखी गई हैं। बाबा रामचरण दास जी, महात्मा हरिप्रसाद जी, बाबू शिवप्रसाद जी, हनुमान प्रसाद पोद्दार, बैजनाथ जी, सूर्यदीन शुक्ल, पंडित रामेश्वर भट्ट, पं० महावीर प्रसाद मालवीय, वियोगी हरि लाला भगवान दीन, पं० विश्वनाथ मिश्र, श्रीकान्तशरण जी तथा अंजनीनन्दन सहाय के नाम उल्लेखनीय हैं। सूरसागर पर एक भी टीका नहीं मिलती, कबीर और मीराबाई की पदावली पर टीकाएँ नहीं मिलती किन्तु विनयपत्रिका पर इतनी अधिक टीकाएँ मिलती हैं यह इसी बात का प्रमाण है कि तुलसी की विनयपत्रिका विद्वानों की हृदयहार है। गीतावली और श्रीकृष्णगीतावली की कई टीकाएँ उपलब्ध होती हैं जिनका विवेचन हमने प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में किया है। अतः टीकाएँ किसी रचना की प्रचारात्मकता की प्रमाण हों तो तुलसी की इन गीत कृतियों का प्रचार है, इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

७ फकीरों और भिखारियों के बीच—फकीर, भिखारियों और मंगनों के बीच तुलसी के गीत प्रचलित नहीं हैं—क्योंकि उनकी साहित्यिक तत्सम गर्भित भाषा उनकी ग्वड़ी जबान के लिये बड़ी कष्टदायक है। और फिर अशिक्षितों के बीच तो

१ विनयपत्रिका, १६२
२ वही, ६५
३ वही, १२१
४ वही, ५
५ वही, ४

हो ली जोगीडा का प्रचलन बहुत है। इनसे साहित्यिक कृतियों के मूल्यांकन मे कोई अंतर नहीं पडता।

इस प्रकार हम इन प्रमाणो के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि गीतो के क्षेत्र मे सब मिलाजुला कर तुलसी के गीतों का सर्वाधिक प्रचार है और स्वय तुलसी की कृतियो म रामचरितमानस के बाद विनयपत्रिका का ही प्रचार है।

जनमानस पर प्रभाव

इन गीत काव्यों मे तुलसी ने अपने अंतर्मुखी भावों का ही प्रकाशन किया है। एक ओर कलियुग के कारण अपार कष्ट दूसरी ओर भगवान् की परम कृपालुता का स्मरण। तुलसी का भक्त हृदय अपने भगवान् के समक्ष निराडम्बर रूप मे उपस्थित होता है। विनयपत्रिका तो विनय की पत्रिका ही है जिसको उन्होने इष्टदेव के पास भेजी है। उसमे कलियुग की कुचाल तथा अपने कालुष्य का वृहत् इतिहास उन्होंने अंकित किया है। इसलिए कभी-कभी ऐसा लगता है कि इन निरे व्यक्तिगत उद्गारो से सामान्य जन समुदाय का लेना देना क्या है? लेकिन तुलसी ने इतनी गहराई मे पैठकर आत्मनिवेदन और आत्मदर्शन किया है कि इसका साधारणीकरण पूर्णतया सभव है। तुलसी की जगह अगर कोई व्यक्ति या भक्त है तो वह उन सारे पदो का स्वरपाठ एव आत्म प्रकटीकरण ही समझेगा। इसलिए यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि तुलसी की विनयपत्रिका ने जनमानस को और उससे बढकर भक्तमानस को पूर्णतया प्रभावित किया है।

यह विनयपत्रिका का सुफल है कि बहुत सारे सतो, सन्यासी और विरक्तो ने अपनी साधना के प्रत्यूह स भी अपने को विचलित होने नहीं दिया है तथा अनेकानेक ससारी गृहस्थो ने विनय क पदो से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी आस्था के दीपक निर्वापित होने नही दिया है। जब वह विनयपत्रिका के पदो के तल्लीनकारी प्रभाव मे रहता है तो सोचता है—कि अबतक ता उनकी आयु यू ही नष्ट हो गयी लकिन अब वह उसे नष्ट नही होने देगा। उसे बडी कठिनाई के बाद राम नाम रूपी चिन्तामणि मिल गयी है उसे अब कभी अपने हृदय रूपी हाथ से नही गिरने देगा। अब तक तो वह इन्द्रिया का सवक था और उसी की इच्छा पर डोलता था लेकिन अब वह जितेन्द्रिय होकर अपने को धोखा नहीं देगा।[1] उसने देह और गेह के नेह की निस्सारता को जान लिया है और इसलिए वह जागतिक मृगतृष्णा के पीछे चक्कर नहीं काटेगा।[2] पहले उसे ससार के लोगो का बडा भय था। अगर किसी की भृकुटी उस पर तन जाती थी तो वह विचलित हो उठता था। लेकिन भला जिस पर रघुपति कृपालु की कृपा हो तो दूसरो के वैर करने पर उसका क्या बिगड सकता है?

---

१ विनयपत्रिका, पद सख्या १०५
२. वही, ७३

लाख उपाय करने पर भी कोई भक्त का बाल बाका नही कर सकता। इसलिए राम पर विश्वास रखता हुआ उसे सत्कर्म मे लीन रहना चाहिए (इससे ऐसा लक्षित नही होता कि तुलसी की विनयपत्रिका का ससार से विरक्त होने की, मानव समुदाय से दूर पलायन की शिक्षा देता है वरन् तुलसी ने चौरासी लाख योनियो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानव योनि को ही माना है। मावन शरीर पाने से भी क्या लाभ जब वह मन कर्म, वचन से दूसरो के काम नही आया। अत तुलसी की इन रचनाओ का सप्रेष्य मानव जीवन को सांसारिक उन्नयन मे तल्लीन रखते हुए क्रमश ईश्वरोन्मुख करते जाना है) इस शरीर को ईश्वरीय निवास बनाने के लिए यह आवश्यक है इसे भ्रष्टाचारो के द्वारा कलुषित नही किया जाय और अपने को किसी प्रकार से कलुषित नहीं करना ही सामाजिक नैतिक प्रतिमान की दृष्टि से भी कितना श्रेयस्कर है सहज ही अनुमेय है। इसलिए जो लोग यह समझते हैं कि तुलसी के गीतो को पढकर मनुष्य वीतरागी, मदिरवासी तथा सन्यासी मात्र बन जाता है वे बडे भ्रम मे हैं। (सन्यासी और भक्त का आचरण करते हुए गृहस्थ जीवन को उन्नत बनाना ही तुलसी के भक्त्यात्मक गीतों का सजीवन सदेश है)

आकर-साहित्य-सूची

संस्कृत

१ ऋग्वेद—टीकाकार प० रामगोविन्द त्रिवेदी, वैदिक पुस्तकालय, सुलतानगज, बिहार, १९८८ सवत् ।

२ यजुर्वेद—गायत्री तपोभूमि, मथुरा, १९६० ई० ।

३ निरुक्त—यास्क—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

४ भगवद्गीता—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

५ बाल्मीकि रामायण—रामनारायण लाल, इलाहाबाद तथा वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई ।

६ महाभारत—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

७ केनोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

८ कठोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

९ श्वेताश्वतरोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

१० मुण्डोकपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

११ अध्यात्म रामायण—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

१२ स्तुति कुसुमाजलि—जगद्धर भट-निर्णय सागरप्रेस, बम्बई, १८९१ ।

१३ नाट्यशास्त्र—भरत, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई तथा गायकवाड सस्करण ।

१४ नाट्यशास्त्र—भरत

१५ अग्निपुराण

१६ विष्णुपुराण—गीताप्रस, गोरखपुर ।

१७ नारदभक्तिसूत्र—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

१८ शाडिल्य भक्तिसूत्र—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

१९ भक्ति रसायन—मधुसूदन सरस्वती, नवज्योति वर्क्स, न्यूरोड, इन्दौर ।

२० श्री हरिभक्तिरसामृतसिंधु—अच्युत ग्रन्थमाला, काशी ।

२१ श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर—रामानद, साहित्य मदिर, मट्टा, अलवर, राजपूताना, द्वितीयावृत्ति ।

२२ गीता—रामानुज भाष्य, गीताप्रेस, गोरखपुर ।

२३ भागवतपुराण—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

२४ काव्यालंकारसूत्र—वामन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई-२, चतुर्थ संस्करण।
२५ काव्यालंकार—रुद्रट—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
२६ काव्यालंकार सार संग्रह—उद्भट, भंडारकर ओरिएन्टल, इंस्टीट्यूट, १९५२।
२७ सरस्वतीकंठभरण—भोज, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४।
२८ साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, टीकाकार शालिग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १९५६ ई०।
२९ काव्य प्रकाश—मम्मट, टीकाकार डा० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा, विद्याभवन,
३० रस गंगाधर—पंडितराज जगन्नाथ, अनुवादक पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
३१ संगीत रत्नाकर—शारंगधर—संपादक जी० श्रीनिवासमूर्त्ति, आदयार लाइब्रेरी, मद्रास।
३२ रागविबोध—सोमदेव कबीर प्रिंटिंग वर्क्स, ट्रिपलिकेन, मद्रास, १९३३ ई०।
३३ वृत्त रत्नाकर—केदार भट्ट, संपादक एच० डी० वेलनकर, जयदामन, हरितोष समिति, बम्बई।
३४ सुवृत्त तिलक—क्षेमेन्द्र—काव्यमाला-२, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८९६ ई०।
३५ पिंगलछन्दसूत्रम्—पिंगलाचार्य, रूप प्रिंटिंग प्रेस, कलकत्ता, पाँचवीं आवृत्ति।
३६ अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास, संपादक सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी।
३७ कुमार संभवम्—कालिदास, संपादक सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी।
३८ रघुवंशम्—कालिदास, संपादक सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी।
३९ गीत गोविन्द—जयदेव, ठाकुर प्रसाद, बनारस सिटी।
४० ध्वन्यालोक—आनन्दवर्द्धन, मास्टर खेलाड़ी एण्ड सन्स, कचौड़ी गली, बनारस।

प्राकृत-अपभ्रंश

१ रयणसार—आचार्य कुन्दकुन्द, माणिक दिगंबर, जैन ग्रंथमाला, १९७७ संवत्।
२ दसभक्ति—दोशी सखाराम नेमचन्द, शोलापुर, १९२१ ई०।
३ कविदर्पणम्—संपादक ए० डी० वेलनकर, १६ भंडारकर, रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना, भोन्यूम।

कोषग्रन्थ

१ हलायुधकोष—संपादक जयशंकर जोशी, प्रकाशन शाला, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।
२ हिन्दी साहित्य कोष—संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस २००५ संवत्।
३ तुलसी शब्दसागर—संकलनकर्त्ता—पं० हरगोविन्द तिवारी, इलाहाबाद। हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।
४ संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर—संपादक रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००८ संवत् पाँचवा संस्करण।

५ हिन्दी उर्दू-कोष—मुहम्मद मुस्तफा खां, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९५९ ।

हिन्दी

१ रामचरितमानस—संपादक डा० माता प्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

२ तुलसी ग्रन्थावली—दूसरा खंड, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

३ तुलसी ग्रंथावली—तीसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी । संवत् १९८० ।

४ रामचरितमानस—संपादक विजयनन्द त्रिपाठी ।

५ विद्यापति की पदावली—सं० रामवृक्ष बेनीपुरी, पुस्तक भंडार, पटना ।

६ विद्यापति—मित्र और मजुमदार—हिन्दी रूपान्तरकर्ता श्री हरेश्वरी प्रसाद, दि युनाइटड प्रेस लिमिटेड, बारी रोड, पटना ४ ।

७ कबीर ग्रंथावली—बाबू श्यामसुन्दरदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २०११ ।

८ सूरसागर—संपादक-आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

९ मीराबाई की पदावली—संपादक श्री परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २०१४ संवत् ।

१० भारतेन्दु ग्रंथावली—संपादक श्री ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

११ अनामिका—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण ।

१२ आराधना—निराला, साहित्यकार संसद्, प्रयाग, २०१० संवत् ।

१३ गीतिका—निराला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००५ संवत् ।

१४ अर्चना—निराला, कला मंदिर, दारागंज, इलाहाबाद ।

१५ परिमल—निराला, गंगा ग्रंथागार, ३६, गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ । सं० २०१३

१६ गीतगुंज—निराला ।

१७ रागकल्पद्रुम—कृष्णानन्द सागर व्यास, बंगीय साहित्य परिषद् मंदिर, २४३।१ अपर सरकुलर रोड कलकत्ता । १९७१ संवत् ।

१८ गांधी जी की सूक्तियाँ—संग्रहकर्ता—ठाकुर राजबहादुर सिंह, हिन्दी पाकिट बुक्स दिल्ली ।

१९ मीराबाई—डा० कृष्णलाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।२००८ संवत् ।

२० अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

२१ भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि—श्री किशोरी लाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस ।

२२ सतसुधासार—वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मंडल ।

२३ छन्द प्रभाकर—जगन्नाथ प्र० भानु—सातवाँ सस्करण, १९३१ ई० ।
२४ आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, २०१४ सवत् ।
२५ हिन्दी छन्दप्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री, सक्षिप्त ।
२६ हिन्दी छन्दप्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री, वृहत् ।
२७ तुलसीदास और उनका काव्य—रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल एण्ड सज, दिल्ली, १९५३ ई० ।
२८ गोस्वामी तुलसीदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सप्तम् सस्करण । २००८ सवत् ।
२९ तुलसीदास और उनका युग—डा० राजपति दीक्षित ज्ञानमडल लिमिटेड, बनारस, २००९ सवत् ।
३० पल्लव—सुमित्रानन्दन पन्त, लीडर प्रेस, प्रयाग । पाँचवा सस्करण ।
३१ अलकार मुक्तावली—प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, ग्रथमाला कार्यालय पटना ।
३२ काव्य और कवि—श्री विश्वमोहन कुमार सिंह, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद १९५६ ई० ।
३३ रागविज्ञान—वि० ना० पटवर्द्धन, सगीत विद्यालय, पूना ।
३४ सगीतशास्त्र—के० वासुदेव शास्त्री, प्रकाशन शाखा, सूचना, विभाग, उत्तरप्रदेश, १९५८ ई० ।
३५ सगीतविशारद—वसत, सगीत कार्यालय हाथरस ।
३६ भारतखडे सगीतशास्त्र—भारतखडे, सगीत कार्यालय हाथरस ।
३७ सगीत सुदर्शन—सुदर्शनाचार्य इंडियन प्रेस, प्रयाग । १९२३ ई० ।
३८ प्रणवभारती—प० ओकारनाथ ठाकुर, सगीत भारती, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ।
३९ सगीताजलि—प० ओंकारनाथ ठाकुर, सगीत भारती, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी ।
४० हिन्दी व्याकरण—कामता प्रसाद गुरु, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी । २००९ सवत् ।
४१ व्रजभाषा व्याकरण—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
४२ तुलसीदास की भाषा—डा० देवकी नन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रकाशन, २०१८ सवत् ।
४३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९४८ ई० ।
४४ मानस की रूसी भूमिका—अनुवाद डॉ० केसरी नारायण शुक्ल, विद्यामन्दिर, रानी कटरा, लखनऊ, १९५७ ई० ।
४५ तुलसीदर्शन—डॉ० बलदेव मिश्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, स० २००४ ।

४६ हिन्दुई साहित्य का इतिहास—मूल लेखक—गार्सां द तासी, अनुवादक-लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
४७ हिन्दी साहित्य—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अतरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, देहली, १९५२ ई०।
४८ हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००८ संवत्।
४९ मिश्रबन्धु विनोद—मिश्रबन्धु गंगा ग्रंथागार, ३६ गोतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ।
५० संक्षिप्त हिन्दी नवरत्न—मिश्रबंधु, गंगा ग्रंथागार, २००८ संवत
५१ काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना। १९५१ ई०
५२ काव्यकल्पद्रुम—रसमंजरी—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, मथुरा, २००४ संवत्।
५३ अपभ्रंश दर्पण—प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा, द्वितीय संस्करण, १९५५ ई०।
५४ सूर साहित्य दर्पण—प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा, विद्याधाम, १३७२ बल्ली-मारान, दिल्ली।
५५ भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा—सम्पादक डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली।
५६ चिन्तामणि—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९५३ ई०।
५७ गीतारहस्य—लोकमान्य तिलक, अनुवाद श्रीमाधवराव जी सप्रे, तिलकमंदिर, पूना-२। दशम मुद्रण।
५८ गीताप्रवचन—आचार्य विनोबा भावे, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, १९५५ ई०।
५९ हिन्दी के स्वीकृत शोधप्रबंध—डा० उदयभानु सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९५९ ई०।
६० महाकवि सूरदास—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १९५२ ई०।
६१ संस्कृति के चार अध्याय—रामधारीसिंह दिनकर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली प्रथम संस्करण।
६२ भागवत सम्प्रदाय—पं० बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६३ सूरदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सरस्वती मंदिर, जतनबर, बनारस।
६४ रामानंद संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव—डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय।
६५ भक्ति का विकास—डा० मुन्शीराम शर्मा, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी। १९५८
६६ कोशोत्सव स्मारक संग्रह—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
६७ गोस्वामी तुलसीदास—पं० सीताराम चतुर्वेदी, चौखम्बा विद्याभवन, चौक, बनारस-१, २०१३ संवत्।

६८ गोस्वामी तुलसीदास—बाबू श्यामसुन्दरदास तथा पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५२ ई०।
६९ मध्यकालीन धर्मसाधना—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५२ ई०।
७० भक्तियोग—स्वामी विवेकानन्द, समाज प्रकाशन, दिल्ली, ६।
७१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—पं० बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, काशी, १९४८ ई०।
७२ बंकिम निबन्धावली—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई।
७३ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९४० ई०।
७४ वैदिक साहित्य और संस्कृत—पं० बलदेव उपाध्याय, शारदामंदिर, काशी, १९५५ ई०
७५ गीतिकाव्य—डा० रामखेलावन पांडेय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
७६ प्राकृत और उसका साहित्य—डा० हरदेव बाहरी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
७७ अपभ्रंश साहित्य—डा० हरवंश कोछड, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली।
७८ सिद्ध साहित्य—डा० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद।
७९ संतकाव्य संग्रह—परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद।
८० भ्रमरगीतसार—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण।
८१ सूरसागर—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
८२ शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर, तृतीय संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
८३ श्रीकृष्णगीतावली—श्री रामायन सरन, गणेश प्रेस, बनारस।
८४ श्रीकृष्णगीतावली—गीताप्रेस, गोरखपुर।
८५ श्रीकृष्णगीतावली—श्रीकांत शरण, गोलाघाट, अयोध्या।
८६ गीतावली—गीताप्रेस, गोरखपुर।
८७ गीतावली—सटीक—श्रीकान्त सरन, गोलाघाट, अयोध्या।
८८ गीतावली—सटीक—बैजनाथजी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
८९ गीतावली—हरिहर प्रसाद, रागविलास प्रेस, बाँकीपुर।
९० विनयपत्रिका—सटीक—गीताप्रेस, गोरखपुर।
९१ विनयपत्रिका—सटीक—श्रीकांत शरण, गोलाघाट, अयोध्या।
९२ विनयपत्रिका—सटीक—बैजनाथजी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
९३, विनयपत्रिका—लाला भगवानदीन तथा विश्वनाथ प्र० चौबे, रामनारायणलाल, इलाहाबाद।
९४ विनयपत्रिका—सटीक—देवनारायण द्विवेदी, भागव पुस्तकालय, बनारस।
९५ विनयपत्रिका—सटीक—हरिहर प्रसाद, राग विलास प्रेस, पटना।
९६ विनयपत्रिका—सटीक—पं० रामेश्वर भट्ट इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।
९७ विनयपत्रिका—सटीक—पं० महावीर प्रसाद मालवीय, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।

६८ विनयपत्रिका—वियोगीहरि—साहित्य-सेवा-सदन, वाराणसी।

६६ तुलसीदास – स्वर्गीय चन्द्रबली पाडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। २०१४ सवत्।

१०० दि मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ग्राफ हिन्दुस्तान—जार्ज ग्रियर्सन, ग्रनुवाद-किशोर लाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी। १६५७ ई०।

१०१ हिंदी साहित्य पर सस्कृत साहित्य का प्रभाव—डा० सरनाम सिंह, रामनारायण लाल, इलाहाबाद।

१०२ साहित्य सदभ—ग्राचाय महावीर प्रमाद द्विवेदी गगा ग्रयागार, लखनऊ।

१०३ भारत भारती—मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी, २००२ सवत्।

हिन्दी के हस्तलिखित शोध प्रबध

१ मध्यकालीन हिंदी काव्य मे प्रयुक्त मात्रिक छदो का विश्लेषणात्मक तथा ऐतिहासिक ग्रध्ययन—डा० शिवनन्दन प्रसाद, पटना विश्वविद्यालय।

२ तुलसीदास जीवनी ग्रौर विचारधारा—डा० राजाराम रस्तौगी, पटना विश्वविद्यालय।

३ हिंदी गीतिकाव्य उद्‌भव, विकास ग्रौर भारतीय काव्य मे इसकी परम्परा, डा० शिवमगल सुमन, हिन्दु विश्वविद्यालय।

बगला भाषा की पुस्तकें

१ चन्डीदास ग्रो गोबिन्दास ग्रथावली—विक्टोरिया लाइब्रेरी, १ न० गरानहारा स्ट्रीट, कलकत्ता ६।

ग्रग्रेजो की पुस्तकें

1 Encyclopaedia Britanica—Chicago, London, 1950 Edition
2 Encylopaeidia of Religion anp Etnics Vol 2—T &T, Clark,38 George Street, Edin Burg—1954 Edition
3 world Dictionary of Literary Terms—Joseph T Shipley George Allen & Unwin Ltd London
4 Dictionary of Music—willi Apel Harvard University Press, 1950
5 *Aspets of Indian Music—Publication Division, Government of India*
6 Ragas and Raginis—O C Gangoly, Nalanda Publicatin, Bombay, 1948
7 Selected prose—T S Eliot, pengim Book Series
8 A History of Hindi Literature—F E Keay, Wesleyan Mission Press Mysore City, 1933
9 An Introduction to the Study of Literature—Hudson George G Harrap & Co Ltd London January 1957

10 Lyric Poetry—Ernest Rttys—J M Dent & Sons Ltd, London and Toranto, 1933

11 A Mentor book of Religions verse—H Grogory & Meryazaturuska

12 Golden Treasury of Song and Lyric—Palgrave—Oxford University Press

13 Lyrical Forms in English—Norman Happle, Cambridge] University, 1923

14 English Lyrical Poetry—E B Reed, yale University Press, 1912

15 The Anatomy of Poetry—Marjorie Boulton Routledge & Kegan Paul Ltd, London

16 Bhakti eult in Ancient India—Bhagwat Kumar—B Banergee R Co,, 25 Corwalles Street, Calcutta

17 Early History of Vaishnava faith and movement in Bangal—Sushil Kumar De

18 Essays on Gita—Sri Aurpindo, Aditi Ashram, Pondicheri

19 History of Pali Literature—Bimla Charan Law, Kegan Paul, Trench and Co Ltd, 38, George Russell Street, London W C I, 1939

20 A History of India Literature—Winternitz., Ist Vol 1027, University of Calcutta 2nd Vol 1939, University of Calcutta

21 India Philosophy—Dr Radnarishnan, George Allen and Unwire Ltd London

22 Vidic Mythology—Macdonall, Straesburg, Verlaguonkari, J T U BNER, 1897

पत्र पत्रिकाएँ (मासिक, साप्ताहिक, विशेषांक, खोज रिपोर्ट तथा जनरल)

१ कल्याण—भक्तिअंक, गीताप्रेस, गोरखपुर।

२ कल्याण—साधनांक, गीताप्रेस, गोरखपुर।

३ „ —मानसांक, „ „ ।

४ „ —रामायणांक, „ „ ।

५ सम्मेलन पत्रिका—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

६ संगीत—संगीत कार्यालय, हाथरस।

७ साप्ताहिक हिन्दुस्तान—दिल्ली।

८ खोज रिपोर्ट—१९००—१९५०, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

9 Annals of the Bhandarker Research Institute, Poona, vol, 16

o

तुलसी के भक्त्यात्मक गीत

विशेषतः विनयपत्रिका

(पटना विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० वचनदेव कुमार एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

पटना कॉलेज, पटना

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

दिल्ली-६ : पटना-४